एडवांस भगवद्गीता

(संधि विच्छेद, शब्दानुवाद और संक्षिप्त व्याख्या सहित)

आध्यात्मिक विश्वविद्यालय

दिल्ली- 110085: ए-1, 351-352, विजयविहार, पो.रिठाला, (0)9891370007, (0)9311161007

कम्पिला- 207505: नेहरूनगर, गंगा रोड,जि.फर्रूखाबाद (0)9670372967, (0)6367347527

Visit us at- www.pbks.info

Youtube-AIVV

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रधान विषयों की अनुक्रमणिका

श्लोक	विषय	पेज नं.
	भूमिका.....	04
	भविष्यवाणी.....	12
	शब्दार्थ.....	13
	अर्जुनविषादयोग-नामक पहला अ0।।	
01-11	दोनों सेनाओं के प्रधान-2 शूरवीरों की गणना और सामर्थ्य का कथन।.....	17
12-19	दोनों सेनाओं की शंख-ध्वनि का कथन।.....	25
20-27	अर्जुन द्वारा सेना-निरीक्षण का प्रसंग।.....	31
28-47	मोह से व्याप्त हुए अर्जुन के कायरता, स्नेह और शोकयुक्त वचन।.....	35
	सांख्ययोग-नामक दूसरा अ0।।	
01-10	अर्जुन की कायरता के विषय में श्रीकृष्णार्जुन -संवाद।.....	44
11-30	सांख्ययोग का विषय।.....	46
31-38	क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करने की आवश्यकता का निरूपण।.....	51
39-53	कर्मयोग का विषय।.....	53
54-72	स्थिरबुद्धि पुरुष के लक्षण और महिमा।....	57
	कर्मयोग-नामक तीसरा अ0।।	
01-08	ज्ञानयोग और कर्मयोग के अनुसार अनासक्त भाव से नियत कर्म करने की श्रेष्ठता का निरूपण।.....	63
09-16	यज्ञादि कर्मों की आवश्यकता का निरूपण।..	65
17-24	भगवान् और ज्ञानवान् के लिए भी लोकसंग्रहार्थ कर्मों की आश्यकता।.....	67
25-35	अज्ञानी और ज्ञानवान् के लक्षण तथा राग-द्वेष से रहित होकर कर्म करने के लिए प्रेरणा।.....	69
36-43	काम के निरोध का विषय।.....	71
	ज्ञानकर्मसंन्यासयोग-नामक चौथा अ0।।	
1-18	सगुण भगवान का प्रभाव और कर्मयोग का विषय।.....	74
19-23	योगी महात्मा पुरुषों के आचरण और उनकी महिमा।.....	80
24-32	फलसहित पृथक्-पृथक् यज्ञों का कथन।...	81
33-42	ज्ञान की महिमा।.....	84

कर्मसंन्यासयोग–नामक पाँचवा अ0।।

01-06 सांख्ययोग और कर्मयोग का निर्णय।..... 88
07-12 सांख्ययोगी और कर्मयोगी के लक्षण और उनकी महिमा।..... 89
13-26 ज्ञानयोग का विषय।..... 91
27-29 भक्तिसहित ध्यानयोग का वर्णन।..... 95

आत्मसंयमयोग–नामक छठा अ0।।

01-04 कर्मयोग का विषय और योगारूढ़ पुरुष के लक्षण।..... 96
05-10 आत्म–उद्धार के लिए प्रेरणा और भगवत्प्राप्त पुरुष के लक्षण।..... 97
11-32 विस्तार से ध्यानयोग का विषय।..... 98
33-36 मन के निग्रह का विषय।..... 103
37-47 योगभ्रष्ट पुरुष की गति का विषय और ध्यानयोगी की महिमा।..... 104

ज्ञानविज्ञानयोग–नामक 7वाँ अ0।।

01-07 विज्ञानसहित ज्ञान का विषय।..... 108
08-12 सम्पूर्ण पदार्थों में कारणरूप से भगवान की व्यापकता का कथन। 110
13-19 आसुरी स्वभाव वालों की निन्दा और भगवद्भक्तों की प्रशंसा।..... 111
20-23 अन्य देवताओं की उपासना का विषय।... 113
24-30 भगवान के प्रभाव और स्वरूप को न जानने वालों की निन्दा और जानने वालों की महिमा।... 114

अक्षरब्रह्मयोग–नामक 8वाँ अ0।।

01-07 ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादि के विषय में अर्जुन के 7 प्रश्न और उनका उत्तर।..... 117
08-22 भक्तियोग का विषय।..... 119
23-28 शुक्ल और कृष्णमार्ग का विषय।..... 124

राजविद्याराजगुह्ययोग–नामक 9वाँ अ0।।

01-06 प्रभावसहित ज्ञान का विषय।..... 126
07-10 जगत की उत्पत्ति का विषय।..... 128
11-15 भगवान् का तिरस्कार करने वाले आसुरी प्रकृति वालों की निन्दा और दैवी प्रकृति वालों के भगवद्भजन का प्रकार।..... 129
16-19 सर्वात्मरूप से प्रभावसहित भगवान् के स्वरूप का वर्णन।..... 131
20-25 सकाम और निष्काम उपासना का फल।.. 132

26-34 निष्काम भगवद्भक्ति की महिमा।..... 135

विभूतियोग–नामक 10वाँ अ0।।

01-07 भगवान् की विभूति और योगशक्ति का कथन तथा उनके जानने का फल।..... 138
08-11 फल और प्रभावसहित भक्तियोग का कथन।..... 140
12-18 अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति तथा विभूति और योगशक्ति को कहने के लिए प्रार्थना।..... 141
19-42 भगवान द्वारा अपनी विभूतियों और योगशक्ति का कथन।..... 143

विश्वरूपदर्शनयोग–नामक 11वाँ अ0।।

01-04 विश्वरूप के दर्शन-हेतु अर्जुन की प्रार्थना।.. 150
05-08 भगवान द्वारा अपने विश्वरूप का वर्णन।... 151
09-14 संजय द्वारा धृतराष्ट्र के प्रति विश्वरूप का वर्णन।..... 152
15-31 अर्जुन द्वारा भगवान के विश्वरूप का देखा जाना और उनकी स्तुति करना।.... 153
32-34 भगवान द्वारा अपने प्रभाव का वर्णन और अर्जुन को युद्ध के लिए उत्साहित करना।..... 158
35-46 भयभीत हुए अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति और चतुर्भुजरूप का दर्शन कराने के लिए प्रार्थना।..... 159
47-50 भगवान द्वारा अपने विश्वरूप के दर्शन की महिमा का कथन तथा चतुर्भुज और सौम्यरूप का दिखाया जाना।..... 163
51-55 बिना अनन्यभक्ति के चतुर्भुजरूप के दर्शन की दुर्लभता का और फलसहित अनन्यभक्ति का कथन।..... 164

भक्तियोग–नामक 12वाँ अ0।।

01-12 साकार और निराकार के उपासकों की उत्तमता का निर्णय और भगवत्प्राप्ति के उपाय का विषय।..... 166
13-20 भगवत्–प्राप्त पुरुषों के लक्षण।..... 169

क्षेत्र–क्षेत्रज्ञविभागयोग–नामक 13वाँ अ0।।

01-18 ज्ञानसहित क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ का विषय।..... 172
19-34 ज्ञानसहित प्रकृति–पुरुष का विषय।..... 177

गुणत्रयविभागयोग–नामक 14वाँ अ0।।

01-04 ज्ञान की महिमा और प्रकृति-पुरुष से जगत् की उत्पत्ति।..... 182
05-18 सत्, रज, तम-तीनों गुणों का विषय।... 183
19-27 भगवत्प्राप्ति का उपाय और गुणातीत पुरुष के लक्षण।..... 187

पुरुषोत्तमयोग–नामक 15वाँ अ0।।

01-06 संसारवृक्ष का कथन और भगवत्प्राप्ति का उपाय।..... 190
07-11 जीवात्मा का विषय।..... 192
12-15 प्रभावसहित परमेश्वर के स्वरूप का विषय।..... 194
16-20 क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तम का विषय।..... 195

दैवासुरसम्पद्विभागयोग–नामक 16वाँ अ0।।

01-05 फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदा।..... 197
06-20 आसुरी सम्पदा वालों के लक्षण और उनकी अधोगति का कथन।..... 198
21-24 शास्त्रविपरीत आचरण को त्यागने और शास्त्रानुकूल आचरण के लिए प्रेरणा।.... 202

श्रद्धात्रयविभागयोग–नामक 17वाँ अ0।।

01-06 श्रद्धा का और शास्त्रविपरीत घोर तप करने वालों का विषय। 203
07-22 आहार, यज्ञ, तप और दान के पृथक्-पृथक् भेद।..... 204
23-28 ॐ तत्सत् के प्रयोग की व्याख्या।..... 208

मोक्षसंन्यासयोग–नामक 18वाँ अ0।।

01-12 त्याग का विषय।..... 210
13-18 कर्मों के होने में सांख्यसिद्धान्त 213
19-40 तीनों गुणों के अनुसार ज्ञान,कर्म,कर्ता, बुद्धि,धृति और सुख के पृथक्-2 भेद।... 214
41-48 फलसहित वर्णधर्म का विषय।..... 220
49-55 ज्ञाननिष्ठा का विषय।..... 222
56-66 भक्तिसहित कर्मयोग का विषय।..... 224
67-78 श्रीगीताजी का माहात्म्य। 227

भूमिका

'श्रीमद् भगवद्गीता' सम्पूर्ण विश्व में मानवजाति के लिए भगवान का वर्बली दिया हुआ भारतीय अमूल्य उपहार है। भगवद्गीता ही एक ऐसा शास्त्र है जिसको 'सर्वशास्त्र शिरोमणि' कहा गया है। ऐसी विलक्षण रचना है, जिसको ही 'भगवानुवाच' की मान्यता प्राप्त है। जो महर्षि वेदव्यास द्वारा लिखी गई है। गीता (18/75) में बताया है- "**व्यासप्रसादात्**" अर्थात् व्यास की प्रसन्नता से यह गीता-ज्ञान हमको मिला है। यह शास्त्र अन्य शास्त्रों की तरह सिर्फ धर्म उपदेश का साधन नहीं; अपितु इसमें अध्यात्म के साथ-2 राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान भी है। अर्जुन जो महाभारत युद्ध के महानायक हैं, युद्ध के मैदान में समस्याओं से भयभीत होकर जीवन और क्षत्रिय धर्म से निराश हो गए। उसी प्रकार हम सभी नं. वार अर्जुन की भाँति जीवन की समस्याओं में उलझे हुए हैं; क्योंकि यह कलियुगांत का जीवन भी एक युद्ध क्षेत्र है। इसलिए आज सामान्य मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं से उलझकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है अर्थात् क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए- इस संबंध में ही बुद्धू बन जाता है और जीवन की समस्याओं से लड़ने की बजाए, उनसे भागने लगता है। लेकिन समस्याओं से भागना समस्या का समाधान नहीं है। उन समस्याओं के समाधान के लिए ही भगवान अर्जुन के माध्यम से समस्त सृष्टि की मानवजाति के लिए ही गीता-ज्ञान अभी वर्तमान समय में दे रहे हैं, जिस गीता-ज्ञान के लिए यह समझा जाता है- भगवान श्रीकृष्ण ने द्वापर के अंत में यह गीता-ज्ञान दिया है। परन्तु गीता में एक भी ऐसा श्लोक नहीं है जिसमें बताया हो कि गीता-ज्ञान द्वापर में दिया है। जबकि गीता (18/66) में बोला है- "**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**" अर्थात् मठ-पंथ-सम्प्रदायादि दैहिक दिखावे वाले हिन्दू-मुस्लिमादि सब धर्मों का परित्याग करके, मुझ निराकारी स्टेज वाले शिवबाबा की शरण में जा। देखा जाए तो सभी धर्म द्वापर में मौजूद भी नहीं थे, अभी कलियुग के वर्तमान समय में अनेक धर्म-मठ-पंथ-सम्प्रदाय मौजूद हैं।

"**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**" (गी. 4/7) अर्थात् जब धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म या विधर्म बढ़ता है, तब मैं आता हूँ। धर्म की ग्लानि अर्थात् एकव्यापी भगवान को सर्वव्यापी बता देते हैं। जैन और वैदिक

प्रक्रिया के अनुसार कलियुग के अंत में ही धर्म की ग्लानि होती है; क्योंकि कलियुग-अंत तक अनेक धर्म स्थापित हो जाते हैं और सब धर्म चौथे युग की चौथी अवस्था में तमोप्रधान बन जाते हैं; क्योंकि सृष्टि रूपी मकान या वृक्ष की हर चीज़ चतुर्युगी की तरह सत्त्व प्रधान, सत्त्व सामान्य, रजो और तामसी- इन 4 अवस्थाओं से अवश्य गुज़रती है।

''**सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप।।**'' (गीता 7/27) अर्थात् सब प्राणी कल्पान्त काल/चतुर्युगांत में सम्पूर्ण मूढ़ता को पहुँच जाते हैं।

''**मयाध्यक्षेण... जगद्धिपरिवर्तते**'' (गीता 9/10) अर्थात् मेरी एकमात्र अध्यक्षता के कारण यह संसार विपरीत गति अर्थात् कलियुगान्त से आदि सनातन सतयुगी ऊर्ध्वलोक की दिशा में विपरीत गति से परिवर्तित होता है। अगर भगवान श्रीकृष्ण ने द्वापर में आकर गीता-ज्ञान दिया है तो संसार का परिवर्तन होना चाहिए; परन्तु संसार का तो परिवर्तन हुआ नहीं, प्रमाणित मानवीय इतिहास में मनुष्य और ही अधर्मी, कामी, पाखंडी, अभिमानी, क्रोधी, अहंकारी, पशुओं के समान हिंसा का आचरण करने वाले हो गए, जबकि 16 कला सतयुग, 14 कला त्रेता और 8 कला द्वापर से भी नीचे गिरकर आज तक पूरा ही कलाहीन पापी कलियुग बन गया।

वास्तव में यह सामने खड़े सन्नद्ध चतुर्थ विश्वयुद्ध वाले मौसलिक/मिसाइल्स के और तृतीय विश्वयुद्ध वाले महाभारत युद्ध के आसार वर्तमान समय की बात है। भगवान ने आकर कोई स्थूल हिंसा करना नहीं सिखाया। लड़ाई-झगड़ा या मारा-मारी करना- ये सर्वथा बर्बर बनें ताड़कासुर जैसे राक्षसों के संस्कार हैं। भगवान तो आकर सतयुगादि का 16 कला सं. दैवी अहिंसक राज्य स्थापन करते हैं, देवता लड़ते नहीं हैं। जो कौरव और पाण्डवों का युद्ध बताया है, वे अभी मौजूद हैं; क्योंकि शास्त्रों में जो भी नाम हैं, सभी काम के आधार पर हैं। जैसे अच्छे या बुरे काम किए हैं वैसे नाम पड़ गए हैं; क्योंकि कलियुगी दुनियाँ नाम को स्मरण करती है। जैसे 'राम' नाम पड़ा है- रम्यते योगिनो यस्मिन् इति रामः। अर्थात् योगी लोग जिसमें रमण करते हैं, उसका नाम है 'राम'। ऐसे ही 'रावण'-रावयते लोकान् इति रावणः। अर्थात् जो लोगों को रुलाता है, वो रावण है। उसी प्रकार कौरव सम्प्रदाय धृतराष्ट्र और उसके कुकर्मी पुत्र दुर्योधन-दुःशासनादि

जो सत्य धर्म के नाशक हैं और उनको समर्थन देने वाले बड़े-2 विद्वान गुरु द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह-जैसे संन्यासी हैं जो आज भी धर्म के विपरीत, सत्य का सर्वथा विरोध करने वाले हैं; जबकि सत्य धर्म के स्थापक बेहद के पंडा शिव सुप्रीम सोल 'पांडु' रूप सर्वोच्च पंडा बाप के पांडव बच्चे युधिष्ठिर-अर्जुन आदि भी मौजूद हैं, जो साक्षात् भगवान का आश्रय लेने वाले हैं। यह कोई एक-एक व्यक्तित्व की बात नहीं है, अपितु ऐसे आचरण करने वाले नं.वार मनुष्यों की बात है।

इसी समय ऐसे पूँजीवादी धृतराष्ट्र (जिन्होंने अन्याय पूर्वक सारे भारत राष्ट्र की धन-सम्पत्ति हड़प ली) भ्रष्टाचारी आसुरी गवर्मेण्ट के ऐसे-2 नुमाइन्दे बनकर बैठे हैं, जो धार्मिक-आध्यात्मिक संस्थाओं पर भी लाखों का प्रॉपर्टी टैक्स लगवाते हैं। जिनको समाज का रक्षक होना चाहिए, वो ही पुलिस आदि विभागों के अधिकारी 'भक्षक' बनकर जनता को प्रताड़ित कर रहे हैं। प्रायः समूची न्याय व्यवस्था दीर्घसूत्री अन्याय में बदल गई। पहले राजाओं के राज्य में धर्म के अनुसार न्याय किया जाता था, बिना किसी वकील की सहायता के तुरंत निर्णय भी मिलता था; लेकिन आज विदेशियों के द्वारा बनाए गए कोर्ट के न्याय की अपेक्षा करते-2 प्राण भी चले जाएँ, तो भी न्याय नहीं मिलता । इसलिए आज प्रायः सच्चे लोग जेल में पड़े हैं और गुण्डाराज के अपराधी जेलों में भी जेलर्स आदि रिश्वती अधिकारियों के ऊपर गद्दीनशीन बनकर बैठे हैं। जैसे (दुष्ट युद्ध करने वाले) दुर्योधन, दुःशासन अबलाओं पर बाहुबल चलाते हैं, ऐसे खराब काम करते हैं। अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं। कोई एक पारिवारिक द्रौपदी की बात नहीं, अनेकों कुंती-द्रौपदी समान कन्या-माताओं पर रोज़ बलात्कारी अत्याचार किया जाता है। जिस भारतवर्ष में नारियाँ पूजनीय मानी जाती थीं, उसी भारत में आज नारियों पर पशुओं के समान अत्याचार किया जाता है। हिजड़ाई कानून की कोई रोकथाम नहीं। भ्रष्ट इन्द्रियों का दुराचरण कराने वाली गवर्मेण्ट को सहयोग देने वाले और बदले में मान-मर्तबा लेने वाले- द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह-जैसे बड़े-2 वेतन-भोगी कृपाचार्य जैसे विद्वान भी हैं और संन्यासी भी हैं, जो अपने को ही शिवोऽहम् कहते हैं, जबकि वास्तविक God is one अर्थात् असली भगवान सदाशिव ज्योति से बेमुख करा देते हैं। स्वयं की पूजा कराते हैं, अपने को श्री-2,

1008 या 108 की श्रेष्ठतम संगठन रूपी माला के जगतगुरु शिव सुप्रीम सोल का टाइटल लेकर, एकव्यापी भगवान को सर्वव्यापी बताकर सबसे बड़ा अधर्म करते हैं और जनता को भ्रमित किए हुए हैं। इन सब अधर्मियों और इनके द्वारा फैलाए अधर्म का नाश करने के लिए ही भगवान गुप्त साधारण भेष में इस कलियुगांत की सृष्टि पर आए हैं और गीता-ज्ञान भीष्मपितामह-जैसे संन्यासियों को अथवा विद्वान-पंडितों द्रोण-कृपाचार्यों जैसे वेतनभोगियों को नहीं, बल्कि अर्जुन-जैसे गृहस्थियों को देते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी हैं, जो सफ़ेद पोश धर्म के धुरंधर बने बैठे हैं **&** लगातार सत्य को दबाने के लिए करोड़ों रुपये सरकारी अफसरों, तांत्रिकों और मीडिया वालों को दे रहे हैं और अपना अल्पकालीन मान-मर्तबा बनाए रखना चाहते हैं। उनके इन्हीं छद्म भेष में किए गए कर्मों के कारण, जिन ब्रह्मा बाबा (दादा लेखराज) को भगवान मानते हैं, उनकी ही बेअदबी करते हैं और उनके बताए रास्ते पर न चलकर, उनका ही मुँह बंद कर देते हैं और ब्रह्मा बाबा भी मौन रहकर ठीक उसी तरह समर्थन कर देते हैं, जैसे धृतराष्ट्र ने दुर्योधन-दुःशासन का किया था। इसी कारण आज संसार में ब्रह्मा के न मंदिर हैं, न मूर्ति और न ही लोग याद करते हैं। इन्हीं कौरव संप्रदाय का मुकाबला 5 उँगलियों पर गिनने योग्य मुट्ठी भर पाण्डव, आज भारत में प्रैक्टिकली प्रत्यक्ष रूप से कर रहे हैं। जिस आध्यात्मिक विश्वविद्यालय (AIVV) के सक्रिय सहयोगियों को समाप्त करने के लिए सन् 1976 से ही विरोधी लोग लगातार प्रयासरत हैं, एक के बाद एक हमले इन छद्म वेशियों द्वारा कराए जा रहे हैं, सरासर कई झूठे आरोप लगवाए जाने पर भी सफलता नहीं मिली, तो गरीब लोगों के मात्र लाख रुपयों से बने AIVV कम्पिला U.P. के लाखा भवन में सारी पब्लिक के बीच जैसे आग ही लगवा दी। ऐसे ही AIVV दिल्ली-85 में रह रहीं 200-250 कन्या-माताओं के निवास स्थान को दिल्ली नगर निगम वालों के द्वारा 2-2 बार तुड़वाया गया, ताकि वो सभी बेघर हो जाएँ और भाग जाएँ। ऐसे ही id/age प्रूफ दिखाने के बावजूद भी 48 बालिग कन्याओं को सरकारी नुमाइन्दों के बीच मीडियाज़ द्वारा भी नाबालिग घोषित कराके सरकारी तबक्कों द्वारा ही 4 माह तक भी अज्ञात स्थान में किडनेप कराके बंधक बना लिया गया। ऐसे अनेकों अपराध हैं, जिनको भारतीय प्रजातंत्र के कानून का जामा पहनाया गया है। फिर भी AIVV परिवार युधिष्ठिर जैसा युद्ध में आदि से लेकर अंत तक स्थिर रहा है, छोड़कर भागा नहीं; क्योंकि कहावत है- "**जाको राखे साईंया, मार सके न कोय। बाल न बाँका कर सके, जो जग**

वैरी होय ।।" गीता में ही बताया- "**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**" **(2/16)** सत्य पाण्डवों की मुट्ठी भर शक्ति-सेना का कभी विनाश नहीं होगा और कामचलाऊ झूठी प्रजापरस्त शूद्रों और सफेदपोश दिखावटी बेहद ब्राह्मणों की भ्रष्टाचारी सरकार और भ्रष्टाचारियों की अक्षौहिणियों सेना का अस्तित्व भी नहीं रहेगा। महाभारत युद्ध के अंत में विजय तो पांडवों की ही होती है; क्योंकि गीता (18/78) में भी बताया है- "**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।**" अर्थात् जहाँ साक्षात् भगवान हो और भारत/अर्जुन हो, वहाँ विजय निश्चित है। यह 5000 वर्षीय चतुर्युगी ड्रामा में कलियुगान्त की रिहर्सल चल भी रही है। विलियम शेक्सपियर ने भी कहा- "**यह विश्व एक रंगमंच है**" और सभी आत्माएँ भिन्न-2 पात्र हैं, उनका ऊर्ध्वलोकीय आत्मलोक में प्रवेश और प्रस्थान होता है। निम्नगामी 4 सीन की चतुर्युगी सृष्टि पर सभी पार्टधारी अपना-2 पार्ट बजा रहे हैं। हम सभी एक्टर्स हैं और डायरेक्टर सदाशिव (ज्योति) सदैव ही परदे के पीछे है, जो इन दैहिक आँखों से दिखाई नहीं देता है। वो ही गीता-ज्ञानदाता है; क्योंकि वो अगर्भा-अभोक्ता और निराकार है, जन्म-मरण से न्यारा है; इसलिए गीता में उसको अजन्मा, अकर्ता, अभोक्ता बताया है। कृष्ण के लिए अजन्मा, अकर्ता, अभोक्ता नहीं कहेंगे; क्योंकि उनका तो माता के गर्भ से जन्म भी होता है, कर्म करते दिखाया भी है, सामान्य मनुष्यों की तरह जीवन के सभी सुखों को भोगते हुए दिखाया है और गीता तो पहले निराकारवादी रचना थी, बाद में कृष्ण उपासकों ने उसमें कृष्ण का नाम डाल दिया है जो बात राधाकृष्णन, कीथ, कीरो आदि अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने भी स्वीकारी है। वो निराकार भगवान (सदाशिव ज्योति) अर्जुन (आदम) के (मुकर्रर शरीर रूपी) रथ में ही आकर प्रवेश करके गीता-ज्ञान देते हैं, कोई स्थूल रथ की बात नहीं है। कठोपनिषद् 1.3.3.4 में बोला है- "**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुः .....**"

आत्मा को रथी समझ और शरीर को रथ समझ, बुद्धि (मानों की बुद्धि शिवज्योति) को सारथी समझ और चतुर्मुखी ब्रह्मा के मन रूपी घोड़ों को लगाम समझ अर्थात् अर्जुन की इन्द्रियों को घोड़े समझ। अर्थात् निराकार ज्योतिबिंदु/ज्योतिर्लिंगं गीता-ज्ञानदाता अर्जुन के साकार शरीर रूपी रथ में प्रवेश करते हैं।

गी. 10/2 में है- ''न मे विदु: सुरगणा: प्रभवं न महर्षय:।'' अर्थात् मेरे उत्कृष्ट जन्म को न सतयुगी देव और न द्वापरयुगी महान ऋषिजन ही जानते हैं, जबकि कृष्ण का जन्म और उनकी तिथि-तारीख तो सामान्य मनुष्यों को भी ज्ञात है- सामान्य रूप से माता के गर्भ से जन्म हुआ था; परन्तु भगवान तो अगर्भा है; क्योंकि वो परकाया प्रवेश (गी. 11/54 'प्रवेष्टुं') करके ज्ञान का बीज डालते हैं। गी. 14/3 में बोला है-**''मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।''** अर्थात् मेरी योनि रूपी माता महद्ब्रह्म (पंचानन) संगठित मुखों वाला महान ब्रह्मा है, जिसमें आकर मैं आत्म-ज्ञान का बीज डालता हूँ, महाविनाश के समय मनुष्य-सृष्टि वृक्ष के बीज/बाप(अर्जुन/आदम) की अपरा प्रकृति/देह रूपा परमब्रह्मा में पड़े उस बीज से सब प्राणियों की नं. वार उत्पत्ति होती है। जिस गर्भ के बारे में अन्य शास्त्रों में ऋषि-मुनि भी उसे सच्चा-2 **'हिरण्य गर्भ' कहते हैं।** इस शब्द का प्रथमत: उल्लेख ऋग्वेद में आया है, जो अंडाकार ज्योतिर्लिंग के समान है, जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। गी. 9/7 में बोला है- **''सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।''** अर्थात् हे कुंती-पुत्र! कल्पांतकाल में सब प्राणी मेरी निराकारी स्टेज धारण करने वाली इसी प्रकृष्ट शरीर रूपी कृति (शंकर) के निराकारी ज्योतिर्बिंदु आत्मिक (अव्यक्तमूर्ति) भाव को पाते हैं और कल्प के आदिकाल से मैं उन्हें फिर से सृष्टि के लिए परंब्रह्मलोक से नं. वार छोड़ देता हूँ। गी. 2/17 में बोला है-**''अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।''** अर्थात् जिस मनुष्य-सृष्टि के बीज-रूप आदम या आदिदेव/शंकर के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व विस्तार को पाया है, उसको तो अविनाशी जान। इस अव्यय पुरुष शंकर (-आत्मपार्ट) का प्रलयकाल में भी विनाश करने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है। जबकि कृष्ण को तो एक बहेलिये ने तीर मारा और उनकी मृत्यु हो गई।

गी. 11/32 में बोला है- **'कालोऽस्मि'** अर्थात् मैं काल हूँ। जो स्वयं कालों का काल महाकाल है, उसको कोई काल खा नहीं सकता है। वो ही एकमात्र महाकाल सबको मन्मनाभव मन्त्र से अपने बुद्धिरूपी पेट में खा जाता है; इसीलिए न उनका जन्म दिखाया है, न ही मृत्यु। वो ही हीरो आत्मा जो सब धर्मों में आदिदेव/आदम/एडम/आदिनाथ/आदिश्वर आदि

नामों से मानवीय इतिहास के समूचे सृष्टि रंगमंच पर कोई न कोई साकार तन से भी शाश्वत मौजूद रहती है, जिसको **'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्'** कहा जाता है। जिसके अमोघवीर्य साकार शिवलिंग स्वरूप की पूजा प्रैक्टिकल कामजीते जगत्जीत के प्रतीकात्मक जलाधारी आधार पर खुदाईयों में सार्वभौम रूप में सबसे जास्ती की गई है। देश-विदेश में उसकी ही सर्वाधिक लिंगमूर्तियाँ मिली हैं, सिर्फ नाम अलग दे दिए हैं। हिन्दुओं में **'आदिदेव'**, क्रिश्चियन्स **'एडम'**, मुसलमान **'आदम'** और जैनियों में **'आदिनाथ'** कहा जाता है। गी. 4/1 में बताया है- **''इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।''** मैंने यह अविनाशी ज्ञान सबसे पहले सूर्य को दिया, जिसको **'विवस्वत'** कहा है; क्योंकि निराकार सदा शिवज्योति ज्ञान की रोशनी सबसे पहले नर से डायरैक्ट नारायण बनने वाले साकार अर्जुन/आदम (विवस्वत) को देता है, उसके द्वारा फिर समस्त संसार को ये नॉलेज मिलती है; लेकिन उसमें प्रविष्ट परमपिता शिव समान गुप्त पार्टधारी को पहले-पहले उसी हीरा समान हीरो (कौ है नूर हीरा) सिवा कोई पहचान नहीं पाते। गी. 9/11 में बोला है-**''अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।''**अर्थात् मूर्ख लोग मानवीय शरीर का आधार लेने वाले मुझ ऊँची स्थिति समान काशी-कैलाशीवासी हीरो की अवज्ञा करते हैं। वो मूर्ख प्राणियों के ईश्वर-समान स्वरूप को जल्दी नहीं पहचान पाते हैं।

इन सभी तथ्यों पर गौर करेंगे और गीता के श्लोकों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से आपको यह ज्ञात होगा कि तृतीय विश्वयुद्ध वाला महाभारत युद्ध अभी ही महाभारत प्रसिद्ध मूसल रूपी चतुर्थ मिसाइल्स युद्ध के ठीक पहले इसी कलियुगांत में शुरू होने वाला है और गीता-ज्ञान भी भगवान के द्वारा वर्बली दिया जा रहा है। हर 5000 वर्ष में कलियुग के अंत में उसी मुकर्रर शरीर रूपी रथधारी साकार अर्जुन में प्रवेश करके गीता-ज्ञान दे रहे हैं, और बाद में कलियुग का अंत कराके सतयुग की स्थापना भी करा रहे हैं।

यह सृष्टि काल सिर्फ़ 5000 वर्ष का है, परन्तु साधु, संत, पंडित, संन्यासियों ने लाखों वर्ष बता दिया, ताकि उसका कोई हिसाब ही पूछ न सके। महाभारत वनपर्व (188-25,26,29,30), भागवत पु.(12-2-31) और हरिवंश पु.(2-8-14) में 1250 वर्षीय कलियुगी आयु के पक्के प्रमाण हैं जो चारों युगों के चारों सीन समान आयु के ही होते हैं।

विश्व विख्यात सबसे पुरानी सभ्यता मोहनजोदड़ो (4600 वर्ष), हड़प्पा (5000 वर्ष), ग्रीस मेसोपोटोमिया(3000 before क्राइस्ट) जो 5000 वर्ष से ज़्यादा पुरानी नहीं हैं और जिनकी खुदाई में कोई ऐसी वस्तुएं नहीं मिली जो 5000 वर्ष से ज़्यादा पुरानी हों। क्रिश्चियन्स कहते हैं-3000 years before christ was heaven on earth. अर्थात् ये 16 कला सतयुगादि की बात है जब संगमी कलातीत कृष्ण का राज्य था। क्राइस्ट को 2000 वर्ष हुए और क्रिश्चियन्स के अनुसार 3000 वर्ष पूर्व धरती पर स्वर्ग था अर्थात् कुल सृष्टि की आयु 5000 वर्ष ही है, लाखों/करोड़ों वर्षों की बात का तो कोई एक भी प्रमाण नहीं है। अभी सृष्टि की आयु मुसलमानी चौदहवीं सदी के अनुसार भी पूरी हो चुकी है और इस सृष्टि का अंत आ चुका है जिसको महाभारत युद्ध कहें या कयामत। कलियुग 40,000 वर्ष का बच्चा नहीं अपितु अंतिम श्वासों पर है -कल्प (5000 वर्ष) पहले जो महाभारत युद्ध हुआ था अभी फिर से निश्चित रूप से वही समय की परिस्थितियाँ आ गई हैं।

यह सत्य और असत्य की लड़ाई '**ब्रह्माकुमारी विश्वविद्यालय**' और '**आध्यात्मिक विश्वविद्यालय**' के बीच अभी रिहर्सल या शूटिंग के रूप में प्रैक्टिकली छोटे रूप में चल रही है। बाद में यही ब्रॉड सृष्टि नाटक के 100 वर्षीय रिहर्सल का भी समय है। जो आत्मा अभी ब्रह्मा के मानसी सृष्टि-निर्माण में जैसा पार्ट बजाएगी, वो 4 सीन वाली चतुर्युगी में वैसा ही 5000 वर्ष के ड्रामा में नूँध होगा। युद्ध की शुरूआत में युधिष्ठिर ने कहा था- इस धर्म-अधर्म के युद्ध में सभी अपना देवता या राक्षस बनने का मार्ग चुन सकते हैं, उसी प्रकार अभी स्वयं भगवान आकर बता रहे हैं- चाहे तो कौरवों (तथाकथित ब्रह्माकुमारी) के तरफ जाएँ या भग+वान की छत्रछाया में पाण्डवों (आध्यात्मिक विश्वविद्यालय) के तरफ आ जाएँ; क्योंकि हर आत्मा स्वतंत्र है, जीवात्मा अपना ही मित्र है और अपना ही शत्रु है, अपने कल्याण और अकल्याण का फैसला स्वयं कर सकते हैं। लेकिन उस भगवान के बताए रास्ते पर पूरा चलने वाले युधिष्ठिर-जैसे पाण्डव ही स्वर्ग में जाते हैं। जो धर्मयुद्ध से पीछे नहीं हटते हैं, चाहे सारा संसार ग्लानि करे, फिर भी इस दीये और तूफान की लड़ाई में टक्कर लेते हैं; पर सत्य का मार्ग नहीं छोड़ते हैं, सदा स्वर्ग जाने के अधिकारी बन जाते हैं।

भविष्यवाणी

कल्कि पुराण :- स्वतंत्रता के बाद भारत में एक ऐसे महापुरुष का उदय होगा जो वैज्ञानिकों का भी वैज्ञानिक होगा। वह आत्मा और परमात्मा के रहस्य को प्रगट करेगा। आत्मज्ञान उसकी देन होगी। उसकी वेश-भूषा साधारण होगी। उसका स्वास्थ्य बालकों जैसा, योद्धाओं की तरह साहसी, अश्विनी कुमारों की तरह वीर युवा व सुन्दर, शास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित व मानवतावादी होगा।

एण्डरसन(अमेरिका):- अरब राष्ट्रों सहित मुस्लिम बहुल राज्यों में आपसी क्रांतियाँ और भीषण रक्तपात होंगे। इस बीच भारतवर्ष में जन्मे महापुरुष का प्रभाव व प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यह व्यक्ति इतिहास का सर्वश्रेष्ठ मसीहा होगा। वह एक मानवीय संविधान का निर्माण करेगा, जिसमें सारे संसार की एक भाषा, एक संघीय राज्य, एक सर्वोच्च न्यायपालिका, एक झण्डे की रूप-रेखा होगी।

ग्रेरार्ड क्राईसे (हॉलैंड):- भारत देश में एक ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ है जो विश्व कल्याण की योजनाएँ बनाएगा।

जूलबर्ण:- संसार के सबसे समर्थ व्यक्ति का अवतरण हो चुका है। वह सारी दुनिया को बदल देगा। उसकी आध्यात्मिक क्रांति सारे विश्व में छा जाएगी।..... एक ओर संघर्ष होंगे, दूसरी ओर एक नई धार्मिक क्रांति उठ खड़ी होगी जो आत्मा और परमात्मा के नए-2 रहस्य को प्रगट करेगी। .....वह महापुरुष 1962 से पूर्व जन्म ले चुका है। उसके अनुयायी एक समर्थ संस्था के रूप में प्रगट होंगे और धीरे-2 सारे विश्व में अपना प्रभाव जमा लेंगे। असंभव दिखने वाले कार्य को भी वे लोग उस महापुरुष की कृपा से बड़ी सरलता से संपन्न करेंगे।

प्रोफेसर कीरो:- भारत का अभ्युदय एक सर्वोच्च शक्ति के रूप में हो जाएगा; पर उसके लिए उसे बहुत कठोर संघर्ष करने पड़ेंगे। देखने में यह स्थिति अत्यंत कष्टदायक होगी; पर इस देश में एक फरिश्ता आएगा जो हज़ारों छोटे-2 लोगों को इकट्ठा करके उनमें इतनी आध्यात्मिक शक्ति भर देगा कि वे लोग बड़े-2 बुद्धिजीवियों की मान्यता मिथ्या सिद्ध कर देंगे।
गोपीनाथ शास्त्री:- अवतारी महापुरुष द्वारा जबरदस्त वैचारिक क्रांति होगी, जिसके फलस्वरूप शिक्षण पद्धति बदल जाएगी .....वर्तमान शिक्षा प्रणाली केवल पेट भरने तक ही सीमित है। .....कथित आत्मज्ञानहीन बुद्धिजीवियों से लोगों की घृणा होगी। ....भारतवर्ष का एक ऐसा धार्मिक संगठन नेतृत्व करेगा जिसका मार्गदर्शक स्वयं भगवान होगा। धार्मिक आश्रम जन जागृति के केंद्र बनकर कार्य करेंगे।

शास्त्रों में सभी नाम काम के आधार से हैं, जैसे यहाँ कुछ व्याख्याएँ दी हैं :-

अदिति	अदिति-न दीयते खण्ड्यते ब्रहत्वात् इत्यदिति अर्थात् जो कुंती की तरह कौमार्य से खंडित नहीं की जाती। 'भारतमाता' तस्या: पुत्री भारती-सरस्वती वा। कुन्ती {कुं (भूमिं देहं वा)+उनत्ति+झिच्+ङीष्} कुन्तिभोज की पुत्री।
अनन्त	नास्त्यन्त: गुणानामस्य-जिसके गुणों का अंत नहीं है अर्थात् चन्द्रधर महादेव। {जैसे:11/37}
अर्यमन्-	अर्यं-श्रेष्ठं मिमीते मा+कनिन-सूर्य। {जैसे:10/29} {सदा डिटैच चैतन्य ज्ञान-सूर्य शिवज्योति}
अश्वत्थं-	न श्वश्चिरं तिष्ठति सृष्टिवृक्ष। (बंदर जैसा) चंचल मन रूपी अश्व तो हनुमान / पीपल है। {जैसे:15/1}
भीष्म-पितामह	भीष्म का अर्थ-भयंकर, जो सर्प की भाँति भयंकर विषैला शास्त्रीय ज्ञान उगलते हों। पितामह (1/11-12)-अर्थात् कलियुग अंत के उन भयंकर बाबाओं या साधुओं को भीष्मपितामह कहेंगे, जो 'परमात्मा सर्वव्यापी' का उल्टा ज्ञान सुनाकर खास भारत और आम सारे विश्व धर्मों के लोगों की बुद्धि को भटका देते हैं। हद-बेहद के कांग्रेसी कौरवों, नेताओं और पूंजीवादी धृतराष्ट्रों द्वारा परबाबा की तरह उनका बहुत सम्मान किया जाता है; क्योंकि प्रभावित प्रजा से वोट और फिर नोट भी लेना है ना!

परंब्रह्म-	बृंहति वर्धते बृंह्+मनिन्-जो बड़े/वृद्ध रूप में माननीय है- परमब्रह्म। {जैसे:-3/15}
देव-	दीव्यति आनंदेन क्रीडति वा अर्थात् आनंद से जो खेल खिलाता है वह-देवता। {जैसे:11/14}
धेनु-	धीयते पीयते वत्सै:धेट्+नु+इच्च-बच्चों के द्वारा जिसका (ज्ञान) दूध पिया जाता है। {जैसे:10/28}
धृतराष्ट्र-	धृतं राष्ट्रं येन स: (सबसे बड़े-2 पूँजीपति, जिन्होंने चालाकी से गरीबों की धन-सम्पत्ति नोटों से वोटों की राजनीति द्वारा हड़प ली हो)।
द्रोणाचार्य-	कलियुग-अंतकाल के धुरंधर पण्डित-विद्वान-आचार्य, जिनका उत्पत्ति स्थान है द्रोण:=कलश:। (मिट्टी का) द्रोण+ अच् अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान रूपी देहभान की मिट्टी से बनी बुद्धि का अज्ञान कलश।
दुः+र्योधन-	5 स्टार होटलों आदि में भ्रष्टाचारी कामेन्द्रिय का दुष्ट युद्ध करने-कराने वाले कलियुगी राजनैतिक नेताएँ, जो चुनाव काल में व्यक्तिगत ग्लानि से भरे जहरीले धर्म, राज्य, जाति और भाषा भेदी निष्फल और व्यर्थ भाषणबाज़ी के बॉम्ब बरसाकर बेकायदे बनी प्रजातंत्र सरकार में अपने ऊँचे-2 तबक्कों में बैठे निरीह साधारण प्रजा का शोषण करते और कराते हैं।
गाण्डीव-	गाण्डि ग्रन्थिरस्यरस्ति-वज्र की गांठ से बना हुआ लचीली देह का पुरुषार्थ रूपी धनुष, जो सोम, वरुण और (रूद्र रूप) अग्नि के पास भी रहा था। काँटों के संसार रूपी जंगल में भिन्न-2 धर्म-खण्डों में बँटे खांडववन का संहार करने के लिए इसका निर्माण हुआ था और देव-रक्षित था। {जैसे:-1/30}
हृषीकेश-	ज्ञानेन्द्रियों रूपी घोड़ों से भी क्षरित न होने वाला अमोघवीर्य ईश्वर। {जैसे:-1/15, 2/9}
ईश्वर:-	ईश+वरच्-महादेव, कामदेव, चैतन्यात्मा। {जैसे:-4/6, 15/8} {कामविकार अंदर है।}
जनार्दन-	जनै:+अर्द्यते-याच्यते पुरुषार्थ लाभाय। {जैसे:-1/36} {अवढरदानी परमेश्वर महादेव}
जयद्रथ-	जयत्+रथ: अर्थात् जिसका विशालकाय विदेशी अरबियन देह रूपी रथ ही जय पाता हो। {जैसे:11/34}

कौन्तेय–	**कुन्त्याः अपत्यं अर्थात् कुंती पुत्र अर्जुन। {**जैसेः–1/27, 2/14**}{**कुं देहं (भानं) दारयति**}**
केशव–	**केशाः प्रशस्ताः सन्त्यस्य–जिसके ज्ञान के केश फैले हुए हैं अर्थात् महादेव। {जैसेः1/31}**
कृष्ण–	**कर्षत्यरीन्–कर्षति+अरीन् महाप्रभाव शक्त्या अर्थात् जो शक्ति के महाप्रभाव से विकारों रूपी शत्रुओं की खिंचाई करता है। {**जैसेः–1/28**}** और **{**आत्मस्थिति वालों का आकर्षणकर्ता त्रिनेत्री महादेव**}**
कौरव–	**(कुत्सितं रवं यस्य) कौ+रव अर्थात् कौओं की तरह कुत्सित, व्यर्थ भाषणबाज़ी का सरासर झूठा शोरगुल करने वाले, जिन्होंने धर्महीन धर्म+निः+अपेक्ष सरकार बनाकर आचार–विचार, आहार–व्यवहार का 5 स्टार होटलों में सर्वथा त्याग कर दिया और जिन्होंने अवतरित परमात्मा को जानने पर भी,मानने से साफ इन्कार कर दिया है; जैसे (रावयते लोकान्) अर्थात् ('पंडित सोइ जोइ गाल बजावा' जैसा) लोगों को रुलाने वाले, प्रकांड पंडित रावण जैसी बोल–2 की निष्फल भाषणबाज़ी बहुत करते हैं।**
मधुसूदन–	**मधु–जैसे मीठे कामविकार रूपी दैत्य को मारने वाले कामनाथ शिव, मधु/शराब के तमोगुण से पैदा हुआ दैत्य। {**जैसेः–1/35, 2/1**}**
मंत्र–	**मन्त्यते, गुप्तं परिभाष्यते–गुप्त बातचीत, भाषणादि। {**जैसेः–9/16**}**
नकुल–	**नास्ति कुलं यस्य–जो न पांडव कुल के हैं, न कौरव या यादव कुल के, कभी भारत के और कभी विदेशी; इन्होंने पश्चिम दिशा के विदेशियों पर विजय पाई थी और अत्यन्त सुंदर, सुडौल, हृष्टपुष्ट हैं। {**जैसेः1/16**}**
नारद–	**नारं परमात्मविषयकं ज्ञानं ददाति–परमात्म विषयक नार=ज्ञान देने वाला अर्थात् नारद। {**जैसेः10/13**}**
पंडा–	**पंडयति संचयति–इकट्ठा करता है। ज्ञान–धन की बात है। {**अजन्मा/अगर्भा होने से अखूट ज्ञान भंडारी शिव का बड़ा बच्चा महादेव जो भगवान नहीं है, बड़े–ते–बड़ा देव है।**}**

पाण्डव–	**भगवान को जानने, मानने और आदेशानुसार चलने वाले परमात्मा पंडा/पांडु के थोड़े से पुत्र जो कलियुगांत & सतयुगादि के संगमयुग में मुक्ति–जीवन्मुक्तिधाम का रास्ता बताने वाले पण्डा/पांडु शिवबाबा के पुत्र पांडव हैं जिनमें युधि+स्थिर जैसे स्थिरबुद्धि पांडव भी हैं जो जीते जी स्वर्ग में जाते हैं।**
पार्थ–	**पृथिव्याः ईश्वरः–पृथ्वी का शासनकर्ता– विश्वविजयी अर्जुन (विश्वनाथ)। {**जैसेः–1/25, 2/3**}**
सहदेव–	**सह दीव्यति, क्रीडति वा–जो परमात्मा के साथ ही खेलते हैं या देवसहयोगी हैं। {**जैसेः–1/16**}**
शाश्वतं–	**सदाकाल रहने वाला। {**जैसेः–2/20, 18/62**}** **{**तीनों काल में सदा रहने वाला महादेव/आदम।**}**
वार्ष्णेय–	**वृष्णि वंश से उत्पन्न अर्थात् ज्ञानवर्षक ज्ञानियों के कुल से उत्पन्न–वृष्णि का अर्थ है–ज्ञानवर्षा करने वाला मेघ; वरुणवंशी वार्ष्णेय। {**जैसेः–1/41, 3/36**}**
वासुदेव–	**धन दाता परमपिता वसुदेव अर्थात् प्रैक्टिकल ज्ञानधनदाता शिवपुत्र महादेव। {**जैसेः–7/19, 10/37**}**
विभुं–	**वि=विशेष रूप से+भू भवनं वा–विराट रूप में, विशेष रूप से प्रगट होता है। {**जैसेः–10/12**}**
विभूति–	**विविधं भवति सृष्टिः+अनया–जिससे विशेष प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। अतिमानवशक्ति, समृद्धि**
व्यास	**{वि+आस्} –जो जीवन में ज्ञानमंथनार्थ विशेष रूप से बैठता है। {**जैसेः–18/75**}**
यातयामं–	**गतः उपभोगकालो यस्य तं–जिसका उपभोग काल समाप्त हो चुका है। {**जैसेः–17/10**}**
युधिष्ठिर–	**युधिः+स्थिरः–धर्मयुद्ध में स्थिर रहने वाला परंब्रह्म, जो पांडवों में सबसे प्रधान हैं और धर्मराज कहे जाते हैं। {**जैसेः–1/16**}**

अध्याय-1

अर्जुनविषादयोग-नामक पहला अ0।।

[1-11 दोनों सेनाओं के प्रधान-2 शूरवीरों की गणना और सामर्थ्य का कथन]

धृतराष्ट्र उवाच- धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।। 1/1

धृतराष्ट्र उवाच संजय	{धृत+राष्ट्र-जिसने शिव पण्डा अर्थात् पाण्डु के पाँच उंगलियों में गण्य अल्पसंख्यक 5 पाण्डवों की राज्य-संपत्ति को नोटों से वोटों वाली बेकायदे प्रजातंत्र सरकार द्वारा धर लिया है, ऐसे अन्याय से एकत्रित हुए धन, पद, मान-मर्तबे और जनबल के मद में अज्ञानान्धकार में पूरे ही अंधे हुए पूंजीवादी राजा बने} धृतराष्ट्र ने कहा- हे संजय! {सं+जय=अर्थात् हे संपूर्ण विश्वविजयी संजय!}
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे	{इस तमोगुणी तामसी कलियुग-अंत में चल रहे हिंदू-मुस्लिमादि "सर्वधर्मान् परित्यज्य" (गीता 18-66) के अनुसार ढेरों साम्प्रदायिक} धर्मों के युद्धक्षेत्र में {और उन धर्मों के आधार पर आडम्बरित-मुर्दा जलाना,जमीन में दफनाना आदि ढेरों} कर्मकाण्डों के कर्मक्षेत्र में,{उन मठ-पंथ-संप्रदायों के रूप में}
समवेता युयुत्सवः	एकत्रित हुए {तामसी बुद्धि वाले बड़े-2 बाहुबल की एटॉमिक हिंसा पर उतारु और} युद्ध के लिए उत्कंठित
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत	मेरे {हठी-क्रोधी} पुत्रों और पाण्डु के पुत्रों {पाण्डवों} ने क्या {फैसला} किया?

● धर्मक्षेत्रे कर्मक्षेत्रे। कुरूक्षेत्रे माने कर्मक्षेत्रे। इस समय की बात, भगवानुवाच- ये धृतराष्ट्र, अंधे के औलाद और सजे के औलाद क्या करत भये? (साकार मुरली तारीख 19.6.66)

● इस धर्म के क्षेत्र में, धर्म के अखाड़े में, कर्मक्षेत्रे कर्म के अखाड़े में, कर्म की भूमि में युद्ध की इच्छा वाले कोई अच्छे कर्म करने वाले थे, कोई बुरे कर्म करने वाले थे, कोई असुरों की मत पर चलने वाले, कोई ईश्वर की मत पर चलने वाले। (वी.सी.डी.186)

● पाण्डव और कौरव यह है संगमयुग पर। तुम पाण्डव संगमयुगी हो, कौरव कलियुगी हैं। (मुरली तारीख 19.6.70 पृ.1 अंत)

● गायन भी है - एक है अन्धे की औलाद अन्धे और दूसरे है सज्जे की औलाद सज्जे। धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर नाम दिखाते हैं। (मुरली तारीख 17.2.90 पृ.1 आदि)

संजय उवाच-दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनः तदा। आचार्यं उपसङ्गम्य राजा वचनं अब्रवीत्।। 1/2

व्यूढं पांडवानीकं दृष्ट्वा तु	व्यूहाकार, {व्यवस्थित, संगठित व नियंत्रित} पांडवों की सेना को देखकर अब
राजा दुर्योधनः तदा आचार्यं	{स्वभाव से दुष्टयुद्धकर्ता} राजा दुर्योधन ने तब {घड़े जैसी बुद्धि के विद्वान} आचार्य द्रोण के
उपसंगम्य वचनं अब्रवीत्	{सामने ही} पास जाकर {बड़े गर्व से 1 बड़े राजा की तरह अपने गुरु से} यह वचन बोला-

● पाण्डव सेना हो ना। सेना अलबेली रहती है या अलर्ट रहती है? सेना माना अलर्ट, सावधान, खबरदार रहने वाले। अलबेला रहने वाले को सेना का सैनिक नहीं कहा जाएगा। (अव्यक्त वाणी 21.11.92 पृ.80 आदि)

● द्रोणाचार्य कौन है? द्रोण माना क्या? द्रोण माने घड़ा, आचार्य माना आचार्य। घड़ा कलश को कहा जाता है अर्थात् ज्ञानकलश का आचार्य। (वी.सी.डी 1454)

पश्य एतां पाण्डुपुत्राणां आचार्य महतीं चमूं। व्यूढां द्रुपद्पुत्रेण तव शिष्येण धीमता।। 1/3

आचार्य तव धीमता	{विकारी मानवनिर्मित ढेर शास्त्रों के प्राचार्य माने जाने वाले} हे आचार्य! अपने बुद्धिमान {बने}
शिष्येण द्रुपद्पुत्रेण व्यूढां पांडुपुत्राणां	शिष्य द्रुपद्पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूहरूप में सजाई गई पाण्डु-पुत्रों की
एतां महतीं चमूं पश्य	इस {थोड़े समय में इतनी शीघ्रता से निर्मित} विशाल {ज्ञानशस्त्र सज्जित, पर्वताकार} सेना को देखिए।

● हमारी ये पाण्डव सेना है। क्या? कोई राज्य लेना होता है तो किसका सहारा लेते हैं? सेना बनाते हैं। संगठन तैयार करते हैं। तो ये हमारी पाण्डव सेना है। (वी.सी.डी. 1149)

- पाण्डव के महारथी जिनको कहा जाता है, उनकी भी सेना है। (साकार मुरली तारीख.2.1.63)
- पांडव सेना है ज्ञानी तू आत्मा। (अव्यक्त वाणी 16.10.69 पृ.120 अंत)
- बच्चों ने समझा है हमारी पाण्डव सेना रुहानी सेना है। रुहानी बाप के द्वारा बच्चों को रुहानी ज्ञान मिलता है। (वी.सी.डी. 1652)

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि। युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।। 1/4

अत्र युधि	यहाँ {इस धर्मयुद्ध की पाण्डवीय सेना में धृष्टद्युम्न[1] ही नहीं, बल्कि} युद्ध में {सभी कौरवों-कीचकों-राक्षसों के बीच}
भीमार्जुनसमा महेष्वासा	{भयंकरकर्मी} भीम[2] और अर्जुन[3] के समान महाधनुर्धारी {गदाधारी, शस्त्रधारी व महान},
शूरा युयुधानो	शूरवीर {सत्य नारायण जैसा सदा युद्ध-इच्छा के साथ सत्यार्थ युद्धकर्ता विजयी सात्यकि} [4]युयुधान
च विराटः	और {आम्र के प्रवृत्तिमार्गी द्विदलीय बीज विष्णु जैसा मत्स्यदेश का बंगाली बीजरूप राजा} [5]विराट
च महारथः द्रुपदः	तथा {द्रौपदी यज्ञकुण्ड का निर्माता} महारथी [6]द्रुपद है। {जिसका पहले से ही ऊँचा & ध्रुव+पद है}

- पाण्डव के महारथी जिनको कहा जाता है उनकी भी सेना है और उनके भी यादगार मन्दिर हैं। (वी.सी.डी. 1697)

धृष्टकेतुः चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्। पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः।। 1/5

धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान्	धृष्टकेतु[7] और {एक ही सुर का वक्ता} [8]चेकितान तथा बलवान {अमोघवीर्य शिव की नगरी}
काशिराजः पुरुजित् कुन्तिभोजः	काशी का [9]राजा, {अनेक नगरों का विजेता} पुरुजित्[10], {यदुवंशी/यादव} [11]कुन्तिभोज
च नरपुंगवः शैब्यः	और {मननशील} मनुष्यों में श्रेष्ठ {सदा शिवज्योति भगवान का पुत्र पुरुषोत्तम जैसा} [12]शैब्य {है}।

- महाभारी लड़ाई में मेल्स का नाम है। (मुरली तारीख 25.1.67 पृ.2 अंत)
- ये महारथियों के नाम दिए हैं। उन महारथियों में एक नरपुंगवः भी बताया है। **"शैब्यश्च नरपुंगवः"** जो शिव को फॉलो करने वाले वो शैव। मनुष्यो में कुछ ब्रह्मा को फॉलो करते हैं, कुछ विष्णु को फॉलो करते हैं, कुछ शिव को फॉलो करते हैं। उन फॉलो करने वालों में श्रेष्ठ मनुष्य कौन हैं? जो शिव को फॉलो करते हैं (रुद्रगण)। (वार्तालाप-1560)
- बापदादा अपनी सेना के महावीरों को, अस्त्रधारी आत्माओं को देख रहे थे कि कौन-कौन ऑलमाइटी अथार्टी की पाण्डव सेना में मैदान पर उपस्थित हैं। क्या देखा होगा? कितनी वण्डरफुल सेना है! दुनिया के हिसाब से अनपढ़ दिखाई देते हैं लेकिन पाण्डव सेना में टाइटल मिला है - नॉलेजफुल। (अ.वा.17.3.82 पृ.296 मध्य)

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्। सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः।। 1/6

विक्रान्त युधामन्युश्च वीर्यवान्	{युद्धकला में माननीय महापराक्रमी} विक्रमी [13]युधामन्यु तथा वीर्यवान/बलवान
उत्तमौजाः च सौभद्रो	{महादेव जैसा उत्तम ओज वाला} उत्तमौजा[14]और {रुद्र-भगिनी} सुभद्रा का पुत्र {मामाभिमानी [15]अभिमन्यु}
द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः	और द्रौपदी के {पाँचों} पुत्र-{ये} सब ही {दिग्गाभिमानी हाथी पर सवार जैसे} महारथी हैं।

- जो सच्चे महारथी हैं अर्थात् सत्यता की शक्ति से चलने वाले महारथी हैं। (अ.वा. 27.2.96 पृ132 अंत)
- सदा अपने को कर्मक्षेत्र पर कर्म करने वाले योद्धे अर्थात् महारथी समझो। जो युद्ध के मैदान पर सामना करने वाले होते हैं, वह कभी भी शस्त्रों को नहीं छोड़ते हैं। सोने के समय भी अपने शस्त्रों को नहीं छोड़ते हैं।

(अव्यक्त वाणी 31.5.72 पृ.295 आदि)

● अभिमन्यु अभिमान की औलाद है, उसमें कूट-2 के अभिमान भरा हुआ है। क्या अभिमान भरा हुआ है? मैं भगवान का शिष्य हूँ, मेरे को पढ़ाई पढ़ाने वाला बचपन से कोई भी नहीं है, कौन हैं? खुद भगवान मेरे को बचपन से पढ़ाई पढ़ा रहा है, मैं किसी गुरु को नहीं मानता। अब यह नहीं देखेगा कि वो पढ़ाई विधिवत पढ़ करके पूरी की है या नहीं की है? विधि से सिद्धि मिलेगी या विधि को छोड़ करके सिद्धि लेंगे? विधिवत पढ़ाई पढ़नी चाहिए। फिर दूसरा अभिमान है मेरे को जन्म देने वाला ऊँचे-ते-ऊँचा पुरुषार्थी जिसके शरीर रूपी रथ को भगवान डायरेक्ट कंट्रोल करता है, वो मेरा बाप है, वो मेरा जन्मदाता है। ये दो अभिमान पतन के गर्त में ले जाने वाले हैं, देह अहंकार के सूचक हैं। भगवान को कोई मानता हो; लेकिन भगवान की बातों को ना मानता हो। मुरलीधर को मानता हो और मुरली से प्यार ना हो, मुरली रोज सुनता ना हो। जहाँ मुरली का संगठन क्लास चलता है, वो भी अटैंड न करता हो तो प्रैक्टिकल जीवन में पास होगा या फेल होगा? फेल हो जाता है। (वार्तालाप 737)

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम। नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते।। 1/7

द्विजोत्तम त्वस्माकं ये विशिष्टा	हे द्विजन्मा {मानवीय गीता-ज्ञानी} ब्राह्मणों में उत्तम! हमारे जो विशिष्ट {योद्धा} हैं,
तान्निबोध मम सैन्यस्य नायका	उन्हें {भी सेनापति होने योग्य आप} जान लीजिए। {वे} मेरी {कौरव} सेना के नायक हैं।
तान् ते संज्ञार्थं ब्रवीमि	उन्हें {पहले ही} आपके परिज्ञानार्थ बताता हूँ; {क्योंकि पितामह के बाद आप ही महारथी हैं।}

● पाण्डव सेना में कौन-कौन महारथी हैं और कौरव सेना में कौन-कौन महारथी हैं। तुम दोनों सेनाओं को जानते हो न। (मुरली तारीख 18.4.73 पृ.4 आदि)

● उसमें मुख्य एक्टर्स डायरेक्टर्स कौन हैं, वह जानते हैं। इसलिए तुम पूछते हो यह बेहद का नाटक है। इसमें कौन-2 मुख्य हैं। शास्त्रों में तो लिख दिया है कौरव सेना में कौन बड़े हैं, पांडव सेना में कौन बड़े हैं। (मुरली तारीख 19.8.72 पृ.1 मध्य)

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः। अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च।। 1/8

भवान्भीष्मश्च कर्णः	आप {स्वयं आचार्य हैं ही} और पितामह भीष्म {जिनकी माहिती शब्दार्थों में है,} ऐसे ही कर्ण
च समितिंजयः	और {आदि ना0 की ज्यों सारे संसार में कभी न हारने वाला, सदाकाल युद्ध में विजयी} समितिंजय,
कृपः च तथा एव	{कुरू-राजपरिवार में निस्वार्थ (?) सेवा वाले बड़े कृपालु?} कृपाचार्य, और उसी तरह {आपका प्रिय पुत्र}
अश्वत्थामा	{मन रूपी सर्पमणि का धारणकर्ता} अश्वत्थामा, {दुर्योधन के सामने ही निडर होकर कटाक्षकर्ता और}
विकर्णः च	{चापलूस कर्ण और दुःशासन के भी विपरीत स्वभाव वाला} विकर्ण और {इस चापलूसी संसार में}
सौमदत्तिः	{शीतल ज्ञान कृष्णचंद्र उर्फ सतयुगी 16 कला नारायण की तीसरी पीढ़ी के नारायण में प्रविष्ट, भूरि-2 प्रशंसनीय महात्मा बुद्ध ही} सोमदत्त-पौत्र भूरिश्रवा है। {इस बात के संज्ञानार्थ AIVV का एडवांस कोर्स अनिवार्य है।}

● धृतराष्ट्र के बच्चे यानी अंधे की औलाद, उनकी सेना में कौन-2 थे? देखो आते हैं ना- भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा। ये किसकी सेना में थे? धृतराष्ट्र की। अंधे की औलाद अंधे। (साकार मुरली तारीख 04.06.1965)

● भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा- ये सभी किसके थे? कौरव की सेना में थे। (साकार मु.ता.27.2.66)

● अश्व स्था मा । कैसी माँ? जो अश्व में स्थित है। "अश्व" माने चंचल मन रुपी घोड़ा तो मन रुपी घोड़े में स्थिर रहना अच्छा है या बुद्धि में स्थिर रहना चाहिए? मन चंचल है, तो जो भी मन में आया सो ही किया। पाप-पुण्य कुछ भी नहीं देखा। मन में आया। भले क्रोध आ गया। तो 5 पांडवों की हत्या करने के लिए चल पड़े। ये भी नहीं देखा कि जिनकी हम हत्या कर रहे हैं वो छोटे-2 बच्चे हैं पांडवों के या पांडव हैं। बस, धड़ाधड़ हत्या कर दी। तो मनमाना काम करना, मनमत पर चलना वो अश्वत्थामा का काम है। मन कौन है? ब्रह्मा मन है। मनमत के आधार पर जो काम किए जाते हैं या कराए जाते हैं वो अश्वत्थामा के कार्य हैं। (वीसीडी 1574)

● यह साधु लोग आदि सब (कौरव सम्प्रदाय) हैं।.....भीष्म-द्रोणाचार्य आदि सब ही हैं साधुओं के नाम। (मुरली तारीख 23.11.66 पृ.1 अंत)

● भीष्मपितामह अर्थात् बालब्रह्मचारी द्रोणाचार्य अश्वत्थामा आदि। यह सभी विद्वान पंडितों के नाम हैं।

(मुरली तारीख 18.2.72 पृ.1 मध्य)

● तुम्हारी धर्मयुद्ध हुई है विद्वान-पंडितों के साथ। धर्मयुद्ध को लड़ाई नहीं कहा जाता।

(मुरली तारीख 22.5.64 पृ.3 आदि)

अन्ये च बहवः शूराः मदर्थे त्यक्तजीविताः। नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः।। 1/9

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे जीविताः	और भी अनेक {कौरवपक्ष के} शूरवीर हैं {जो विशेष रूप से} मेरे लिए अपने जीवन का
त्यक्त सर्वे नानाशस्त्र-	{भी मन मारकर} त्याग करने वाले हैं। {वे} सभी अनेक {छल-छिद्र वाले ज्ञान-अज्ञान}-शस्त्रों से
प्रहरणाः युद्धविशारदाः	{मेरी मनमत से} प्रहार करने वाले हैं {तथा झूठी और आततायी हिंसक}-युद्धकला में निपुण हैं।

● यह (हिंसक युद्ध वाली) है ही झूठी दुनिया। (शास्त्रों में) झूठ मिरई झूठ। सच्च की रती नहीं। (मुरली तारीख 12.2.71 पृ.3 आदि)

● कौरवों में भी मुख्य-2 जो हैं, उनका नाम बाला है ना! यूरोपवासी यादव भी कितने हैं। सभी के नाम हैं। अखबार में नाम पड़ते हैं, जो नामीग्रामी हैं। सभी की परमपिता परमात्मा साथ विपरीत बुद्धि है। (मुरली तारीख 25.3.72 पृ.2 मध्यांत)

अपर्याप्तं तत् अस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं। पर्याप्तं तु इदं एतेषां बलं भीमाभिरक्षितं।। 1/10

भीष्माभिरक्षितं तत् अस्माकं बलं	{समाज व सरकार में महासम्माननीय निवृत्ति मार्गी} भीष्म से रक्षित वह हमारी सेना
अपर्याप्तं तु इदं भीमाभिरक्षितं	अपार है, और यह {भेड़िए जैसे खदूस, राक्षसी वृत्ति के लम्बे-चौड़े } भीम द्वारा रक्षित
एतेषां बलं पर्याप्तं	इन {पाँचों पांडु-पुत्र पाण्डवों} की {अल्पसंख्यक} सेना सीमित है। {अतः हमारी जीत निश्चित है।}

● यादव कितने हैं, पांडव बहुत थोड़े हैं। गाया भी जाता है- राम (पाण्डू से पांडव) गयो, रावण (कुरु से कौरव) गयो और यादव (क्रिश्चंस) जिनकी बहुत सम्प्रदाय है। (मुरली तारीख 11.6.64 पृ.1आदि)

● अभी तो कौरव राज्य है। यह तो हिस्ट्रियों में भी (अभी की यादगार) लगा हुआ है कि पाण्डवों को कौरव बहुत हैरान करते थे; क्योंकि कौरव थे बहुत। पाण्डव थे थोड़े। शास्त्रों में तो बहुत बातें लिख दी हैं। तुम अभी प्रैक्टिकल में देखते हो। (मुरली तारीख 3.11.71 पृ1 अंत)

● कौरवों का है बड़ा झुण्ड; पाण्डवों का है छोटा झुण्ड। (मुरली तारीख 14.7.63 पृ.2 मध्य)

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः। भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि।। 1/11

च भवन्तः सर्व एव	इसलिए आप सभी लोग {जो भारतीय प्रजातंत्र राज्य के छोटे-बड़े पदाधिकारी रूप में शासक हैं,}
यथाभागं सर्वेषु	स्वविभागों {डिपार्टमेण्ट्स} के अनुसार, सब {पैदल-अश्व-गज-रथादिक पुरुषार्थियों रूप अधिकारियों के}
अयनेषु अवस्थिताः हि	मोर्चों पर डटे हुए हैं, निःसन्देह {जन-धन-वैभव-बाहुबल या रिश्वतखोरी द्वारा अन्याय से भी}
भीष्मं एव अभिरक्षन्तु	{सब ओर से} भीष्म की ही रक्षा करें; {क्योंकि वोटदाता प्रजाजनों में इन संन्यासियों का बहुत मान है।}

● भीष्मपितामह...होते ही हैं शंकराचार्य वाले लोग। (साकार मुरली तारीख 5.7.65)

● कहाँ से भी कोई संन्यासी पास करता देखेंगे तो उनको माथा ज़रूर टेकेंगे। हाथ जोड़ेंगे। कोई तो रास्त में ही पाँव पर पड़ जाते हैं। ऐसे भी भक्त होती हैं। गेरू कपड़े वाला देखा तो सिर झुकाया। अभी बाप समझाते हैं उन्हों को तुम बहुत खिलाते पिलाते हो ना। .... यह भी कितने ढेर संन्यासी हैं। उन्हों को तो तुम पाँव भी पड़ते हो, खाना भी देते हो। (मुरली तारीख 5.6.69 पृ.3 आदि)

● ये बड़े-बड़े सन्यासी-उदासी, विद्वान, पण्डित, आचार्य बगैरह-बगैरह। इस दुनियाँ में उनका कितना भी बड़ा मान हो, बड़े-बड़े देखो कितने भी बड़े हों। देखो क्या कहते है, वो तो कह देते हैं सर्वव्यापी है। (वी.सी.डी. 2839)

[12-19 दोनों सेनाओं की शंख-ध्वनि का कथन]

तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः। सिंहनादं विनद्य उच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्।। 1/12

तस्य हर्षं संजनयन् कुरुवृद्धः	उस दुर्योधन को हर्ष उत्पन्न कराते हुए, कौरवों में वयोवृद्ध, {कायरों के ब्रह्मचर्य में सम्माननीय}
प्रतापवान् पितामहः उच्चैः विनद्य	{व} प्रतापी माने जाने वाले पितामह भीष्म ने {लाउडस्पीकरों की आवाज़ द्वारा ज्ञान-सूर्य के अखूट, अखंड ज्ञान-प्रकाश को ढकने वाले बादलों-जैसा} जोर से गरजकर, {हिंसक/खूंखार}
सिंहनादं	{जानवरों की दुनिया में बबर} शेर-जैसी गुंजायमान दहाड़ मारते हुए, {सारी दुनिया के झूठे जगद्गुरु के अपने नशे में}
शंखं दध्मौ	{आदि शंकराचार्य कृत 'भगवान सर्वव्यापी' की 12-14 सौ वर्षीय दीर्घकालीन अज्ञानता का मुख रूपी} शंख बजाया।

● सभी से बड़े-ते-बड़े असुर हैं संन्यासी, जो कहते हैं ईश्वर सर्वव्यापी है। (जबकि भगवान तो एक होता है।) (मुरली तारीख 7.1.71 पृ.3 अंत)

● साधु-संत आदि सभी पतित भ्रष्टाचारी हैं। सभी से जास्ती हमारी (शिव+ब्रह्मा की) ग्लानि करते हैं। जो कहते हैं- परमात्मा सर्वव्यापी है। (मुरली तारीख 1.1.73 पृ.3 अंत)

● तुम अभी कांटों से फूल बनते हो। संन्यासी ऐसे नहीं कहेंगे यह (दुःखदाई) काँटा है। वह तो कहते हैं परमात्मा सर्वव्यापी है। सभी भगवान के रूप हैं। (मुरली तारीख 12.2.69 पृ.1 मध्यांत)

● सारी दुनिया में सभी के मुख से गंद ही निकलता है। सबसे बड़ा गंद संन्यासियों के मुख से निकलता तो कहते ईश्वर सर्वव्यापी है। कितनी गाली देते हैं (बेहद के) बाप को। भगवान को कच्छ-मच्छ अवतार कह देते। कितना गंद निकालते हैं। इसलिए इनका हिरण्यकश्यप आदि नाम रखा है। (मुरली तारीख 30.1.70 पृ.3 अंत)

● यह है इन सन्यासियों का मिथ्या ज्ञान। परमपिता P. से सबको बेमुख कर देते हैं। P. को ही 84 लाख योनियों में ले गए हैं। इनको कहा जाता है धर्म ग्लानि। इन्होंने ही भारत को दुब्बण में फँसा दिया है। एक (सर्वव्यापी की) ही बात में सारी दुनिया निधणकी बन गई है। वह कौन-सी बात? ईश्वर सर्वव्यापी है, और फिर संन्यासी कहते

शिवोहम्, ब्रह्मोहम्। उन्हों को कहा जाता है निधणके। (मुरली तारीख 15.1.58 पृ.2 आदि)

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः। सहसा एव अभ्यहन्यन्त स शब्दः तुमुलः अभवत्।। 1/13

ततः शंखाश्च भेर्यः	तब {तो बाद में अनेक प्रकार के तुण्डे-2 मतिर्भिन्ना, छोटे-बड़े-मध्यम मुखों वाले ज्ञान}-शंख और भेरियाँ।
पणवानक च गोमुखाः	ढोल, नगाड़े और {जैसे ज्ञान-अज्ञान के बाजे, समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो} रणसिंघा {चैनल्स आदि मीडिया, समाज और सरकार के लोगों की बड़ी बुलंद आवाज़ें}
सहसैवाभ्यहन्यन्त सः तुमुलः शब्दोऽभवत्	अचानक ही होने लगीं। उन {सब} का बड़ा भारी शोरगुल होने लगा।

● मीडिया से माया का घोर अंधकार फैल जाता है इस दुनिया में घोर पसारा। अरे! सब झूठ बोलने लग पड़ते हैं। ब्रह्माकुमार-कुमारी अपन को कहते हैं- हम ब्रह्मा के वत्स हैं और वो सरकार के नुमाइंदे, वो भी कहते हैं- अरे! हम तो कन्ट्रोल करते हैं सारे भारत को और उनकी भी बुद्धि खराब करने वाले ये मीडिया के लोग, ये अखबार, ये टी.वी चैनल्स, ये इन्टरनेट ये सब झूठ बोलने लग पड़ते हैं। ऐसा ये रावण का राज्य शुरू होता है। (वी.सी.डी. 3420)

● बहुत ग्लानि की बात आती है और वो ग्लानि है वो सुन करके एक दम फां हो जाते हैं। कौन? भारतवासी या विदेशी? भारतवासी फां हो जाते हैं। तो ये जो बॉम्बस बनाते हैं ग्लानि के, व्यभिचार (-दोष) की ग्लानि सबसे बड़ी ग्लानि हुई ना भारतियों के हिसाब से। समझा ना? तो ये बॉम्बस हैं बेहद के ब्राह्मणों की दुनिया में, ग्लानि के बॉम्बस, किसकी ग्लानि? ऊँच-ते-ऊँच पार्टधारी जो विश्वपिता है (वी.सी.डी. 2854)

ततः श्वेतैः हयैः युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ। माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।। 1/14

ततः श्वेतैः हयैः युक्ते महति	तब {4 मलविहीन} श्वेताश्वों {के मनरूप संगठित चतुर्मुखी ब्रह्मा} से युक्त {अर्जुन के} महान
स्यन्दने स्थितौ मा+धवः च	{मुकर्रर शरीर रूपी} रथ में बैठे हुए माता पार्वती-पति {शिवबाबा} और {पांडु रूप पंडा के पुत्र}
पाण्डवः एव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः	पाण्डव अर्जुन ने भी अपने दिव्य {ईश्वरीय वाणी बोलने वाले मुख रूपी} शंख बजाए।

● इस (ब्रह्मा) में तो है (साकार-निराकार के मेल) बाबा की प्रवेशता। इनको अर्जुन रथ कहते हैं। (मुरली तारीख 2.3.89 पृ.2 आदि)

● इस रथ में (शिव) बाबा रथी बन हमको शिक्षा दे रहे हैं बाकी घोड़े-गाड़ी आदि की बात नहीं है। बाप बच्चों का (सारथी) सर्वेंट है। सर्वेंट तो आगे बैठेगा ना। (मुरली तारीख 15.11.73 पृ.3 अंत)

● यह (शंख रूपी) मुख की बात है। इससे तुम ज्ञान शंख बजाते हो। (मुरली तारीख 15.6.72 पृ.1 अंत)

● बाप यह (मुख की) शंख-ध्वनि करते रहते हैं। उन्होंने फिर भक्तिमार्ग में वह शंख और तुतारे आदि बैठ बनाये हैं। बाप तो इस मुख द्वारा समझाते हैं। (मुरली तारीख 7.11.70 पृ.3 अंत)

● शिव बाबा भी कहते हैं ब्रह्मा द्वारा तुमको अभी अच्छे-2 ज्ञान गोले दे रहा हूँ। मनुष्यों को अच्छी तरह से शंख ध्वनि करो। गीता का पार्ट फिर से बज रहा है और हेविनली (गाड फादर द्वारा) किंगडम स्थापन हो रही है। (मुरली तारीख 16.10.72 पृ.1 आदि)

● पांडवों का स्वयं परमात्मा सारथी था। (मुरली तारीख 20.2.71 पृ4 आदि)

(2017-2018 में ग्लानि की रण-भेरियाँ सुनकर बच्चे तो लोकलाज में आकर ज्ञान सुनाना बंद करने लगते हैं; परन्तु विरोधी दल के द्वारा लगातार मीडिया में हो रही धुँआधार ग्लानि के उत्तर में शिवबाबा ज्ञान सुनाते हैं इसलिए पांडव सेना में पहला शंख सारथी भगवान् और रथी अर्जुन ने साथ-2 बजाया उसके बाद नंबर (वार) महारथी बच्चे बजाते हैं।)

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः। पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः।। 1/15

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।। 1/16

हृषीकेशो पांचजन्यं	{धरणी माँ के साथ अन्य गौ रूपा} इन्द्रियों के स्वामी {अमोघवीर्य} शिवबाबा ने {पंचजन/पंचमुखी ब्रह्मा से} पांचजन्य,
धनंजयः देवदत्त	{सच्ची गीता-} ज्ञानधनजेता {होने से योगबल द्वारा विश्वविजेता} अर्जुन ने इंद्रदेव-प्रदत्त देवदत्त {नामक,}

भीमकर्मा वृकोदरः	{सैकड़ों धुरंधर कौरवों-कीचकों-राक्षसों के अकेले हत्यारे} भयंकर कर्म करने वाले {सर्वभक्षी खदूस} भेड़िया समान पेट वाले भीम ने {संसार रूपी जंगल में महाविनाशकारी व्याघ्र की दहाड़ में}
पौण्ड्रं महाशंखं कुन्तीपुत्रो	{पुण्डरीक-चिह्नित} पौण्ड्र नामक महाशंख, कुंती माता के पुत्र {जो अहिंसावादी धर्मयोद्धा थे, उन}
राजा युधिष्ठिरः अनन्तविजयं	{सदा ही सत्यवादी मुख वाले} राजा युधिष्ठिर ने {सत्य का सदा विजयदाता} अनन्तविजय,
नकुलः सुघोष	{महाविषैले व्यभिचारी वृष्णिवंशी विदेशियों प्रति न्यौला-जैसे} न+कुल ने {जो विश्व में न देशी या विदेशी रहे; किंतु विदेशी धर्माधीशों के मनरूप अश्वों का वशकर्ता तथा गजगोर समान घोषणा-जैसा} सुघोष
च सहदेवः	और {नानक नामके सिक्ख संप्रदाय में सदा देवात्माओं के सहयोगी ह्यूमन गौशाला रक्षक} सहदेव ने
मणिपुष्पकौ दध्मौ	{ज्योतिर्मय आत्मा रूपी मणि जैसी गुरुद्वारी वाणी बोलने वाला मुख रूपी} मणिपुष्पक शंख बजाए।

● महाभारी महाभारत युद्ध हुआ तो महारथियों ने पहले-2 क्या किया? शंख बजाए। अभी भी जो बड़े-2 महारथी हैं, वो क्या कर रहे हैं? जितना जास्ती शंख बजाते जाते हैं, उतना महाभारत का फील्ड भी तैयार होता जाता है।

(वी.सी.डी. 1542)

● आत्मा को समझ है कि मेरे में ज्ञान शंख ध्वनि करने की अच्छी ताकत है। हम शंख ध्वनि कर सकते हैं। कोई कहते हैं मैं शंखध्वनि नहीं कर सकता हूँ। बाप कहते हैं ज्ञान की शंखध्वनि करने वाले मुझे अति प्रिय हैं। मेरा परिचय भी ज्ञान से देंगे। (मुरली तारीख 21.10.73 पृ.3 मध्य)

● तुम सब ज्ञान के स्पीकर हो । (मुरली तारीख 2.3.89 पृ.2 मध्य)

● यह सारा ज्ञान तुम्हारी बुद्धि में आ गया है। इसलिए स्वदर्शन-चक्र भी तुमको दिया है। शंख भी तुम्हारा है। यह है मुख से ज्ञान सुनाने की बात। ज्ञान का शंख बजाते हो। (मुरली तारीख 26.7.71 पृ.2 मध्य)

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः। धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः।। 1/17

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते। सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान् दध्मुः पृथक्पृथक्।। 1/18

परमेष्वासः काश्यः च	{दैहिक पुरुषार्थ रूपी} महान {शरीर का} धनुष धारण करने वाले काशी के काशिराज ने और {ऐसे ही}
महारथः	{हाथी-जैसी देहांकारी महाकाली रूपा} महारथी {चोटी की बीजरूपा ब्राह्मणी सो रुद्राणी जगत्-अम्बा रूपी}
शिखण्डी च धृष्टद्युम्नो	{द्रुपदपुत्री} शिखण्डी ने एवं {ढीठ और बदला लेने के दृढ़ निश्चयी, निर्लज्ज पांडवी सेनापति} धृष्टद्युम्न ने,
विराटश्च अपराजितः	{प्रवृत्ति की यादगार विष्णुरूप जैसा} विराट एवं {किसी से कभी भी पराजित न होने वाला} अपराजित,
सात्यकिश्च द्रुपदो द्रौपदेयाश्च	{सदा सत्य के साथी} सात्यकि ने तथा {निश्चित ही ध्रुव पद पाने वाला कांपिल्य नगर का राजा, जो भूल से मित्रद्रोही भी था, उस} द्रुपद ने और द्रौपदी के {सूर्य[1]+चन्द्र[2] और बौद्धी[3], संन्यासी[4] व सिक्ख रूप[5]} पाँचों पुत्रों ने
महाबाहुः सौभद्रश्च पृथिवीपते सर्वशः	एवं {पांडवों का अतिप्रिय} महाबाहु सुभद्रापुत्र {जो अपने मामा, वैसे ही अलौकिक बाप को लेकर बड़ा धुरंधर देह-अभिमानी था- ऐसे अभिमन्यु} ने, हे धरणीश्वर! चारों ओर {फैली हुई दिशाओं के}
पृथक्-2 शंखान् दध्मुः	{एडवांस ब्राह्मणों ने} अलग-2 {प्रकार के ईश्वरीय एडवांस गीताज्ञान के सनसनी भरे मुख रूपी} शंख बजाए।

● बड़ी-बड़ी, अच्छी-अच्छी शंखध्वनि कौन करे? तो ज़रूर जो महारथी होंगे, जिनकी शेर पर सवारी होगी, हाथियों पर सवारी होगी, वो गजगोर करेंगे। (साकार मुरली तारीख 8.9.64)

● बाप बना रहे हैं हमको फिर सो श्रेष्ठाचारी। तो तुम भी ऐसे शंखध्वनि करो। अच्छे-अच्छे जो महारथी लोग हैं। नम्बरवार तो हैं ही। (साकार मुरली तारीख 8.9.64)

● धृष्टद्युम्न-वो भी (काम्पिल्य नगर के ज्ञान-) यज्ञ कुण्ड से पैदा होता है। पाण्डवों की सेना का सेनापति गाया जाता है। बाबा भी कहते हैं- तुम बच्चों की है रूहानी मिलेट्री। अण्डरग्राउण्ड गुप्त वारियर्स हो। ये रूहानी मिलेट्री का मार्शल कौन है? शंकर है सेनापति। (वार्तालाप 1041)

● विराट विष्णु के लिए बोला है। विष्णु ही विराट रूप धारण करता है। (वार्तालाप 1445)

● शिखंडी पार्ट किसका है? जगदम्बा का पार्ट है, तो जो जगदम्बा है वो बाण चलाती है या नहीं चलाती है? ज्ञान बाण चलाती है और वो ज्ञान बाण चलाने में किसके इशारे पर काम करती है? कन्याओं के द्वारा बाण मरवाए। बाण किसको मरवाए? बड़े-2 ऋषियों-मुनियों, संन्यासियों को, भीष्मपितामह जैसे संन्यासियों को बाण मरवाए। तो जो बाण मारने का काम है, वो छोटी-2 कन्याओं का है, इसलिए जगदम्बा की छोटी मूर्ति बनाते हैं और यादगार मंदिर भी छोटा बनाते हैं। (वार्तालाप 1789)

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्। नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्।। 1/19

स घोषो नभश्च पृथिवीं तुमुलो व्यनुनादयन्	उस {बुलंद ज्ञान-} घोष से आकाश• और •पृथ्वी को जोर से गुँजाते हुए
च धार्तराष्ट्राणां	{ज्ञान-घोष होने लगा} और {पूँजीवादी} धृतराष्ट्र के पुत्रों {महाभोगवादी काँग्रेसी-कौरव नेताओं} के
हृदयानि एव व्यदारयत्	{कमज़ोरियों से भरे हुए} हृदय ही विदीर्ण हो गए। {और इसीलिए ढेरों कौरवों के हार्टफेल हो गए।}

•{आकाशवाणी केंद्र और वेबसाइट्स} •{रेडियोज़, टेपरिकॉर्ड्स, टी.वीज़, लाउडस्पीकर्स आदि का पृथ्वी में फैला वाद्य-घोष}

● सच जब निकलता है तो झूठ सामना करते हैं।.....तुम (पांडव) किसको सच बताते हो तो (कौरवों को) जैसे मिर्ची हो लगती है। (मुरली तारीख 9.5.73 पृ.3 अन्त)

[20-27 अर्जुन द्वारा सेना-निरीक्षण का प्रसंग]

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः। प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुः उद्यम्य पाण्डवः।। 1/20

अथ कपिध्वजः	तब {चंचल मना कपि हनुमान की चंचल विजय-पताका से चिह्नित रथ वाली} कपिध्वजा धारणकर्ता
पाण्डवः धार्तराष्ट्रान्	{पांडु रूप पंडा पुत्र} पाण्डव-अर्जुन ने {कांव-2 कर्ता कौरवीय नेता} धृतराष्ट्र-पुत्रों को {ऐसे विशेष}
व्यवस्थितान् प्रवृत्ते दृष्ट्वा	{सतर्कता पूर्वक} सज्जित और प्रवृत्त हुआ देखकर, {अपने ज्ञान-योग-धारणादि के}
शस्त्रसम्पाते धनुः उद्यम्य	{अचानक} शस्त्र चलाने के समय {लचीला दैहिक पुरुषार्थ रूपी गाण्डीव} धनुष उठाया,

● ऐसे-2 बाण मारो तो कुंभकर्ण के नींद से जागेंगे। ये भीष्म, द्रौणाचार्य आदि अंत में जागने तो हैं। इस (धनुष उठाने) में हिंसा की तो बात नहीं। इन ज्ञान बाणों की बात है। (मुरली तारीख 10.3.63 पृ.3 मध्य)

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते। अर्जुन उवाच-सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।। 1/21

महीपते तदा हृषीकेशं	हे {द्वेभानी हाथियों की पुरी हस्तिनापुर के} राजन्! तब {सन्नद्ध युद्ध के समय} परमपवित्र शिवबाबा से
वाक्यमिदमाह अच्युत मे रथं	{अर्जुन ने} यह वाक्य कहा- हे अमोघवीर्य {शिवबाबा}! मेरे {शरीर रूपी} रथ को
उभयोः सेनयोः मध्ये स्थापय	{कौरव-पांडवीय} दोनों सेनाओं के मध्य में {अवश्य ही गुप्तरूप से सुरक्षापूर्वक} खड़ा करिए,

● जिस रथ पर बेहद के बाप सवार हो करके आते हैं। वो रथ, अभी यादव-कौरवों और पाण्डवों की सेना के बीच खड़ा हुआ है। (वी.सी.डी. 682)

● निराकार शिव ज्योतिबिंदु उसमें प्रवेश करता है, शरीररूपी रथ को कंट्रोल करता है, इंद्रियों को कंट्रोल करता है, मन की लगाम अपने हाथ में लेता है या आत्मा को कंट्रोल करता है? आत्मा को तो समझाता है। गीता में अर्जुन को समझानी दी है ना, समझाने का मतलब कन्विंस करता है। कन्विंस हो जाए तो माने, कन्विंस न हो जाए तो कैसे मानेगा? (वी.सी.डी.2486)

यावत् एतान् निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्। कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे।। 1/22

यावत् अहं एतान् निरीक्षे	जहाँ से मैं {अपने विशेष सहयोगियों सहित} इन {कौरवों} को निरीक्षण कर सकूँ {इस}
योद्धुकामान् अवस्थितान् कैः सह	{धर्म-} युद्ध के लिए उत्सुकतापूर्वक खड़े हुए किन {सक्रिय विरोधियों} के साथ
मया अस्मिन् रणसमुद्यमे योद्धव्यं	मुझे इस {अंतिम धर्म-अधर्म अथवा सत्य-असत्य के महाभारी महाभारत} युद्ध में लड़ना है।

● भगवान को हजार आँखें है। थोड़ी-मोड़ी आँखें हैं या हजार आँखें हैं? हजार आँखें है। अभी भी अखबारों में लिखते हैं इतना जो कुछ बवाल मच रहा है एक-2 बात की जानकारी ले रहा है। सारा दृश्य उसके सामने रखा जाता है तो कोई देखके रखने वाला है या नहीं है? कोई आँखों वाला देखेगा, तभी तो बताएगा। (वार्तालाप 1230)

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं ये एतेऽत्र समागताः। धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः युद्धे प्रियचिकीर्षवः।। 1/23

ये एते अत्र युद्धे दुर्बुद्धेः	ये जो {राजा व इनकी सेना के लोग} यहाँ {सत्य-असत्य के आध्यात्मिक} युद्ध में कुबुद्धि वाले
धार्तराष्ट्रस्य प्रियचिकीर्षवः	{दुष्ट योद्धा} दुर्योधन का प्रिय {करतब} करने के इच्छुकजन {इस कलियुग के अन्तकर्ता कर्मक्षेत्र में}
समागताः योत्स्यमानानहमवेक्षे	{मरने लिए} एकत्रित हुए हैं, {सभी• विधर्मों के इन} योद्धाओं को मैं देखूँ तो। {गीता• 18 - 66}

● सफ़ेद पोश B.ks. धर्म के धुरंधर बने बैठे हैं लगातार सत्य को दबाने के लिए करोड़ों रुपये सरकारी अफसरों, तांत्रिकों और मीडिया वालों को दे रहे हैं (भूमिका)... आज बच्चों में ज्ञान कुछ ज़्यादा ही चल गया है ना। लेकिन बाप का ज्ञान नहीं, खुद का ज्ञान। खुद का ज्ञान चल गया है। खुद को बाप से भी ज़्यादा ज्ञानी समझते हैं।... बाप बने हुये कोई को 40 साल हो गये। प्रैक्टिकल में बाप बन गये। कोई को 30 साल हो गये, बाप के बाप बनकर बैठ गये और विरोधी एक्ट करने लगे। कोई को 20 साल हुये। सन् 2017-2018 में से 20 साल घटाया तो कितना आया? (किसी ने कहा-सन् 1997-1998) सन 1997-1998, तो तब से (खुला) विरोध करना शुरु कर दिया सक्रिय। (वी.सी.डी.2359)

संजय उवाच-एवं उक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमं।। 1/24

भारत गुडाकेशेन एवं उक्तो	हे भरतवंशी राजा धृतराष्ट्र! निद्राजीत अर्जुन के ऐसे {उत्साह से} कहने पर
हृषीकेशो उभयोः सेनयोः	इंद्रियों पर सदा विजयी {शिवबाबा} ने दोनों {पाण्डवी व कौरवी} सेनाओं के
मध्ये रथोत्तमं स्थापयित्वा	बीच में {अर्जुन में प्रविष्ट हुए शिव ज्योति ने मुकर्रर शरीर रूपी} श्रेष्ठ रथ स्थापित किया।

● निराकार बाप भी इस दुनिया में फिर कैसे आवे, गायन भी है कि शरीर रूपी रथ पर आते हैं। तो उन्होंने फिर रथ दिखाय दिया है कि अर्जुन का रथ लिया, घोड़ों की गाड़ी ली, अब घोड़े क्या हैं? रथ क्या है? लगाम क्या है? सो कुछ समझते नहीं हैं। ये इन्द्रियाँ ही घोड़े हैं, ये मन-बुद्धि रूपी लगाम है, ये शरीर रूपी रथ है, जिस रथ पर बाप सवार हो करके आते हैं। वो रथ, अभी यादव-कौरवों और पाण्डवों की सेना के बीच खड़ा हुआ है। (वी.सी.डी. 682)

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षितां। उवाच पार्थ पश्य एतान् समवेतान् कुरून् इति।। 1/25

च भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां महीक्षितां इति	और भीष्म-द्रोण जैसे मुख्य-2 सब {कौरव-पक्ष के} राजाओं के सामने ऐसे
उवाच पार्थ! समवेतान्	कहा- हे पृथ्वी के राजा पृथापुत्र अर्जुन ! {यहाँ सारे संसार के कर्मक्षेत्ररूप कुरूक्षेत्र में} एकत्र हुए
एतान् कुरून् पश्य	इन {राम के बहाने रावणराज्य लाने वाले टेहरी-नंगल आदि योजनाओं के कर्माभिमानी कुरू-पुत्र} कौरवों को देखो।

● 'कुरु' संस्कृत अक्षर, 'कौरव' हिन्दी अक्षर, 'काँग्रेस' अंग्रेजी अक्षर। (साकार मुरली तारीख 30.9.1963)

● आजकल तो देखो, सब कोई प्लैन बनाते रहते हैं। वर्ष-वर्ष प्लैनिंग करते रहते हैं। देखो, जैसे दूसरे देश वाले सरकारें प्लैनिंग करते रहते हैं। भारतवासी भी प्लैन बनाय रहें हैं। अरे, इनकी तो प्लैनिंग पूरी नहीं होती। 5 वर्ष की प्लैनिंग फिर 8 वर्ष की, फिर 15 वर्ष की, 10 वर्ष की और समझते हैं कि हम राम-राज्य स्थापन करते हैं नई-2 प्लैनिंग स्थापन करके, बना करके। ये टेहरी बांध बनाएगें, ये नंगल डैम बनाएँगे, समझते हैं कि हम राम-राज्य स्थापन कर रहे हैं। अथाह धन-सम्पत्ति पैदा होगी, अथाह अनाज पैदा होगा उसके लिए प्लैन बनाते रहते हैं। (वी.सी.डी. 3063)

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्। आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा।।1/26 श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।

स्थितान् पितॄनथ पार्थ	{धर्मयुद्ध में} खड़े हुए पितृपक्ष {कि आसुरी धर्मों के बीज/पूर्वजों} को, उसी तरह हे पार्थ! {विपक्ष में खड़े}
पितामहानाचार्यान्पुत्रान् मातुलान्भ्रातॄन्	{भीष्म जैसे} प्रपिता रूप बाबाओं, विद्वानाचार्यों, पुत्रों को, मामाओं, भाइयों,
पौत्रान्सखीन् श्वशुरांश्च तथा सुहृदः	पौत्रों, मित्रों, श्वशुरों और उसी तरह {और भी अनेकों} सगे-सम्बन्धियों को
अप्येव उभयोः सेनयोः स्थितान् तत्रापश्यत्	भी स्पष्टतः {कौरव-पांडव} दोनों सेनाओं के बीच स्थित हुआ वहाँ देखा।

● बाप जानते हैं बच्चों का बुद्धियोग बहुतों के साथ रहता है। काका, चाचा, मामा आदि बहुतों से प्यार रहता है। (मुरली तारीख 30.3.69 पृ.1 मध्य)

● यहाँ तो भाई, बाप, मामा, चाचा, काका सभी सम्बन्धी दुश्मन बन जाते हैं।(वी.सी.डी.1373)

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धून् अवस्थितान्।। 1/27 कृपया परया आविष्टो विषीदन् इदम् अब्रवीत्।

स कौन्तेयः अवस्थितान् तान्सर्वान्	वह कुन्ती माता का पुत्र {अर्जुन धर्म युद्ध हेतु तैयार} खड़े हुए उन सब {सगे-}
बन्धून् समीक्ष्य परया कृपया	संबन्धियों की {भावुक हृदय से} समीक्षा करके, {उन सबके मोह में} बड़ी दया से {पूरा}
आविष्टो विषीदन् इदमब्रवीत्	भरा हुआ, {उनके सन्नद्ध विनाश की स्मृति में} विषाद करते हुए यह बोला-

● ज्ञान नहीं है तो फिर बुद्धि मित्र-सम्बन्धियों आदि तरफ भटकती रहती है। (मु.ता.11.10.68 पृ.1 अंत)

● अज्ञानी होने के कारण मोह में फँसा हुआ है। पहले अपनी देह का मोह, देह के संबंधियों का मोह, देह के पदार्थों का मोह, ये बना रहता है। हर आत्मा नम्बरवार अर्जुन का पार्ट बजा रही है। सभी के अंदर वो अज्ञान है शुरूआत में। (वार्तालाप 1878)

[28-47 मोह से व्याप्त हुए अर्जुन के कायरता, स्नेह और शोकयुक्त वचन]

अर्जुन उवाच- दृष्ट्वा इमम् स्वजनम् कृष्ण युयुत्सुम् समुपस्थितम्।। 1/28

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति। वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।। 1/29

कृष्ण इमं समुपस्थितं स्वजनं	हे आकर्षणमूर्त {शिवबाबा}! इन सामने खड़े हुए {दैहिक} सगे-संबंधियों को {मनमाना}
युयुत्सुं दृष्ट्वा मम गात्राणि	{धर्म-अधर्म} युद्ध करने के लिए उत्सुक देखकर मेरे अंग {दैहिक लगाव के कारण पूरे ही}
सीदन्ति च मुखं परिशुष्यति च मे	शिथिल हो रहे हैं और {कुछ बोलने लिए भी} मुख अत्यन्त सूख रहा है तथा {निराशा से} मेरे
शरीरे वेपथुश्च रोमहर्षः जायते	{सारे} शरीर में कम्प और रोंगटे खड़े हो रहे हैं। {जैसे आत्मबल पूरा ही क्षीण हो गया है।}

- बाप कहते हैं, यह देहधारी की याद एकदम (अवस्था नीचे) गिरा देगी। (मुरली तारीख 13.3.69 पृ.1 मध्य)
- जो श्रीमत मिलती है, उन पर पूरी रीति से न चलने कारण कमजोरी आती है। (अ.वा.24.1.70 पृ.184)

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते। न च शक्नोमि अवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।। 1/30 निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।

केशव गाण्डीवम्	हे परम ब्रह्मा के भी स्वामी {त्रिमूर्ति शिवबाबा}! गांडीव {नामक दैहिक पुरुषार्थ का लचीला} धनुष
हस्तात् स्रंसते च त्वक् एव	{चंचल मन वाले बुद्धि रूपी} हाथ से गिरा जा रहा है तथा {अचानक बुखार आने जैसी} त्वचा भी
परिदह्यते च अवस्थातुं च	{एड़ी से चोटी तक} सब ओर से दहक रही है और {इतना शिथिल हूँ कि} खड़े रहने में भी {जैसे}
न शक्नोमि मे मनः भ्रमतीव च	अशक्त हूँ। मेरा {किंकर्तव्यविमूढ़ बना} मन चकरा-सा रहा है और {सगे-सम्बन्धियों}
विपरीतानि निमित्तानि पश्यामि	{प्रति ऐसा मोहान्धकार कि} विपरीत {फलसूचक} शकुन-अपशकुन देख रहा हूँ।

- 'मोह सकल व्याधिन कर मूला' (तु. रामायण) ।
- जैसे जब कोई दुश्मन वार करता है तो पहले टेलीफोन, रेडियो आदि के कनेक्शन तोड़ देते हैं। लाइट और पानी का कनेक्शन तोड़ देते हैं फिर वार करते हैं, ऐसे ही माया भी पहले (भगवान से) बुद्धि का कनेक्शन तोड़ देती है जिससे लाइट, माइट, शक्तियाँ और ज्ञान का संग ऑटोमैटिकली बन्द हो जाता है। अर्थात् मूर्छित बना देती है। अर्थात् स्वयं के स्वरूप की स्मृति से वंचित कर देती है व बेहोश कर देती है। (अव्यक्त वाणी 16.10.75 पृ.196 अंत)

न च श्रेयः अनुपश्यामि हत्वा स्वजनम् आहवे।। 1/31 न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।

आहवे स्वजनं	धर्मयुद्ध में {विधर्मियों अथवा विदेशियों में कन्वर्ट हुए} अपने सगे-संबंधियों को {बौद्ध-मुस्लिमादि
हत्वा श्रेयश्च नानुपश्यामि	दैहिक गुरुओं में अनिश्चय की मौत} मारकर {मुझे} कल्याण भी नहीं दिखाई देता,
कृष्ण विजयं न	हे कामादिक शत्रुओं की खिंचाई कर्ता {शिवबाबा! मैं निराला महत्वाकांक्षी बन विश्व-} विजय नहीं
काङ्क्षे राज्यं च सुखानि च न	चाहता, {स्वर्गीय} राज्य और {विष्णु लोकीय वैकुण्ठ के अतीन्द्रिय} सुखों को भी नहीं चाहता।

- करते डारि परसमणि देहीं, काँच-किरच बदले में लेहीं। (तु.रामायण)
- मित्र-संबन्धियों का मुँह देखा और लट्टू हो बैठ गये। मोह ने घेर लिया। यह भी ड्रामा की भावी। (मुरली तारीख 15.7.08 पृ.3 आदि)

किम् नो राज्येन गोविन्द किम् भोगैः जीवितेन वा ।। 1/32

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। त इमेऽवस्थिताः युद्धे प्राणान् त्यक्त्वा धनानि च।। 1/33

गोविन्द नो राज्येन किं भोगैर्वा	हे इन्द्रियों रूपी गौओं के शासनकर्ता! हमको राज्य से क्या? {ऐसे ही} भोगों वा
जीवितेन किं येषामर्थे नो राज्यं	{स्वार्थी} जीवन से क्या {लाभ?} {क्योंकि} जिन {सम्बन्धियों} के लिए हमने राज्य,

भोगाश्च सुखानि कांक्षितंते इमे प्राणान्	भोगों और सुखों को {अपना घराती समझ} चाहा है, वही ये {दुश्मन बनकर} प्राणों
च धनानि त्यक्त्वा युद्धे अवस्थिताः	व धन {धाम} को त्यागकर {धर्म-अधर्म के विशाल} युद्ध में जमकर खड़े हुए हैं।

● मोह तब जाता है जब यह स्मृति रहती है कि हम गृहस्थी हैं। हमारा घर, हमारा संबंध है तब मोह जाता है। (अ.वा. 22.7.72 पृ.342 अंत)

● लव सारा चला जाता है मित्र-संबंधियों आदि में। अक्ल सारा चट हो जाता है। (मुरली तारीख 24.8.75 पृ.3 मध्य)

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः। मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बंधिनस्तथा।। 1/34

आचार्याः पितरः पितामहाः पुत्राः च तथा एव	{कृप-द्रोणादि} आचार्य, काका, {भीष्मादि} बाबाएँ, पुत्र और उसी प्रकार
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः तथा सम्बंधिनः	मामाएँ, श्वशुरगण, पौत्र, साले और {अनेक तरह के} संबंधी {भी} हैं।

● बच्चों का बुद्धियोग बहुतों के साथ रहता है। काका, चाचा, मामा आदि बहुतों से प्यार रहता है। बाप समझाते हैं वह (सब व्यभिचारी) प्यार नहीं जैसे मार है। (मुरली तारीख 30.3.69 पृ.1 मध्य)

● इस पुरानी (नारकीय) दुनियाँ के मित्र-संबंधी आदि याद आते हैं। (मुरली तारीख.6.4.88 पृ.2 आदि)

एतान् न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन। अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।। 1/35

मधुसूदन	{हम जैसे और सभी लोगों के लिए} मधु जैसे मीठे काम विकार रूपी दैत्य को मारने वाले हे कामहन्ता {शिवबाबा! मुझ पर}
घ्नतः अपि महीकृते नु किं	वार करते हुए भी {मैं समझता हूँ कि मेरे हैं और मेरे ही रहेंगे; अतः} पृथ्वी के लिए तो क्या,
त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः अपि	{वस्तुतः मेरे में इनके लिए ऐसा प्यार भरा है कि} त्रिलोकी के राज्य के लिए भी {मैं}
एतान् हन्तुं न इच्छामि	इन्हें {अपने-2 धर्मपिताओं में अनिश्चय की मौत} मारना नहीं चाहता। {है ना देहदृष्टि का कमाल?}

● अभी तो सब पतित हैं। इसलिए 5 तत्वों के पुतले से मोह हो गया है। इनको छोड़ने की दिल नहीं होती है। (मु. 26.3.99 पृ.2 मध्य)

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्यात् जनार्दन। पापं एव आश्रयेत् अस्मान् हत्वा एतान् आततायिनः।। 1/36

जनार्दन	हे {आर्त्तनाद करने वाले} मनुष्यों द्वारा {दुःखों से मुक्ति के लिए कल्पांत में विशेष} प्रार्थनीय मुक्तेश्वर!
धार्तराष्ट्रान् निहत्य नः का	{प्रजातंत्र के पूंजीवादी} धृतराष्ट्र के {कांव-2 कर्ता कौरव}-पुत्रों को मारकर {भी} हमें क्या
प्रीतिः स्यात् तानाततायिनः	{विशेष} सुख होगा? इन {बेसमझ और बच्चाबुद्धि} आततायियों को {जान-माल से}
हत्वा अस्मान् पापमेवाश्रयेत्	मारकर {तो} हमको पाप ही लगेगा; {क्योंकि 'क्षमा बड़ों को चाहिए, छोटन को अपराध'।....}

● बच्चा धक्का खाता है। चोट लगती है तो दिल में दुख होता है। इस बेचारे को चोट लग गई। भल अपनी गलती से गिर पड़ते हैं फिर भी माँ-बाप गले लगाते हैं, प्यार करते हैं। (मुरली तारीख 18.9.73 पृ.3 अंत)

● कल्याण करने वाले के ऊपर कल्याण करना यह तो अज्ञानी भी करते हैं। अच्छे के साथ अच्छा चलना यह तो सभी जानते हैं। लेकिन अकल्याण के वृत्ति वाले को अपने कल्याण की वृत्ति से परिवर्तन करो या क्षमा करो। परिवर्तन न भी कर सकते, क्षमा तो कर सकते हो ना! मास्टर क्षमा के सागर तो हो ना! (अ.वा.ता. 13.2.91 पृ.43 मध्य)

तस्मात् न अर्हाः वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्। स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।। 1/37

तस्मात् स्वबान्धवान्	अतः {विधर्मियों-विदेशियों में कन्वर्टिड} अपने {ही बीज व आधारमूर्त दैवी जन्मों के} संबंधियों,
धार्तराष्ट्रान् हन्तुं वयं नार्हाः हि स्वजनं हत्वा	{जो राष्ट्र की सारी धन-संपत्ति धरे बैठे हैं, ऐसे} पूँजीपति धृतराष्ट्रों के पुत्रों को मारना हमें योग्य नहीं; क्योंकि {भाई-2 बने} स्वजनों को मारकर
माधव कथं सुखिनः स्याम	हे माता पार्वती-पति बाबा! {धर्मपिताओं में इनके अनिश्चय रूपी मौत पर} हम कैसे सुखी होंगे?

● बाप कहते हैं यह दुनिया है ही विनाशी चीज को प्यार करने वाली। कोई-2 का बहुत प्यार होता है तो मोह में जैसे चर्ये बन जाते हैं। (मुरली तारीख 26.8.70 पृ.1 अंत)

यद्यपि एते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः। कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकं।। 1/38

यद्यपि लोभोपहतचेतसः	यद्यपि {विदेशी लोन से प्राप्त हुए राज्य-धनादि के} लोभ से नष्ट हुए {भिखारी} चित्त वाले
एते कुलक्षयकृतं दोषं च	ये {विदेशियों की हिंसा व व्यभिचार से धर्मभ्रष्ट बने हुए} लोग कुल के नाश का दोष और
मित्रद्रोहे पातकं न पश्यन्ति	{अपने} मित्रों से {भी} द्रोह करने में पाप नहीं देखते हैं, {क्योंकि आधे-पूरे नास्तिक हैं।}

● जिन्होंने मूसल (मिसाइल्स) निकाले हैं, वह अभी अपने (ही यादव) कुल का नाश करने एक दो को धमकी दे रहे हैं। (मुरली तारीख16.2.74 पृ.1 अंत)

● यूरोपवासी यादव सेना, जिन्होंने साइंस से मूसल इन्वेंट की।.... यूरोपवासी यादवों के लिए गाया हुआ है- विनाश काले विपरीत बुद्धि। (मुरली तारीख 14.5.71 पृ.2 अंत)

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापात् अस्मात् निवर्तितुं। कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिः जनार्दन।।1/39

अस्मात् पापात् जनार्दन अस्माभिः	इस {संसार में होने वाले महाभारी महाविनाश के} पाप से हे जनार्दन! हम {सब}
निवर्तितुं कथं न ज्ञेयं	अलग होने के लिए {इस व्यर्थ के झगड़े पर} क्यों न विचार करें; {क्योंकि समूचे भारतवासी लोगों}
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिः	{से जुड़े} कुल के नाश से होने वाले {ऐसे सन्नद्ध} पाप को {हम} स्पष्ट देख रहे हैं।

● गेट वे टू हेविन इज महाभारी महाभारत गृह युद्ध। कोई कहे- हम नहीं लड़ेंगे। हम इस युद्ध में से पसार होने वाले नहीं हैं। हम खून-खराबा अपना न होने देंगे और न दूसरों का करेंगे। तो बाप कहते हैं- वो स्वर्ग में भी नहीं जावेंगे। ये गेट वे है - महाभारी महाभारत गृहयुद्ध। ये सच्चाई के लिए झूठ से युद्ध करना लाजमी है। (वी.सी.डी. 408)

● क्षत्रिय को तो बताया कि युद्ध में कभी भाग ही नहीं सकते। लो देखो, अब दुनिया की जो अव्वल नम्बर आत्मा है पुरूषार्थ करने वाली अर्जुन, वो उसकी हवा निकल जाती है पहले अध्याय में क्या करता है? भागने की बात करता है या नहीं? मैं युद्ध नहीं करूँगा। (वी.सी.डी. 3006)

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नं अधर्मः अभिभवति उत।।1/40

कुलक्षये सनातनाः कुलधर्माः	{भारतीय} कुल नाश होने पर {परम्परागत} सनातन कुल की {समूची अव्यभिचारी} धारणाएँ
प्रणश्यन्ति धर्मे नष्टे अधर्मः उत	नष्ट हो जाती हैं। धर्म-नाश होने पर {मुस्लिम, ईसाई आदि} विपरीत धर्म भी
कृत्स्नम् कुलं अभिभवति	समस्त कुल को {अत्याधिक हमले करते हुए हिंसा और व्यभिचार दोष से} दबा लेते हैं।

● आदि सनातन देवी-देवता धर्म वायसलेस था वह विषस बन पड़ा है। हमने पावन दुनिया स्थापन की। फिर पावन से पतित शूद्र बन पड़ते।.... पतित बन जाते हैं विकार में जाने से। (मुरली तारीख 4.9.68 पृ.2 आदि)

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः। स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः।। 1/41

कृष्ण अधर्माभिभवात्	हे विकारी-हिंसक असुरों को खींचने वाले {बाबा}! {स्लामी-क्रिश्चियनादि} अधर्मों के फैलने से
कुलस्त्रियः प्रदुष्यन्ति	कुल की {सती-साध्वी} स्त्रियाँ {दैहिक संग का रंग लगने कारण महाव्यभिचार से} प्रदूषित हो जाती हैं।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय वर्णसंकरः जायते	{भारतीय} स्त्रियों के दूषित होने पर {LON+DAN के दिखावटी ज्ञान-बरसात कर्ता} हे वार्ष्णेय! {धर्मभ्रष्ट - वंशी यूरोपवासी यादवों की पैदाइश से} व्यभिचारी प्रजा उत्पन्न होती {रहती} है।

● विदेशी धर्म हैं, चाहे क्रिश्चियन हैं, चाहे मुसलमान हैं, उनमें डायवोर्स की प्रथा खूब खुलेआम चलती है .....स्त्रियाँ जब प्रदूषित होती हैं, कोई भी स्त्री जब अनेक पुरुषों का संग करेगी तो दुनियाँ में लायवेला बहुत ज्यादा बढ़ा देगी। स्त्रियों में व्यभिचार बढ़ने से सृष्टि जो है, वो एकदम पतन की ओर जाती है। (वी.सी.डी. 359)

● बाप अपनी बच्ची को भी गंदा कर देते हैं। बाबा के पास तो सब अपना समाचार देते हैं ना। हमने यह ख़राब काम किया। ऐसे बहुत मिसाल होते हैं। कोई गुरू से ख़राब, कोई भाई से, कोई मामे से ख़राब हो पड़ते। इनको कहा ही जाता है वैश्यालय। (मु.8.2.75 पृ.2 आदि)

● दुनियाँ (में) वेश्यालय/विषय वैतरणी नदी में बह रहे हैं। मनुष्य भी हैं, बिच्छू भी हैं, टिण्डन भी हैं। ये क्यों बह रहे हैं, बोलते हैं ना! देखो, कोई बिच्छुनी है, कोई टिण्डन है, कोई नाग है बला, एक/दो को काटते रहते हैं। (साकार मु.ता. 5.12.68)

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। पतन्ति पितरो हि एषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।। 1/42

संकरो कुलस्य च कुलघ्नानां नरकायैव	{पशुतुल्य} वर्णसंकर प्रजा कुल की और कुलनाशकों की दुर्गति हेतु ही {होती} है;
हि एषां पितरः	क्योंकि इनके {कल्पान्त कालीन पुरानी दुनिया के ॐ मण्डली वाले रुद्राक्ष रूप संसारबीज/पूर्वज} पितृगण {भी}
लुप्तपिण्डोदकक्रियाः पतन्ति	{बड़ों प्रति} श्रद्धाभाव की क्रिया के लुप्त होने से {महागरीब परिवारों में} अधोगति पाते हैं।

- वो निराकार जिस साकार में आते हैं, वो जन्म ही गरीब घर में होता है या साहुकार घर से आता है? गरीब से आता है। (वी.सी.डी. 1896)
- यज्ञ के आदि में भागीदार का कुछ एग्रीमेन्ट हुआ होगा ब्रह्मा बाबा के साथ। फिर लड़ाई हुई तो सारा ले लिया। अगर ले लिया तो अगले जन्म में रईस बनेगा या गरीब बनेगा? क्या बनेगा? गरीब घर में जन्म लेगा ना! तो गरीब घर में जन्म मिलता है। राम फेल हो गया ना। (वी.सी.डी. 287)

दोषैः एतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः। उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।। 1/43

कुलघ्नानां एतैः वर्णसंकरकारकैः	{आर्यसमाजियों जैसे धर्मपरिवर्तन के स्वभावी} कुलनाशकों के इन वर्णसंकरकारी {महाविनाशकारी}
दोषैः जातिधर्माः च शाश्वताः	दोषों से जाति-धर्म {जैसी 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्' वाली श्रेष्ठ परम्पराएँ} और स्थायी
कुलधर्माः उत्साद्यन्ते	कुल की धारणाएँ नष्ट हो जाती हैं। {इसी से आज समूची संगठित पारिवारिक व्यवस्था प्रायः लोप है।}

- कलियुग में देखो, मनुष्य का क्या हाल है। अख़बार में पड़ा था- 42 वर्ष का आदमी है, उनको 43 बच्चे हैं। फिर इतनी युगल गिनाई।.....कब तीन, कब चार बच्चे पैदा किए।.....तो उनको क्या कहेंगे? कुतरे। कुतरे से भी जास्ती। .....सतयुग में तो एक धर्म, एक भाषा, एक बच्चा होता है। (मुरली तारीख 7.4.69 पृ.2 मध्यादि)

- जहाँ देखी तवा बरात, वहीं बिताई सारी रात। तो ऐसे करते हैं, वो है आर्यसमाजी; इसलिए उनको किसी धर्म से कोई लेना देना नहीं। वो कहते हैं- धर्म निरपेक्ष राज्य। हमें किसी धर्म की अपेक्षा नहीं है। तुम कोई भी धर्म को मानो, भंगियों के धर्म को अपना लो। भंगी बन जाओ, चमार बन जाओ, चांडाल बन जाओ तुम हमको वोट देते रहो। (वी.सी.डी. 2843)
- इस समय सारी दुनिया अछूत(मेहतर) है; क्योंकि विष पीते-पिलाते हैं। (मुरली तारीख 20.11.74 पृ.1 मध्यादि)

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन। नरकेऽनियतं वासो भवति इति अनुशुश्रुम।। 1/44

जनार्दन उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां	हे जनार्दन! नष्ट हुए कुलधर्मी मनुष्यों का, {संगम की भी चतुर्युगी शूटिंग में}
अनियतं नरके वासो भवति इत्यनुशुश्रुम	अनिश्चितकाल तक {राक्षसी} नरक में वास होता है, ऐसा {हमने} सुना है।

- बुरा कर्म करते हैं तो एकदम पाताल में चले जाते हैं। (मुरली तारीख 5.6.69 पृ.2 मध्य)
- दूसरे धर्म वाले उस नई दुनिया में आ (न)हीं सकते हैं। (मुरली तारीख 1.2.69 पृ.1 अंत)

अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयं। यत् राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनं उद्यताः।। 1/45

अहो बत वयं महत्पापं कर्तुं व्यवसिताः	अरे रे! हम {विधर्मी हत्या का} भारी पाप करने के लिए तैयार हो गए हैं,
यद्राज्यसुखलोभेन स्वजनं	जो {अल्पकालीन विश्व-} राज्य-सुख के लोभ से अपने {ही कनवर्टिड सगे-संबंधी} लोगों को
हन्तुं उद्यताः	{अपने-2 महान धर्मपिताओं की धारणाओं में अनिश्चय रूपी मौत} मारने के लिए तैयार हो गए हैं।

- दुर्योधन-दुशासन पुरूष रूप। तो बताया, इन असुरों को मारो गोली। कौन-सी गोली? ज्ञान की गोली मारो। (वी.सी.डी 3195)

यदि मामप्रतीकारं अशस्त्रं शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युः तत् मे क्षेमतरं भवेत्।। 1/46

यदि अप्रतीकारं अशस्त्रं मां	यदि बदला न लेने वाले {ज्ञान}-शस्त्र रहित, {कोई प्रतिवाद न करने वाले} मुझको, {धर्मयुक्त
शस्त्रपाणयः	बुद्धि रूपी} हाथ में {विदेशियों से प्रभावित अधर्म के छलछिद्र से बने} हथियार लिए हुए {टाटा-बिरला जैसे}
धार्तराष्ट्रा	धृतराष्ट्रों के पुत्र {रूप कांग्रेसी कौरव, दीर्घकालीन राज्य-जाति-भाषादि की सिविलवार से पैदा किए गए
रणे हन्युः	हिन्दू-मुस्लिमादि के सन्नद्ध धर्म-} युद्ध में, {भावात्मक या दैहिक मौत की भी हिंसा करके} मार डालें,
तत् मे क्षेमतरं भवेत्	वह मेरे लिए विशेष कल्याणकारी होगा। {ऐसे देह और दैहिक संबंधों के भान में रहते हुए,}

- संगदोष में आए अथवा माया के वश हो कुछ कर लिया। अपने पैर पर कुल्हाड़ा मारा। (मु.ता.29.11.74 पृ.3 आदि)
- मोहवश कुछ समझते थोड़े ही हैं कि हम कैसे रहते हैं। (मुरली तारीख 6.6.85 पृ.3 आदि)

संजय उवाच-एवमुक्त्वा अर्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्। विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।। 1/47

एवं उक्त्वा शोकसंविग्नमानसः	ऐसा कहकर, शोक से व्याकुल हुए चित्त वाला, {मन-बुद्धि से भ्रमित हुआ,}
अर्जुनः संख्ये सशरं	{शिथिल इन्द्रियों वाला, अपनी आत्म-स्थिति भूला हुआ} अर्जुन धर्मयुद्ध-भूमि में {ज्ञान}-बाणों सहित,
चापं विसृज्य रथोपस्थ उपाविशत्	{पुरुषार्थ रूपी} धनुष को छोड़कर {शरीर रूपी} रथ पर {हिम्मत हारके} बैठ गया।

- जो जितनी हिम्मत रखेंगे, उतनी मदद मिलेगी। पहले ही अपने में संशय-बुद्धि होने से हार हो जाती है। (अव्यक्त वाणी 5.3.71 पृ.35 मध्य)
- अच्छे-2 बच्चे माया से हार खा लेते हैं। माया बड़ी प्रबल है। (मुरली तारीख 10.1.69 पृ.2 अंत)
- अर्जुन श्रेष्ठ पुरूषार्थी था ना। सारे विश्व को विजय करने वाला था ना। लेकिन पत्थरबुद्धि, कैसे? युद्ध करना है कि नहीं करना है, कि छोड़ के बैठ जाना है, धनुष-बाण छोड़ करके बैठ गया। (वी.सी.डी. 3405)

(44)

अध्याय-2

सांख्ययोग-नामक दूसरा अ0।।

[1-10 अर्जुन की कायरता के विषय में श्रीकृष्णार्जुन-संवाद]

संजय उवाच-तं तथा कृपया आविष्टं अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं। विषीदन्तं इदं वाक्यं उवाच मधुसूदनः।। 2/1

मधुसूदनः तथा कृपयाविष्टं	मधु जैसे मीठे काम के हन्ता {शिवबाबा} ने इस प्रकार {सम्बन्धियों के मोह में} करुणा से भरे,
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं विषीदन्तं तमिदं वाक्यमुवाच	अश्रुपूर्ण व्याकुल नेत्रों से विषादयुक्त हुए उस अर्जुन को यह वचन बोले।

भगवानुवाच-कुतस्त्वा कश्मलं इदं विषमे समुपस्थितं। अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं अकीर्तिकरं अर्जुन।। 2/2

अर्जुन विषमे अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं इदं	हे अर्जुन! असमय में अनार्यसेवित, स्वर्ग में न ले जाने वाली यह {सामाजिक}
अकीर्तिकरं कश्मलं त्वा कुतः समुपस्थितं	अपकीर्तिकारक मलिनता, {क्षत्रिय होते हुए भी} तुझे कहाँ से आ गई?

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वयि उपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ परन्तप।। 2/3

पार्थ क्लैब्यं मा स्म गमः एतत्त्वयि उपपद्यते	हे पृथ्वीराज! नपुंसक मत बनो। ये तुम्हारे {कुल में प्रशंसा के} योग्य
न परंतप क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ	नहीं। हे शत्रुतापी! क्षुद्र हृदय की {आकस्मिक} दुर्बलता छोड़कर उठो।

अर्जुन उवाच-कथं भीष्मं अहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन। इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हौ अरिसूदन।।2/4

मधुसूदन भीष्मं च द्रोणं प्रति	हे {मधु जैसे मिठास भरे} काम के हंता! भीष्म {जैसे बाबाओं} और {महान प्राचार्य} द्रोण के प्रति
संख्येऽहमिषुभिः कथं योत्स्यामि	{धर्म-} युद्ध में मैं {ज्ञान-} बाणों से {कटाक्षपूर्वक अपमान से} कैसे युद्ध करूँगा?
अरिसूदन पूजार्हौ	हे कामारिमर्दन! {वे मुझे बचपन से ही बहुत प्यार देते आ रहे हैं; सम्माननीय और} पूजनीय हैं।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपि इह लोके। हत्वार्थकामान् तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ।। 2/5

महानुभावान् गुरून् अहत्वा हि	महानुभाव गुरुओं को {उनके धर्म में अनिश्चय की मौत} मारने की अपेक्षा
इह लोके भैक्ष्यं भोक्तुं अपि श्रेयो	इस लोक में भीख माँगकर खाना भी अच्छा है; {क्योंकि मान-मर्तबा के लोलुप&}
अर्थकामान् गुरून् हत्वा तु इह	धनेच्छुक गुरुओं को {स्वधारणायुक्त जीवनशैली से} मारकर तो यहाँ
रुधिरप्रदिग्धान् भोगान् एव भुंजीय	{विकल्पों के} खून से सने {आत्मग्लानि से भरे हुए इन} भोगों को ही भोगूँगा।

न चैतद्विद्मः कतरत् नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः। यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।। 2/6

च नो कतरत् गरीयः वा यत् जयेम	और हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है? अथवा कि हम {धर्मयुद्ध में निश्चित रूप से} जीतेंगे
वा यदि नो जयेयुः एतत् न विद्मः	अथवा यदि {वे} हमें जीतेंगे- यह {भविष्यफल ठीक-2 हम} नहीं जानते।
यान् हत्वा न जिजीविषामः एव	जिन्हें मारकर {हम} जीना ही नहीं चाहते, {संकल्पों के खराब खून वाले}
ते धार्तराष्ट्राः प्रमुखे एव अवस्थिताः	वे {राष्ट्र की पूंजी स्वार्थ में धरे बैठे} धृतराष्ट्र के पुत्र {कौरव} सामने ही खड़े हैं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नं।। 2/7

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः	{नीचे गिरी हुई पापपूर्ण कलियुगी मन-बुद्धि की} दीनता के दोष से विकृत स्वभाव वाला,
धर्मसम्मूढचेताः त्वां पृच्छामि	सत्धर्म {कर्म} की बातों में महामूर्ख {मैं} आप {त्रिकालदर्शी भगवान} से पूछता हूँ।
यच्छ्रेयः निश्चितं स्यात्तन्मे ब्रूहि	{मेरे लिए} जो भलाई की {सद्धर्मानुकूल ऐसी} निश्चित् बात हो, वह मुझे बताइए।
अहं ते शिष्यः त्वां प्रपन्नं मां शाधि	मैं आपका शिष्य हूँ, {हर प्रकार से} आपकी शरण में हूँ। मुझे शिक्षा दीजिए।

न हि प्रपश्यामि मम अपनुद्यात् यत् शोकं उच्छोषणं इन्द्रियाणां। अवाप्य भूमौ असपत्नं ऋद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं।। 2/8

हि भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं च सुराणां	क्योंकि पृथ्वी पर शत्रुविहीन ऐश्वर्यवान {सारे विश्व का} राज्य और देवों का

आधिपत्यं अवाप्य अपि यत् इन्द्रियाणां	स्वामित्व पा करके भी, {आप सर्वशक्तिवान के सिवा} जो इन्द्रियों को
उच्छोषणं मम शोकं अपनुद्यात् न प्रपश्यामि	सुखाने वाले मेरे शोक को दूर करे, वैसा {कल्याण मैं} नहीं देखता।

संजय उवाच-एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप। न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।। 2/9

परंतप गुडाकेशः हृषीकेशं गोविन्दं	शत्रुतापक-निद्राजीत अर्जुन {ह्रूमन बछियों के प्रकृतिवेत्ता} जितेन्द्रिय गोविन्द से
एवमुक्त्वा 'न योत्स्य इति'	ऐसा {स्पष्ट} कहकर '{कि मैं सम्मानीय गुरुजनों से धर्म-निर्णायक} युद्ध नहीं करूँगा' - इतना
ह उक्त्वा तूष्णीं बभूव	सीधा कहकर {अभी-2 दुःख & संशयहर्ता की सीख को मानके भी, ना करके} चुप हो गया।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तं इदं वचः।। 2/10

भारत उभयोः सेन्योर्मध्ये	हे भरतवंशी राजा! {यादव सेना-सहित कौरवों&पाण्डवों} दोनों सेनाओं के बीच में
विषीदन्तं तं हृषीकेशः	शोकाकुल उस {भीड़ भरे माहौल में मायूस हुए} अर्जुन से इंद्रियजीत/ {जगत्जीत} शिवबाबा
प्रहसन् इव इदं वचः उवाच	प्रसन्न हुए के समान {उसका उमंग-उत्साह बढ़ाने लिए} यह वचन कहने लगे।

[11-30 सांख्ययोग का विषय]

भगवानुवाच-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूनंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।। 2/11

त्वं अशोच्यान् अन्वशोचः च	तू अशोचनीय {सन्नद्ध विनाशी दैहिक संबंधों का} शोक कर रहा है तथा {दुःखी होते-2 भी}
प्रज्ञावादान् भाषसे पण्डिताः	{आत्म} ज्ञानियों-जैसे वचन बोलता है। विद्वान लोग {सदधर्म के प्रति अनिश्चय से}
गतासूंश्च अगतासून् नानुशोचन्ति	मरने और {विधर्मियों ऊपर निश्चय में} जीने वालों का शोक {कभी} नहीं करते।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परं।। 2/12

अहं जातु नासं न एव त्वं न	मैं {अक्षयात्मज्योतिरूप शिव} कोई समय न था- ऐसा नहीं है, {ऐसे ही} तू नहीं
इमे जनाधिपाः एव न च अतः परं	{था अथवा} ये नेतागण ही नहीं {थे} और अब बाद में {बेहद ड्रामा के आत्म-स्टाररूप}
वयं सर्वे न भविष्यामः न	हम सब नहीं होंगे- {ऐसा भी} नहीं है। {हम आत्माएँ अविनाशी हैं, देह विनाशी है।}

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरस्तत्र न मुह्यति।। 2/13

यथा देहिनोऽस्मिन्देहे कौमारं यौवनं	जैसे आत्मा की इस देह में{उत्तरोत्तर सत-रज-तम वाली} कुमार, युवावस्था {और}
जरा तथा देहांतरप्राप्तिः	बुढ़ापा है, वैसे ही {चतुर्युगी में क्षीण बल-वीर्य के} दूसरे-2 शरीरों की प्राप्ति होती है।
धीरः तत्र न मुह्यति	{सच्ची गीता ज्ञान से आत्मस्थ} धैर्यवान् {ब्रह्मावत्स कभी भी} उस विषय में मोह नहीं करते।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्याः तान् तितिक्षस्व भारत।। 2/14

कौन्तेय मात्रास्पर्शास्तु शीतोष्ण-	हे कुंती-पुत्र! {कर्म-} इन्द्रियों के विषय तो {घड़ी-2 परिवर्तनशील} सर्दी-गर्मी,
सुखदुःखदाः आगमापायिनः	सुख-दुःख-दाता हैं, आने-जाने वाले हैं, {अधोगामी स्वर्गीय सुखों की भेंट में भी}
अनित्याः भारत तांस्तितिक्षस्व	अनित्य हैं। हे भरतवंशी! उनको {तू अपनी किसी भी तिकड़म बिना} सहन कर।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।। 2/15

पुरुषर्षभ समदुःखसुखं	हे {भोगी} आत्मारूप पार्टधारियों में सर्वश्रेष्ठ! दुःख-सुख में समान {रहने वाले}
यं धीरं पुरुषं एते न व्यथयन्ति	जिस धैर्यवान पुरुष को ये {कोई भी विषय-भोग, कर्म करते भी} व्यथित नहीं करते,
सः हि अमृतत्वाय कल्पते	वह {आत्मज्योति में एकाग्र व्यक्ति} अवश्य ही अमरत्व के लिए योग्य बनता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टः अंतः तु अनयोः तत्त्वदर्शिभिः।। 2/16

असतः भावः न विद्यते तु सतः	असत का अस्तित्व नहीं होता एवं {कोई भी} सत्य का {कल्पांतकारी महाविनाश में}
अभावः न विद्यते	{या किसी भी चतुर्युगी में} अभाव नहीं होता। {जैसे सृष्टि-बीज/महादेव/आदम देह से भी सदाकाल है & रहेगा।}
अनयोरुभयोरप्यन्तः तत्त्वदर्शिभिर्दृष्टः	इन {सदसत} दोनों का भी निर्णय {कपिल जैसे} तत्वज्ञानियों द्वारा देखा गया है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततं। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। 2/17

येन इदं सर्वं ततं	जिस {मानवीय सृष्टिवृक्ष के बीज महादेव} द्वारा यह सारा {अश्वत्थ नामक सृष्टिवृक्ष} फैला है,
तत्त्वविनाशि विद्धि अस्याव्ययस्य	उसको तो अविनाशी जान। इस अविनाशी {जगत्पिता स्वरूप साकार बीज} का
विनाशं कर्तुं कश्चित् न अर्हति	विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। {कल्पांत में भी वह अकालमूर्त है।}

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्मात् युध्यस्व भारत।। 2/18

नित्यस्य अनाशिनः अप्रमेयस्य	{ऐसे तो} नित्य, अविनाशी, माप न करने योग्य {अन्य सभी अणुरूप/अतिसूक्ष्म}
शरीरिणः इमे देहाः अन्तवन्तः	देहधारी आत्माओं के ये शरीर {चतुर्युगी के जन्म-जन्मान्तरों में भी} नाशवान्
उक्ताः तस्मात् भारत युध्यस्व	कहे हैं, अतः हे भरतवंशी! {धर्म-} युद्ध कर। {क्योंकि आत्म-धर्म ही अविनाशी है।}

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतं। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। 2/19

य एनं हन्तारं वेत्ति च यः एनं	जो इस {देहधारी आत्मा} को मारने वाला समझता है और जो इसे {कभी}
हतं मन्यते तौ उभौ न विजानीतः	मरा हुआ मानता है, वे दोनों {ही ठीक} नहीं जानते। {वो देहरूप वृक्ष का बीज है।}
अयं न हन्ति न हन्यते	यह {आत्मा कल्पांत के महाविनाश में भी} न {किसी को} मारता है {और} न मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजः नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।2/20

अयं कदाचिन्न जायते वा न म्रियते	यह कभी न जन्मता है और न मरता है, {हाँ! सहज-2 देहरूप वस्त्र उतारता भी है}
वा भूत्वा भूयः न भविता	या होकर फिर से {सृष्टि रंगमंच पर} नहीं होगा- {ऐसे भी नहीं है}।
अजः नित्यः शाश्वतः पुराणोऽयं	अजन्मा, नित्य, सनातन, {कल्प-2 की शांत स्वधर्म वाली} पुरातन यह
शरीरे हन्यमाने न हन्यते	{अविनाशी आत्मा}, देह हनन {कराने के उपक्रम} होते {भी} नहीं मारा जाता।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययं। कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कं।। 2/21

पार्थ य एनं नित्यं अजं अव्ययं	हे पृथ्वीपति! जो इस {ज्योतिर्मय अणुरूप आत्मा} को नित्य, जन्मरहित, अक्षय
अविनाशिनं वेद स पुरुषः	{व} अविनाशी जानता है, वह {अपने स्वभाव-संस्कार की अविनाशी} आत्मा
कं कथं घातयति कं हन्ति	{होते भी} किसको कैसे मरवाता है {और यहाँ प्रकृति के अधीन भी} किसको मारता है?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। 2/22

यथा नरः जीर्णानि वासांसि विहाय अपराणि	जैसे {स्वर्ग में आत्माभिमानी श्रेष्ठ} मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे
नवानि गृह्णाति तथा जीर्णानि शरीराणि	नए {स्वेच्छा से} ग्रहण करता है, उसी प्रकार {नरनिर्मित नरक में देहभानी} पुराने शरीरों को
विहाय देही अन्यानि नवानि संयाति	{अपनी अनिच्छा से} छोड़कर आत्मा दूसरे नए {शरीरों} को {बरबस} ग्रहण करती है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्ति आपः न शोषयति मारुतः।। 2/23

एनं शस्त्राणि न छिन्दन्ति एनं पावकः	इस {आत्मा} को शस्त्र नहीं काटते, इसको {अन्य जड़त्वमय तत्वों जैसी} अग्नि
न दहति एनं मारुतः न शोषयति च	नहीं जलाती, इसको {अदर्शनीय} हवा नहीं सुखाती और {ईश्वरीय ज्ञान-जल}
आपः न क्लेदयन्ति	{की पवित्रता के सिवाय} जल नहीं भिगोता। {प्रत्येक चतुर्युगी पूर्व के महाविनाश में भी यही बात है।}

अच्छेद्यः अयं अदाह्यः अयं अक्लेद्यः अशोष्यः एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। 2/24

अयमच्छेद्यो अयमदाह्यः अक्लेद्यः	यह {आत्मज्योतिर्बिंदु सदा} अकाट्य है और {अग्नि-जल द्वारा कभी} न ही जलता-भीगता है।
चैव अशोष्यः अयं नित्यः स्थाणुः	और निस्संदेह {गर्म हवा से कभी} सूखता नहीं। यह नित्य {अविनाशी} है, स्थितशील है।
सर्वगतः सनातनः अचलः	{मन-बुद्धि जैसी अदर्शनीय शक्ति होने से त्रिलोक में} सर्वगामी है, सनातन {और} अचल है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुं अर्हसि।। 2/25

अयं अव्यक्तः अयमचिन्त्यः अयं	यह अव्यक्त है। यह अचिन्त्य है। यह {विनाशी पंचभूतों का संग न रहने पर सदा}
अविकार्यः उच्यते तस्मात् एनं एवं	निर्विकारी बताई जाती है। इसलिए इसको ऐसा {पृथ्वी-जलादि पञ्चभूतों से पृथक्}
विदित्वा अनुशोचितुं न अर्हसि	जानकर शोक करने के योग्य नहीं है; {क्योंकि आत्मा सुख-शांति रूप है।}

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतं। तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।। 2/26

च अथ एनं नित्यजातं वा नित्यं मृतं मन्यसे	और यदि इसे सदा जन्मने वाला अथवा नित्य मरने वाला मानता है,
तथापि महाबाहो त्वमेवं शोचितुं नार्हसि	तो भी हे {अष्टमूर्तियों वाला} दीर्घबाहु! तू इस तरह शोक करने योग्य नहीं है;

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।। 2/27

हि जातस्य मृत्युः ध्रुवः च मृतस्य	क्योंकि जन्मने वाले की मृत्यु निश्चित है और {उसी तरह देह द्वारा} मरने वाले का
जन्म ध्रुवं तस्मादपरिहार्ये अर्थे	जन्म निश्चित है; {देहभान है तो जन्म-मृत्यु भी रहेगी।} अतः न टलने योग्य बात में
त्वं शोचितुं अर्हसि न	{अविनाशी ड्रामा समझ} तू शोक करने योग्य नहीं है। {कल्प-2 जन्ममृत्यु का दुख नरक में होता ही है।}

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। 2/28

भारत भूतानि आदीनि अव्यक्तः	हे भरतवंशी! {सृष्टि-आदिकाल में भी} प्राणियों का {अंत और} आदि अदृश्य है।

व्यक्तमध्यानि अव्यक्तनिधनान्येव	मध्य {जीवन} व्यक्त है। मृत्यु बाद {या कल्पान्त/महाविनाश} में भी अव्यक्त हैं।
तत्र का परिदेवना	उस {हूबहू कल्प की आवृत्ति} में क्या शोक करना? {किंतु पु. संगम में 100% आत्मस्थ बन जाने से}

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चित् एनं आश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवत् चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।। 2/29

एनं कश्चित् आश्चर्यवत् वदति चान्यः	इस {हीरो}• को कोई {नं.वार जानकार} आश्चर्य से बताता है और दूसरा
तथैव आश्चर्यवत् पश्यति च अन्यः	वैसे ही आश्चर्य से देखता है और दूसरा {कोई कुछ जानते हुए भी}
एनं आश्चर्यवत् एव शृणोति च कश्चित्	इसको आश्चर्य से ही सुनता है और कोई {अनास्थावान नास्तिक पूरा-अधूरा}
श्रुत्वा अपि एनम् न वेद	{अनमने से} सुनकर भी इसे नहीं जान पाता। {इसीलिए संसार में नं. वार सुख-भोगी हैं।}

•{शंकर क्या करते हैं? उन (हीरो) का पार्ट ऐसा वण्डरफुल है जो तुम विश्वास कर न सको। (मु.ता.14.5.70 पृ.2 आदि)}

देही नित्यं अवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत। तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।। 2/30

भारत अयं देही सर्वस्य देहे	हे ज्ञान-आभा में रत अर्जुन! यह {सृष्टि-बीज हीरो, परम+} आत्मा सबके शरीरों में {पुरुषोत्तम संगम के
नित्यं अवध्यः तस्मात् त्वं	नं.वार पुरुषार्थ से प्राप्त सहजराजयोग की ऊर्जा से} सदा अवध्य है। इसलिए तू {इस}
सर्वाणि भूतानि शोचितुं नार्हसि	{धर्मयुद्ध में हाज़िर} सभी प्राणियों का {भी इतना} शोक करने के लिए योग्य नहीं है।

[31-38 क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करने की आवश्यकता का निरूपण]

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। धर्म्यात् हि युद्धात् श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।। 2/31

च स्वधर्मं अपि अवेक्ष्य विकम्पितुं	इसके अलावा अपनी आत्मा के {क्षात्र-} धर्म को भी देखकर {तू} विचलित होने
न अर्हसि हि धर्म्यात् युद्धात्	योग्य नहीं है; क्योंकि धर्मयुद्ध के सिवाय {चारों वर्णों में विशेष रूप से तेरे जैसे}
क्षत्रियस्य अन्यत् श्रेयः न विद्यते	क्षत्रिय के लिए {क्षात्रधर्म से मिली राज्य-रक्षा सिवा कोई} दूसरा कल्याण नहीं है।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारं अपावृतं। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशं।। 2/32

यदृच्छया उपपन्नं च अपावृतं स्वर्गद्वारं	{सिविलवार द्वारा} अनायास प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार वाले
ईदृशं युद्धं पार्थ सुखिनः क्षत्रियाः लभन्ते	ऐसे• {महान धर्म-} युद्ध को हे पृथ्वीपति! सुखी क्षत्रियजन {ही} पाते हैं।

•जो (मायावी विकारों के) युद्ध के मैदान में (देह वा) देहभान को छोड़ेंगे, वे स्वर्ग में आवेंगे। (मुरली ता.6.5.67 पृ.1 अंत)}

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।। 2/33

अथ चेत् त्वम् इमं धर्म्यं संग्रामं	किन्तु यदि तू {गेट वे टू हैविन वाला} यह धार्मिक {अहिंसक महाभारत} युद्ध
न करिष्यसि ततः स्वधर्मं च कीर्तिं	नहीं करेगा, तो {अल्लाह अव्वलदीन के सत्य सनातन} स्वधर्म और कीर्ति को
हित्वा पापं अवाप्स्यसि	नष्ट करके {द्वैतवादी नारकीय दैत्यों की हिंसक धर्मवृद्धि के} पाप का {ही} भागी बनेगा

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययां। सम्भावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते।। 2/34

च भूतानि अव्ययां ते अकीर्तिं कथयिष्यन्ति च	और {संसार के दुःखी-अशांत} लोग निरंतर तेरी अपकीर्ति करेंगे और
सम्भावितस्याकीर्तिः मरणादपि अतिरिच्यते	सम्मानित व्यक्ति के लिए {यहाँ} अपकीर्ति मौत से भी बढ़कर है।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः। येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवं।। 2/35

महारथाः त्वां भयात् रणात्	महारथी तुझको {क्षत्रिय योद्धा होते हुए भी विरोधियों के} भय से {धर्म-} युद्ध से
उपरतं मंस्यन्ते च येषां त्वं	{भयभीत व} विमुख हुआ मानेंगे और जिनके {मन में} तेरा {महानतम धनुर्धर होने का इतना}
बहुमतोभूत्वा लाघवं यास्यसि	अधिक मान है, {वे ही अविनाशी भारत के सत्यसनातनी लोग तुझको} तुच्छ समझेंगे।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः। निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किं।। 2/36

च तव अहिताः तव सामर्थ्यं	और तेरे {ढाई हज़ार वर्षों से सदा विधर्मियों में कन्वर्टिड} विरोधी तेरे सामर्थ्य की

निन्दन्तः बहूनवाच्यवादान्	निंदा करते हुए बहुत-सी {गन्दी, असहनीय& सरासर झूठी ग्लानि भरी} अनकहनी बातें
वदिष्यन्ति ततः दुःखतरं नु किं	बोलेंगे, उससे बढ़कर {सांसारियों से मुँह छुपाने जैसा} और क्या {बड़ा} दुःख होगा?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीं। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।2/37

कौन्तेय वा हतः स्वर्गं प्राप्स्यसि	हे {देहभान-नाशिनी} कुन्तीपुत्र! या {हौसले से लड़ते-2} मौत पाई तो स्वर्ग पाएगा
वा जित्वा महीं भोक्ष्यसे तस्मात्	अथवा जीतकर {देवासुरात्माओं की सारी} धरणी को भोगेगा; इसलिए {गेट वे टू हैविन}
युद्धाय कृतनिश्चयः उत्तिष्ठ	{महाभारत} युद्ध के लिए निश्चय कर उठ खड़ा हो। {विश्वविजय तेरा ही जन्मसिद्ध अधिकार है।}

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापं अवाप्स्यसि।। 2/38

सुखदुःखे लाभालाभौ जयाजयौ	सुख-दुःख को, लाभ-हानि को {और} जय-पराजय {रूप इन सभी सांसारिक द्वंद्वों} को
समे कृत्वा ततः युद्धाय युज्यस्व	समान {मान} करके, {स्वयं स्थिर हो} बाद में{धर्म-} युद्ध के लिए तैयार हो जा।
एवं पापं न अवाप्स्यसि	ऐसे {देहधारियों के बेलगाव में रहने से आत्मा को} पाप नहीं लगेगा। (दे. गी.18-17)

[39-53 कर्मयोग का विषय]

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे तु इमां शृणु। बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।। 2/39

पार्थ एषा बुद्धिः ते सांख्ये	हे पृथ्वीपाल अर्जुन! यह मत तेरे {ही आदिरूप कम्पिलावासी कपिलमुनि के} सांख्यशास्त्र में
अभिहिता तु योगे इमां शृणु	{सम्पूर्ण व्याख्या से} कही गई है और {अब} कर्मयोग में इस {मत} को {मेरे से विस्तार से} सुन।
यया बुद्ध्या युक्तः कर्मबन्धं प्रहास्यसि	जिस {श्रेष्ठतम} मत से युक्त हुआ {तू} कर्मों के बंधन को नष्ट कर देगा।

न इह अभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमपि अस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। 2/40

इह अभिक्रमनाशः नास्ति प्रत्यवायः	इस {योग} में {पूर्वजन्मों के} पुरुषार्थ का नाश नहीं होता, उल्टाफल {भी}
न विद्यते अस्य धर्मस्य स्वल्पं अपि	नहीं होता। इस {कर्मयोग की} धारणा का अल्पांश भी {पु. संगमयुगी
महतः भयात् त्रायते	शूटिंग अनुसार अनेक जन्मों के} महान भय से रक्षण करता है। {योगुर्जा से ही सारे काम होते हैं।}

व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका इह कुरुनन्दन। बहुशाखा हि अनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनां।। 2/41

कुरुनन्दन इह व्यवसायात्मिका	हे कुरुवंशीय {हर्ष दाता} प्रह्लाद! इस {योग} में निश्चयात्मक {ज्ञान एक से आता है; अतः}
बुद्धिः एका चाव्यवसायिनां	{श्री} मत् एक {अद्वैत शिवबाबा की} ही है, जबकि {धर्मनिरपेक्ष} अनिश्चयी लोगों की
बुद्धयः हि बहुशाखा अनन्ताः	मतें निश्चय ही अनेक {द्वैतवादी विधर्मों से निकली सांप्रदायिक} शाखाओं की असंख्य हैं।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति अविपश्चितः। वेदवादरताः पार्थ नान्यत् अस्ति इति वादिनः।। 2/42

पार्थ वेदवादरताः अन्यत् नास्ति	हे पार्थ! वेदवाद {-विवाद} में लिप्त रहने सिवाय दूसरा मार्ग नहीं-(गी. 2-45,52,53)
इति वादिनः अविपश्चितः यां इमां	ऐसा कहने वाले {मंदिर-मूर्ति-पूजाहीन ब्रह्मा के भक्त B.ks} अविवेकीजन हैं, जो ये
पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति	फली-फूली मीठी-2 वाणी बोलते हैं। {पश्चिम के श्रीनाथ मं. में मालपूए खाने वाले भोगी हैं।}

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदां। क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।। 2/43

कामात्मानः स्वर्गपरा	{वे सांसारिक अंतहीन} कामनाओं वाले हैं, स्वर्गीय 'सुख पाना ही परम पुरुषार्थ है',
भोगैश्वर्यगतिं प्रति जन्मकर्म	{श्रीनाथ जैसे परमार्थरहित व सांसारिक 56 भोग वाले} भोगैश्वर्य प्राप्ति हेतु जन्म-जन्मांतर के कर्म
फलप्रदां क्रियाविशेषबहुलां	फल-प्रदायी विशेष {स्वाहा-2 आदि जैसी फालतू} क्रियाकाण्डादि की बहुत बातें {करते} हैं।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तया अपहृतचेतसां। व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। 2/44

तया अपहृतचेतसां भोगैश्वर्य-	उस {मीठी वाणी} से खिंचे चित्त वाले {और दैहिक} भोग-ऐश्वर्य में {अच्छे-से}
प्रसक्तानां व्यवसायात्मिका	आसक्तजनों की, {सरासर दिखावटी और झूठी परम्पराओं में आसक्त ऐसी} निश्चयात्मक
बुद्धिः समाधौ विधीयते न	बुद्धि, {कभी भी आत्मा के 84 जन्मों की सम्पूर्ण गहराई रूप} समाधि में स्थित नहीं होती।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।। 2/45

अर्जुन वेदा त्रैगुण्यविषया	हे अर्जुन! वेद 3 गुणों के विषय वाले हैं। {यानी रजो & तमोगुणी भी हैं। तू यहाँ विष्णु लोकीय}
निस्त्रैगुण्यः नित्यसत्त्वस्थः	3 गुणों से परे, सदा {16 कलाओं से भी अतीत मेरे समान} सत्वगुण में स्थिर हुआ,
निर्द्वन्द्वः निर्योगक्षेम	{सुख-दुखादि से} द्वन्द्वमुक्त, प्राप्ति वा उसकी सुरक्षारहित बन; {क्योंकि 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'।}
आत्मवान् भव	(गीता 9-22) {अतः देहभान छोड़ सदाकाल} आत्मबिंदु की स्थिति वाला बन जा।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके। तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। 2/46

सर्वतः सम्प्लुतोदके यावानर्थ	चारों ओर से सम्पूर्ण भरपूर {ज्ञानजल का मान-} सरोवर मिले तो जितना प्रयोजन
उदपाने तावान् विजानतः	{छोटे-2 मटमैले} पोखरों में हो, उतना {ही} विशेष {एडवांस ज्ञानसागर के} ज्ञानी
ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु	ब्राह्मण का सभी {ब्रह्मामुखनिसृत} वेदवाक्यों {जैसी मंथनरहित मुरलियों} में होता है।

कर्मण्येवाधिकारः ते म फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुः भूर्मा ते सङ्गोऽस्तु अकर्मणि।। 2/47

ते कर्मणि एव अधिकारः फलेषु कदाच	तेरा {श्रीमदनुसार} कर्मयोग में ही अधिकार है, {सांसारिक} फल में कभी {भी}
न मा कर्मफलहेतुः मा भूः	नहीं; {इसलिए} कर्मफल का कारण {मैं ही हूँ←ऐसे} मत बनो। {दे. गी. 3-27 से 30; इसलिए}
ते अकर्मणि संगः मा अस्तु	तुम्हारी {लोकसंग्रहार्थ} कर्मत्याग में {कभी} आसक्ति न हो। {कर्मयोगी बनना है, कर्म संन्यासी नहीं।}

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध्यासिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48

धनंजय संगं त्यक्त्वा योगस्थः	हे {सच्चीगीता एडवांस} ज्ञानधनजेता अर्जुन! आसक्ति त्यागकर, योगारूढ़ हुआ,
सिद्ध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा	{अन्य द्वंद्वों जैसी} सफलता-असफलता में {भी} समान होकर, {कर्मफल-त्यागी बनकर}
कर्माणि कुरु समत्वं योगः उच्यते	कर्मों को कर। {हर प्रकार के द्वंद्वों में सदाकाल} समत्व {ही} योग कहा जाता है।

दूरेण हि अवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय। बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। 2/49

धनंजय बुद्धियोगात् हि कर्म	हे ज्ञानधनजेता {अर्जुन!1 सर्वोत्तम शिव में} बुद्धियोग लगाने सिवा केवल कर्म करना
दूरेण अवरं बुद्धौ शरणं	अति नीचा है। {बड़े-2 धर्माधीश} बुद्धिमानों {की भी बुद्धि 'त्रिनेत्री शिवबाबा'} की शरण
अन्विच्छ फलहेतवः कृपणाः	ले। कर्मफल के इच्छुक कंजूस• हैं, {विश्व-कल्याणार्थ किसी को कुछ नहीं देना चाहते।}

•{कंजूस पश्चिमी सभ्यता के प्रतीक श्रीनाथ-पुजारी जैसे लोग लोक-कल्याण लिए कुछ भी त्यागना नहीं चाहते, सारे देशी गाय वाले घी के माल बेचकर भी खुद ही खा जाते हैं। अतः इन उड़ीसा जैसे गरीबों के राज्य में पूरब के जगन्नाथ का सादा भोग खाना है।} इसीलिए मुरली ता. 26/6/70 पृ.4 आदि में बोला - "सभी से फर्स्टक्लास शुद्ध खाना है- दाल(या कढ़ी), चावल, आलू।"

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलं।। 2/50

बुद्धियुक्तो इह उभे सुकृतदुष्कृते	बुद्धियोगी इस {लोक} में दोनों प्रकार के अच्छे & बुरे {माने जाने वाले} कर्म {जैसे-}
जहाति कर्मसु कौशलं	{दान-धर्म या रिश्वत, चोरी-चकारी आदि भी} छोड़ देता है। कर्मों में कुशलता {ही}
योगः तस्मात् योगाय युज्यस्व	योग है। अतः {क्षेत्ररूप अर्जुन के मुकर्रर रथ + क्षेत्रज्ञ शिवज्योति के} योग में जुट जा।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः। जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्ति अनामयं।। 2/51

हि बुद्धियुक्ता मनीषिणः कर्मजं	क्योंकि {शिवबाबा से} बुद्धि लगाने वाले ज्ञानीजन {विश्व-कल्याण के} कर्म से उत्पन्न हुए
फलं त्यक्त्वा जन्मबंधविनिर्मुक्ताः	फल को त्यागकर, जन्म {जरा-मरणादिक} बंधनों से विशेष रूप से मुक्त हुए,

अनामयं पदं गच्छन्ति	पापरहित {अतीन्द्रिय सुख वाले, कलातीत, विष्णुलोकीय} परमपद को {वैकुण्ठ में} प्राप्त करते हैं।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिः व्यतितरिष्यति। तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।2/52

यदा ते बुद्धिः श्रोतव्यस्य	जब तेरी {द्वापुर से ही विकारी बनी} बुद्धि {शास्त्र-दैहिक गुरुओं मीडिया आदि की} सुनी•-सुनाई,
श्रुतस्य च मोहकलिलं	और {विदेशियों-विधर्मियों की अंधश्रद्धायुक्त झूठी बातों के} मोह रूप कीचड़ को {भलीभाँति}
व्यतितरिष्यति तदा निर्वेदं गन्तासि	पार करेगी, तब {मिसाइलों से भस्मीभूत होने वाली दुनिया के} वैराग्य को प्राप्त होगा।

•सुनी-सुनाई बातों पर ही भारतवासियों ने दुर्गति को पाया है, (अभी भी पाते जा रहे हैं)। (मु.ता.30.1.71 पृ.4 आदि)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला। समाधौ अचला बुद्धिः तदा योगमवाप्स्यसि।। 2/53

यदा ते श्रुतिविप्रतिपन्ना बुद्धिः समाधौ	जब तेरी •श्रुतियों से भ्रमित बुद्धि {साक्षात् आए हुए} परमात्मा की स्मृति में
निश्चलाचला स्थास्यति	अविचल स्थिर होगी, {तभी अति सूक्ष्म आत्मस्टार रूपी रिकॉर्ड के अंदर 84 जन्मों के}
तदा योगं अवाप्स्यसि	{स्वदर्शन चक्रगत सागर-मंथन में लगेगी,} तब योग {की समाधिगत स्थिति} को पा लेगा।

•इन शास्त्र आदि पढ़ने से (आजतक भी) किसको सद्गति नहीं मिली है। मनुष्य-आत्माओं की सद्गति का ज्ञान इन शास्त्रों में नहीं है। (मानवीय) गीता से भी किसी की सद्गति हो नहीं सकती। (मुरली ता.20.5.92 पृ.1 आदि)

[54-72 स्थिरबुद्धि पुरुष के लक्षण और महिमा]

अर्जुन उवाच-स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव। स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किं।। 2/54

केशव	('क'+ईश अर्थात्) हे 'ब्रह्मा'{रूपी बेसमझ बैल} के ईश्वर {बेहद नेपाल के चेतन पशुपति नाथ}!
स्थितप्रज्ञस्य समाधिस्थस्य	स्थिर बुद्धि की, {अर्थात् (सं.+अधि+स्थस्य) निरंतर आत्मस्टार की} पूरी गहराई में स्थिर की

का भाषा स्थितधीः किं	क्या परिभाषा है? स्थिर बुद्धि {आहार-विहार, रहन-सहन आदि में} कैसे
प्रभाषेत किमासीत किं व्रजेत	बोलता है, कैसे बैठता है {और} कैसे चलता है? {स्थिर बुद्धि की सारी माहिती चाहिए}

भगवानुवाच-प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्। आत्मनि एव आत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः तदा उच्यते।। 2/55

पार्थ मनोगतान् सर्वान् कामान्	हे पृथ्वीपति! मनसा संकल्पों में चलने वाली सभी कामनाओं• को {मनु-पुत्र मानव}
यदा प्रजहाति आत्मना आत्मनि	जब भली-भाँति त्यागता है, अपने आप से आत्म-स्टार में {या परमात्मस्मृति में}
एव तुष्टः तदा स्थितप्रज्ञरुच्यते	ही संतुष्ट रहता है, तब स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है। {अन्यथा नहीं कह सकते}

•'इच्छामात्रमविद्या' (मु.ता.10/4/68) (दे. गीता-4-19; 6/4-18-24 इत्यादि)

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिः उच्यते।। 2/56

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु	दुःखों में उद्वेग-{बेचैनी} से रहित मन वाला, {लौकिक} सुखों में {अनासक्त रहने वाला}
विगतस्पृहः वीतरागभयक्रोधः	इच्छारहित {तथा पुरुषोत्तम संगमयुग में खास} राग-भय-क्रोध से रहित, {ज्ञान-नेत्र से}
मुनिः स्थितधीः उच्यते	{इस प्रकार ईश्वरीय महावाक्यों को जानने वाला} मनन चिंतनशील व्यक्ति स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं। नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 2/57

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत्-2	जो {सिवा परमपिता+परमात्मा के} सब ओर से पूरा स्नेहरहित हुआ, उन-2 {सांसारिक}
शुभाशुभं प्राप्य नाभिनन्दति न	शुभ या अशुभ को पाकर {साक्षीदृष्टा की भाँति} न पूरा आनंदित होता है, न {दुःखी होकर}
द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	द्वेष करता है, उसकी {पारखी & निर्णयात्मक} बुद्धि दृढ़तापूर्वक {आत्मा में} स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मः अङ्गानि इव सर्वशः। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2/58

च यदा अयं कूर्मः अंगानि इव	और जब यह {योगी} कछुए के अंगों की तरह {मन के संकल्पों सहित श्रेष्ठ & भ्रष्ट, दोनों}
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः सर्वशः	इन्द्रियों को इन्द्रियों के {रूप-रस-गंध आदि} विषय भोग सब ओर से {निरंतर}
संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	संपूर्ण खींच लेता है, {तब} उस योगी की बुद्धि दृढ़ता से आत्मस्थिर हो जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसः अपि अस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।2/59

निराहारस्य देहिनः विषया विनिवर्तन्ते	विषय-भोग-त्यागी देहधारी पुरुष के भोग {तो} विशेषतः हटते हैं;
रसवर्जं अस्य	{किंतु} रस लेने की {पूर्व अनुभूतियों वाली मानसिक} आसक्ति नहीं हटती। {अर्थात्} इस {राजयोगी} की {तो}
रसः अपि परं दृष्ट्वा निवर्तते	आसक्ति भी {कलातीत अतीन्द्रिय सुख के} परमार्थ को देखकर {पूरी ही} हट जाती है।

यततो हि अपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। 2/60

हि कौन्तेय यततः विपश्चितः	क्योंकि हे {देह-अभिमाननाशिनी कुं/देहं दारयतीति} कुन्ती के पुत्र! प्रयत्न करते हुए बुद्धिमान्
पुरुषस्य अपि प्रमाथीनि	{पारखी} पुरुष की भी अच्छे-से मथ डालने वाली {खास नेत्र और कामेन्द्रिय सहित अन्य}
इन्द्रियाणि मनः प्रसभं हरन्ति	इन्द्रियाँ {अर्जुन-रथ के सर चढ़े चंचल कपिध्वज वाले} मन को बलपूर्वक खींच लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः। वशे हि यस्य इन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।2/61

तानि सर्वाणि संयम्य मत्परः युक्तः	उन सब {इन्द्रियों} को पूरा वश करके मेरे आश्रित हुआ, मुझ {शिव} में {ही} मन
आसीत हि यस्य इन्द्रियाणि वशे	लगा; क्योंकि जिस {मन-बुद्धि वाली ज्योतिबिंदु आत्मा} की इन्द्रियाँ वश में हैं,
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	उसकी बुद्धि {जन्म-2 चंचल बने मन की अस्थिरता से हटकर} दृढ़तापूर्वक स्थिर रहती है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषु उपजायते। सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधः अभिजायते।।2/62

विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु संगः	विषय{-भोगों} का ध्यान करने वाले पुरुष को उन {विषयों} में आसक्ति/लगाव
उपजायते संगात् कामः संजायते	उत्पन्न होता है। आसक्ति से {मनसा संकल्प में} कामना भली-भाँति पैदा होती है,
कामात् क्रोधः अभिजायते	{दैहिक विकारी} कामना {प्रायः पूरी न होने} से {अनियंत्रित} क्रोध {जोर से} उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।2/63

क्रोधात् सम्मोहः भवति सम्मोहात्	क्रोध से सम्पूर्ण मोह/मूढ़ता आती है,भरपूर मूढ़ता {से जड़-जड़ीभूत बुद्धि} द्वारा
स्मृतिविभ्रमः स्मृतिभ्रंशात्	स्मृति-नाश होता है, स्मृति के भ्रष्ट होने से {परख & निर्णयशक्तिरूपा समझ शक्ति/}
बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति	बुद्धि नष्ट होती है {और} बुद्धि नष्ट होने से {धर्म पर अनिश्चय रूपी} मृत्यु होती है।

रागद्वेषवियुक्तैः तु विषयान् इन्द्रियैः चरन्। आत्मवश्यैः विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।2/64

तु रागद्वेषवियुक्तैः विधेयात्मा	परंतु राग-द्वेष से विहीन, अनुशासित मन वाला, {पक्षपात रहित साक्षीदृष्टा राजयोगी,}
आत्मवश्यैः इन्द्रियैः विषयान्	{राजयोग-शासित} आत्मा की वशीभूत इन्द्रियों से {धर्मानुकूल/•हिंसाहीन समुचित} भोग
चरन् प्रसादं अधिगच्छति	भोगते हुए {अविनाशी} प्रसन्नता को पाता है। {सुख• देने से ही सदा सुख होता है।}

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिः अस्य उपजायते। प्रसन्नचेतसो हि आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।2/65

प्रसादे अस्य सर्वदुःखानां हानिरुपजायते	प्रसन्नता से इस {योगी} के {जन्म-जरादि} सब दुःखों का नाश हो जाता है;
हि प्रसन्नचेतसः बुद्धिः आशु पर्यवतिष्ठते	क्योंकि प्रसन्नचित्त की बुद्धि शीघ्र, अच्छे-से {आत्मा में} स्थिर होती है।

नास्ति बुद्धिः अयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखं।।2/66

अयुक्तस्य बुद्धिः नास्ति च	{जो} योगी नहीं, उसको बुद्धि नहीं होती और {बुद्धिमानों की बुद्धि शिव से दूर}

अयुक्तस्य भावना न चाभावयत:	भोगी व्यक्ति में भावना नहीं {होती} और {श्रद्धा-} भावनाहीन {शान्त+नु जैसे} को
शांति: न अशांतस्य सुखं कुत:	शान्ति नहीं होती; अशांत व्यक्ति को सुख कहाँ होगा? {नहीं हो सकता ना।}

इन्द्रियाणां हि चरतां यत् मनोऽनुविधीयते। तत् अस्य हरति प्रज्ञां वायु: नावमिवाम्भसि।। 2/67

हि यत् मन: चरतां इन्द्रियाणां	क्योंकि जो {चंचल} मन {दैहिक भोगों में} विचरण करती हुई {कोई भी ज्ञान या कर्म}-इन्द्रियों का
अनुविधीयते तत् वायु: अम्भसि	अनुसरण करता है, वह {मन तीव्रगति से बहती} वायु द्वारा पानी में {तैरती}
नावं इव अस्य प्रज्ञां हरति	{हलकी} नाव की तरह इस {भोगी का बेलगाम दौड़ता अश्व रूप मन} बुद्धि को हर लेता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वश:। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्य: तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2/68

महाबाहो तस्मात् यस्य इन्द्रियाणि	हे {अष्टमूर्तिरूप सहयोगियों रूपी} लम्बी भुजाओं वाले! इसलिए जिसकी इन्द्रियाँ
इन्द्रियार्थेभ्य: सर्वश: निगृहीतानि	इन्द्रिय-भोगों से {मन-वचन-कर्म द्वारा,} सब प्रकार {विकारों से} रोक ली गई हैं,
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता	उस {संयमित मन वाले ज्ञानी और सहज राजयोगी} की बुद्धि भली-भाँति {ज्योतिबिंदु आत्मस्टार में} स्थिर रहती है।

य निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने:।।2/69

सर्वभूतानां या निशा तस्यां संयमी	सभी {सांसारिक} प्राणियों के लिए जो {आध्यात्म} रात्रि है, उसमें {राज} योगी
जागर्ति यस्यां भूतानि जाग्रति	जागता है। जिस {मानवीय भौतिकता} में {भ्रमित} प्राणी {स्वर्गीय दिन समझ} जागता है,
सा पश्यत: मुने: निशा	वह {पु. संगमयुगी सच्चीगीता एडवांस ज्ञान के 60 वर्षीय मंथनकर्ता} मननशील मुनि के लिए रात्रि है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमाप: प्रविशन्ति यद्वत्। तद्वत्कामा: यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। 2/70

आपूर्यमाणं अचलप्रतिष्ठं समुद्रं यद्वत्	चारों ओर से भरपूर अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में जैसे {चेतन ज्ञान-नदियों की}

आप: प्रविशन्ति तद्वत् यं सर्वे कामा:	जलधाराएँ प्रवेश पाती हैं, वैसे ही जिसकी {अच्छी-बुरी अपनी} सब •इच्छाएँ
प्रविशन्ति	{यानी संकल्प-विकल्पों की लहरें उस अगाध ज्ञान-सागर शिवबाबा की जलमई में समा जाती हैं/} प्रवेश पाती हैं,
स शांतिं आप्नोति कामकामी न	वो {ही आत्मा} शांति {के सागर} को पाती है; कामनाओं का इच्छुक नहीं {पाता}।

•{तुम बच्चे जानते हो हमको बाप (भगवान) मिला तो सब-कुछ मिला। (मु.ता.27/6/1965 पृ.2 आदि)}

विहाय कामान्य: सर्वान्पुमान् चरति नि:स्पृह:। निर्ममो निरहङ्कार: स शान्तिमधिगच्छति।।2/71

य: पुमान् सर्वान् कामान् विहाय	जो पुरुष सारी {श्रीमतविहीन सांसारिक भौतिक} कामनाओं को {यहाँ ही} छोड़कर,
नि:स्पृह: निर्मम: निरहंकार:	लालसारहित, ममताहीन {और} निरहंकारी {निर्मान-नम्रचित्त} भाव का {श्रेष्ठ}
चरति स: शांतिं अधिगच्छति	आचरण करता है, वह {दीर्घकालीन नैष्ठिकी परमब्रह्म की} शांति प्राप्त करता है।

एषा ब्राह्मी स्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। स्थित्वा अस्यां अन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति।।2/72

पार्थ एषा ब्राह्मी स्थिति:	हे अर्जुन! यह परंब्रह्म परम+ईश्वर से उत्पन्न {सर्वोत्कृष्ट अव्यक्त और अविनाशी} अवस्था है।
एनां प्राप्य न विमुह्यति	इसे प्राप्त करके {योगी मनुष्य किसी व्यक्ति या वस्तु के} मोह में नहीं पड़ता {और कल्पान्त में}
अन्तकाले अपि अस्यां स्थित्वा	{महाविनाश की} महामृत्यु में भी इस {अव्यक्त&अविनाशी स्थिति} में स्थिर होकर
ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति	{नं.वार संगठित पंचमुखी ब्रह्माओं में से ऊर्ध्वमुखी} परंब्रह्म के निर्वाणधाम को पाता है।

अध्याय-3

कर्मयोग-नामक तीसरा अ0।।

[1-8 ज्ञानयोग और कर्मयोग के अनुसार अनासक्त भाव से नियत कर्म करने की श्रेष्ठता का निरूपण।]

अर्जुन उवाच-ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिः जनार्दन। तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।3/1

जनार्दन ते कर्मणः बुद्धिः ज्यायसी	{जनैरर्द्यते=याच्यते} हे अवढरदानी! आप {कर्मेन्द्रियों के} कर्मयोग से बुद्धियोग श्रेष्ठ
मता चेत् तत् केशव घोरे	मानते हो {जो ज्ञानेन्द्रियों से जुड़ा है}, तो हे ब्रह्मा के स्वामी! {अघोरियों-जैसे नीच/} घोर
कर्मणि मां किं नियोजयसि	{भ्रष्टेन्द्रिय के} कर्म में मुझे क्यों लगा रहे हो? {अघोरियों को तो कोई नहीं चाहता।}

व्यामिश्रेण इव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयां।। 3/2

व्यामिश्रेणेव वाक्येन मे बुद्धिं	{एक/दूसरे से} परस्पर मिले हुए {दुहरा अर्थ देने वाले ब्रह्म-} वाक्यों से मेरी बुद्धि {इस तरह}
मोहयसीव तत् निश्चित्य एकं	{किसलिए} भ्रमित-सी कर रहे हो। तो {कर्मयोग-बुद्धियोग में से} निश्चय करके एक बात
वद येन अहं श्रेयः आप्नुयां	{मेरे से} कहो, जिससे मैं {'निश्चयबुद्धि विजयते' बन सकूँ और} श्रेष्ठता को प्राप्त करूँ।

भगवानुवाच-लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनां।। 3/3

अनघ मया अस्मिन् पुरा लोके	हे निष्पाप! मैंने इस पुराने {कलियुगान्त में पुरु. संगम की शूटिंग के} लोक में
द्विविधा निष्ठा प्रोक्ता ज्ञानयोगेन	दो तरह की योगनिष्ठा-प्रणाली कही थी- {मनन-चिंतन सहित} ज्ञानयोग द्वारा
सांख्यानां योगिनां कर्मयोगेन	{कपिल-जैसे} ज्ञानियों की {और गृहस्थियों के} कर्म सहित योग द्वारा कर्मयोगियों की।

न कर्मणामनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।। 3/4

पुरुषः कर्मणां अनारम्भात् नैष्कर्म्यं	{निवृत्त} व्यक्ति कर्मों का आरम्भ न करने से कर्महीनता {रूप सम्पूर्ण त्याग} को
न अश्नुते च संन्यसनादेव	नहीं पाता, वैसे ही {बिना विचारे समुचित & अनिवार्य कर्मों के} सम्पूर्ण त्याग से भी
सिद्धिं न समधिगच्छति	{जीवन रहते दुखों से मुक्ति वा जीवन्मुक्ति रूप} सिद्धि संपूर्णतया नहीं प्राप्त हो सकती।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत्। कार्यते हि अवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः।। 3/5

हि कश्चित् क्षणं अपि अकर्मकृत्	निःसन्देह कोई {व्यक्ति} क्षण भर भी {मल-मूत्र त्यागादि अनिवार्य} कर्म किए बिना
न जातु तिष्ठति हि प्रकृतिजैः	नहीं रह पाता; क्योंकि प्रकृतिकृत {सर्वकालीन सत-रज-तम में से कोई भी
गुणैः अवशः सर्वः कर्म कार्यते	प्रधान} गुणों {सहित ही इन्द्रियों} से बरबस सब प्रकार के कर्म करने पड़ते हैं।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।। 3/6

यः विमूढात्मा कर्मेंद्रियाणि संयम्य	जो महामूर्ख पुरुष {अनेक जन्मों से ही प्रबल बनी} कर्मेन्द्रियों को {जबरियन} रोककर,
इन्द्रियार्थान् मनसा स्मरन्	{हर प्रकार की इन्द्रिय-सहयोग बिना} इन्द्रिय के भोगों को मन से याद करता हुआ
आस्ते स मिथ्याचारः उच्यते	{देह-निर्वाह का धंधा छोड़, निष्क्रिय हुआ} बैठता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है।

यः तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। 3/7

अर्जुन तु यः मनसा इन्द्रियाणि नियम्यासक्तः	हे अर्जुन! परंतु जो {स्थिर} मन से इन्द्रियाँ नियमित करके, अनासक्त हुआ
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगं आरभते स विशिष्यते	कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है, वह विशेष {मान्य} है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो हि अकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।। 3/8

त्वं नियतं कर्म कुर्वकर्मणः कर्म हि ज्यायो	तू {नैसर्गिक} नियत कर्मों को कर। कर्म न करने से कर्म करना ही श्रेष्ठ है
चाकर्मणः ते शरीरयात्रापि न प्रसिद्ध्येत्	और {दैनिक} कर्म से रहित तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

[9-16 यज्ञादि कर्मों की आवश्यकता का निरूपण।]

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।3/9

यज्ञार्थादन्यत्र कर्मणोऽयं लोकः कर्मबंधनः	{रुद्रज्ञान} यज्ञ के सिवा दूसरे किसी कर्म से यह {नरक} लोक कर्मबंधन है।
कौन्तेय मुक्तसंगः तदर्थं कर्म समाचर	हे अर्जुन! {दैहिक} आसक्ति छोड़ उस {अविनाशी रुद्रज्ञानयज्ञ-} अर्थ कर्म कर।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेषः वः अस्तु इष्टकामधुक्।।3/10

पुरा सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा	आदिकालीन {पु.संगमयुगी शूटिंग में} यज्ञ सहित {मानसी} प्रजा पैदा करके
प्रजापतिरुवाच अनेन प्रसविष्यध्वं	प्रजापति ने कहा- इस {अविनाशी रुद्र-ज्ञानयज्ञ} से {सत्त्वप्रधान सृष्टि की} वृद्धि करो।
एषः वः इष्टकामधुक् अस्तु	यह {यज्ञ} तुम्हारी {स्वर्गीय/अतीन्द्रिय सुखों वाली} इष्ट कामना की कामधेनु हो।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। 3/11

अनेन देवान् भावयत ते देवा	इस {यज्ञ} से {9 कुरी के ब्राह्मण सो पावन शरीरी} देवों को सन्तुष्ट करो। वे देवता
वः भावयन्तु परस्परं	तुमको {कल्पान्तकाल में भी सूक्ष्म देह द्वारा इष्ट भोगादि से} सन्तुष्ट करें। {ऐसे} एक-दूसरे को
भावयन्तः परं श्रेयः अवाप्स्यथ	{परस्पर सहयोग द्वारा} तृप्त करते हुए {विष्णुलोकीय} परम कल्याण को प्राप्त करो।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैः दत्तानप्रदाय एभ्यः यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। 3/12

हि यज्ञभाविताः देवा वः इष्टान्	क्योंकि यज्ञसेवा से संतुष्ट हुए {ऐसे ब्राह्मण सो सूक्ष्म} देव तुमको इच्छित
भोगान् दास्यन्ते तैः दत्तानेभ्यः	भोग देंगे। उनके द्वारा {सूक्ष्म पराशक्ति से} दिए हुए {सर्वेन्द्रियों के भोग} उन्हें
अप्रदाय यः भुंक्ते सः स्तेनः एव	अर्पण किए बिना जो {ब्राह्मण/ब्रह्मापुत्र अलबेला बनकर} भोगता है, वह चोर ही है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्ति आत्मकारणात्।।3/13

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तः सर्वकिल्बिषैः	{रुद्र-ज्ञान} यज्ञसेवा से बचे हुए को खाने वाले {परमार्थी} संतपुरुष सब पापों से
मुच्यन्ते ये आत्मकारणात् पचन्ति	{यहाँ ही} मुक्त हो जाते हैं। जो {स्वार्थी अर्पण किए बिना} अपने लिए पकाते हैं,
ते पापाः त्वघं भुंजते	{वे श्रीनाथीय पश्चिमी सभ्यता वाले तो श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं बनते।} वे पापी लोग तो पाप भोगते हैं।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।3/14

अन्नाद्भूतानि भवन्ति पर्जन्यात्	{आत्मस्नेह के} भोजन से {नौधा ब्राह्मणरूप} प्राणी होते हैं, {ज्ञान-} वर्षा से
अन्नसम्भवः यज्ञात्पर्जन्यः	{योगयुक्त स्थिति द्वारा आत्मिक} भोजन होता है, यज्ञसेवा से {ज्ञानमंथन द्वारा ज्ञान-} वर्षा
भवति यज्ञः कर्मसमुद्भवः	होती है। {ब्राह्मणों द्वारा किए गए वैसे ही फलित} कर्म से {अविनाशी रुद्र-} यज्ञ उत्पन्न हुआ है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितं।। 3/15

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि	{सात्विक, राजसी या तामसी} कर्म को {नं. वार चौमुखी संगठित} ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ जान।
ब्रह्म अक्षरसमुद्भवं	{अधोमुखी} ब्रह्मा अविनाशी {अव्यक्त• स्थिति वाले परमब्रह्म} से पैदा हुआ है।
तस्माद्यज्ञे सर्वगतं	इसलिए {ज्ञान-} यज्ञ में सर्वगामी {संगठित हुआ 4 मुखों का चतुर्मुखी सूक्ष्म देह का अधोमुखी}
ब्रह्म नित्यं प्रतिष्ठितं	{गिरती कला का} ब्रह्मा {अर्जुन-ध्वजा में चंचल हनुमान रूप से कथाओं में} सर्वदा उपस्थित है।

•जैसे बुद्ध-क्राइस्ट-गुरुनानक आदि सभी धर्मपिताओं के चेहरे से निराकारी अव्यक्तस्थिति स्पष्ट झलकती है, वैसे ही अल्लाह अव्वलदीन वाले सनातन धर्म के महादेव की बात है। चेहरे से ही स्पष्ट पारदर्शी रूहानियत झलकती है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयति इह यः। अघायुः इन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।3/16

इह यः एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयति	इस {पु.संगम} में जो ऐसे चलाए गए {उपरिवर्णित} चक्र का अनुसरण नहीं करता,
पार्थ सोऽघायुः इन्द्रियारामः मोघं जीवति	हे पृथापुत्र! वह पापायु {स्वार्थ से भरे} इन्द्रिय-सुखों में मग्न व्यर्थ जीवित है;

[17-24 भगवान और ज्ञानवान के लिए भी लोकसंग्रहार्थ कर्मों की आवश्यकता।]

यः तु आत्मरतिः एव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मनि एव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।3/17

तु यः मानवः आत्मरतिरेव चात्मतृप्तः	परंतु जो {मनु-पुत्र} मनुष्य {ज्योतिबिंदु} आत्मा में ही प्रीति वाला, आत्म-तृप्त है
च आत्मन्येव संतुष्टः स्यात्तस्य कार्यं न विद्यते	और {देह को भूल} आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसका कोई कार्य नहीं रहता।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेन इह कश्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।। 3/18

इह तस्य कृतेन एवाकृतेन कश्चनार्थः	यहाँ {पुरुषोत्तम संगम में} उसको करने से, ऐसे ही न करने से कोई प्रयोजन है।
च न सर्वभूतेष्वस्य कश्चिदर्थव्यपाश्रयः	और न किसी प्राणी पर इस {आत्मस्थ ब्राह्मण} का कोई {दैहिक} •कार्य निर्भर है।

•{जैसे स्वर्ग में सारे कार्य प्रकृति ही करेगी, वैसे ही सच्चे ब्राह्मण-देवों की पालना भगवान बाप करते-कराते हैं।} {साक्षात् ईश्वर के सेवाधारी ब्रह्मावत्स भूख नहीं मरेंगे।} कुरान में भी है-"कयामत में खुदा के बन्दे बड़े मौज में रहेंगे।" "शिवबाबा का बन और भूख मरे यह कब हो नहीं सकता" (मु.ता.3-11-68 पृ.4 मध्य)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो हि आचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।। 3/19

तस्मात् असक्तः सततं कार्यं	इस कारण से अनासक्त हुआ, निरंतर करने योग्य {विश्व नवनिर्माण के लिए यज्ञसेवा के}
कर्म समाचर ह्यसक्तः पूरुषः	{श्रेष्ठ} कर्म का {तू} आचरण कर; क्योंकि अनासक्त पुरुष {अविनाशी रुद्र-यज्ञार्थ सेवा-}
कर्माचरन् परमाप्नोति	कर्म का आचरण करता हुआ {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ के} परमपद को प्राप्त करता है;

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः। लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। 3/20

हि जनकादयः कर्मणैव संसिद्धिं	क्योंकि {वैदेही के जन्मदाता/जगत्पिता} जनक आदि कर्म द्वारा ही संपूर्ण सिद्धि को
आस्थिताः लोकसंग्रहं सम्पश्यन्	{पु.संगम में ही} प्राप्त हुए थे। {विश्व-नवनिर्माणार्थ} लोकसंग्रह को भली-भाँति देखते हुए
अपि कर्तुं एवार्हसि	भी {महारुद्र=आदिदेव+सदाशिव भगवान का} यज्ञकर्म करने लिए ही योग्य है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। 3/21

श्रेष्ठः यत्-2 आचरति तत्-2 एव	{दुनिया का} श्रेष्ठतम {मालिक} शिवबाबा {पु.संगम में} जो-2 आचरण करता है, वैसा-2 ही
इतरः जनः सः यत् प्रमाणं	दूसरे {अनुगामी} लोग {भी करते हैं}। वह {हीरो} जैसा {परमपिता शिव की श्रीमत से} प्रमाणित
कुरुते लोकः तदनुवर्तते	कर्म करता है, {सत्य सनातनी} लोग उस {श्रेष्ठतम कार्य} का {ही} •अनुसरण करते हैं।

•{जैसा कर्म हम करेंगे, हमको देख और करेंगे। (मु.ता.6.6.90 पृ.2 आदि)} {सुभाषित भी है 'महाजनेन येन गतः स पंथः।'} {देखिए आगे, गीता 3-23 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते'...}

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। 3/22

पार्थ त्रिषु लोकेषु मे किंचन	हे पृथा-पुत्र पृथ्वीराज! {सुख-दुःख-शांतिधाम} तीनों लोकों में मुझ {त्रिकालज्ञ} को कुछ {भी}
कर्तव्यं न अस्ति न अवाप्तव्यं	करने योग्य {ऐसा कोई} कर्म नहीं है, {और मुझे तीनों लोकों में} पाने योग्य {कुछ भी} नहीं है
अनवाप्तं चैव कर्मणि वर्त	जो {पदार्थ} न प्राप्त हो, तो भी {अनासक्त हो} कर्मों में लगा हूँ। {ताकि लोग फॉलो करें।}

यदि हि अहं न वर्तेयं जातु कर्मणि अतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। 3/23

हि यदि अहं जातु कर्मणि अतन्द्रितः न	क्योंकि यदि मैं कदाचित् कर्मों में आलस्यहीन होकर {लगनपूर्वक} न
वर्तेयं पार्थ मनुष्याः सर्वशः मम वर्त्मानुवर्तन्ते	लगा रहूँ, {तो} हे पार्थ! {संसारी} लोग सब प्रकार से मेरा मार्ग ही पकड़ेंगे।

उत्सीदेयुः इमे लोका न कुर्यां कर्म चेत् अहं। सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यां इमाः प्रजाः।। 3/24

अहं कर्म न कुर्यां चेदिमे	मैं {विश्व-नवनिर्माणार्थ श्रेष्ठतम संगठन का} कार्य न करूँ, तो ये {सुख-दुख-शांतिधाम के}
लोकाः उत्सीदेयुः च संकरस्य	लोक नष्ट हो जाएँ और {मैं वृष्णिवंशी यादवों/क्रिश्चियन्स-जैसी} वर्णसंकर प्रजा का
कर्ता स्यां इमाः प्रजाः उपहन्यां	कर्ता बनूँ {और} इस {नौधा ब्राह्मणों की नौ नाथीय} प्रजा का {भी} विनाशकारी बनूँ।

[25-35 अज्ञानी और ज्ञानवान के लक्षण तथा राग-द्वेष से रहित होकर कर्म करने के लिए प्रेरणा।]

सक्ताः कर्मणि अविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। कुर्यात् विद्वान् तथा असक्तः चिकीर्षुः लोकसङ्ग्रहं।।3/25

भारत अविद्वांसः यथा कर्मणि सक्ताः कुर्वन्ति	हे {विष्णुवत्} भरतवंशी! अज्ञानी लोग जैसे कर्म में आसक्त हो कर्म करते हैं,
तथा विद्वान् असक्तः लोकसंग्रहं चिकीर्षुः कुर्यात्	वैसे ही ज्ञानी अनासक्त हो संसार-संगठन की इच्छा से कर्म करे।

न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानां कर्मसङ्गिनां। जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।।3/26

कर्मसंगिनां आज्ञानां बुद्धिभेदं	{मेरे द्वारा 4 वर्णों में विभक्त हुए} कर्मों में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि में {ऊँच-नीच का} भेद
न जनयेत् युक्तः विद्वान्	उत्पन्न न करे; {अपना-2 सहज कर्म करने दे।} कर्मयोगी-विद्वान {स्वयं भी सदा}
सर्वकर्माणि समाचरन् जोषयेत्	{कोई भी वर्ण के} सब कार्यों को भली-भाँति करते हुए {रुद्रज्ञान यज्ञ} सेवा में लगाए।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।3/27

कर्माणि सर्वशः प्रकृतेर्गुणैः क्रियमाणानि	सब कार्य सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किए जा रहे हैं; {परन्तु}
अहंकारविमूढात्मा अहं कर्ता इति मन्यते	अहंकार से विशेषतः मूढ़ बना पुरुष "मैं करने वाला हूँ" - ऐसा मानता है।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः। गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।3/28

तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः तत्त्ववित् गुणाः	किंतु हे दीर्घबाहु! गुण व कर्म के विभाग का तत्व जानने वाला, गुण
गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा सज्जते न	{सत-रजादि} गुणों में आवर्तन करते हैं, ऐसा मानकर {कभी भी} आसक्त नहीं होता।

{पु. संगम में शिवबाबा & प्रकृति ने प्राणियों के स्वगुणों & कर्मानुसार पार्ट निश्चित किए थे। (दे. गी. 3-27; 4-13)}

प्रकृतेः गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु। तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नवित् न विचालयेत्।।3/29

प्रकृतेः गुणसम्मूढाः गुणकर्मसु	{त्रिगुणमयी मेरी} प्रकृति से गुणभ्रान्त नर {द्वैतवादी द्वापर से दैहिक} गुणकर्मों में
सज्जन्ते तानकृत्स्नविदः मन्दान्	{आत्मा को भूल} आसक्त हो जाते हैं। उन अधकचरी समझ वाले मन्दबुद्धि लोगों को
कृत्स्नवित् न विचालयेत्	{पु. संगमी शूटिंग में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञाता} सम्पूर्ण ज्ञानी {ब्रह्मावत्स} विचलित न करे।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा। निराशीः निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।3/30

अध्यात्मचेतसा मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य	आध्यात्मिक बुद्धि से मेरे में सब {यज्ञार्थ श्रेष्ठ} कर्मों को अर्पण कर,
निराशीः निर्ममः भूत्वा विगतज्वरः युध्यस्व	आशाहीन, ममताहीन होकर, निस्ताप हुआ {तू धर्म-}युद्ध कर।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।। 3/31

ये श्रद्धावन्तः मानवाः अनसूयन्तः मे इदं मतं	जो श्रद्धावान् मनुष्य ईर्ष्यारहित हुए मेरी इस {उपर्युक्त} श्रीमत का
नित्यमनुतिष्ठन्ति तेऽपि कर्मभिः मुच्यन्ते	{पु.संगम में} सदा पालन करते हैं, वे भी {सांसारिक} कर्मबंधन से छूट जाते हैं;

ये तु एतत् अभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतं। सर्वज्ञानविमूढान् तान् विद्धि नष्टानचेतसः।।3/32

तु ये अभ्यसूयन्तः मे एतद्मतं	किन्तु जो {मेरे मुकर्रर रथ से} ईर्ष्या करने वाले {लोग} मेरी इस श्रीमत का
नानुतिष्ठन्ति तान् अचेतसः सर्वज्ञान-	{ठीक से} पालन नहीं करते, उन बुद्धुओं को सम्पूर्ण {सच्चीगीता-एडवांस} ज्ञान से
विमूढान् नष्टान् विद्धि	{कलियुगान्त में बनने वाले नास्तिकों या अर्धनास्तिकों-जैसा} विशेष मूर्ख {और} नष्ट हुआ जान।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवानपि। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।3/33

ज्ञानवान् अपि स्वस्याः	{गीता का एडवांस} ज्ञानी मनुष्य भी अपने {पूर्वजन्मानुसार की गई पु0संगमी-शूटिंग के निश्चित}
प्रकृतेःसदृशं चेष्टते भूतानि प्रकृतिं	स्वभाव-अनुसार {अच्छी-बुरी} चेष्टा करता है, प्राणी {अपनी ही} प्रकृति/स्वभाव की ओर
यान्ति किं निग्रहः करिष्यति	जाते हैं। {इसमें प्रयत्नतः} तू क्या रोकथाम करेगा? {सारे उपक्रम व्यर्थ ही होंगे।}

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ। तयोः न वशमागच्छेत् तौ हि अस्य परिपन्थिनौ।।3/34

इन्द्रियस्य रागद्वेषौ इन्द्रियस्यार्थे	{भोग वाली} इन्द्रिय का राग और द्वेष {उस विशेष} इन्द्रिय के विषय-{भोग} में
व्यवस्थितौ तयोर्वशं नागच्छेत्	होता है, उन दोनों {राग-द्वेष} के वश में न आए; {समत्वं योग उच्यते, गी. 2-48}
हि तौ अस्य परिपन्थिनौ	क्योंकि वे दोनों इस {आत्मा} के शत्रु हैं। {उदासीन वदासीनं; गी.9-9;14-23}

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। 3/35

स्वनुष्ठिताद्विगुणः स्वधर्मः	स्वधर्म का पालन करने से {सतरजादि} गुणविहीन {निराकार-चेतन} आत्मा का धर्म
परधर्माच्छ्रेयान् स्वधर्मे निधनं	{जड़त्वमयी} प्रकृति के धर्म से श्रेष्ठ है। अपनी {चेतन आत्मा के} धर्म में {देह त्याग रूप} मरना
श्रेयः परधर्मः भयावहः	श्रेष्ठ है, {स्लामी-बौद्धी आदि विदेशी-विधर्मी} देहाभिमानियों का धर्म {अति} खतरनाक है।

[36-43 काम के निरोध का विषय]

अर्जुन उवाच-अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलात् इव नियोजितः।।3/36

वार्ष्णेय अनिच्छन् अपि अथ	{व्यभिचारी} वृष्णिवंशी •यादवों में जन्मे हे बं-बं महादेव! इच्छा न होते भी पीछे से {या चोरी से}
बलात् नियोजितः इव अयं पूरुषः	बलपूर्वक लगाए हुए की तरह यह पुरुष {स्लामी-बौद्धी-क्रिश्चियनादि विधर्मियों में से}

केन प्रयुक्तः पापं चरति	किसकी प्रेरणा से पाप करता है? {द्वैतवादी द्वापुर से क्या सभी विदेशी-विधर्मी निमित्त हैं?}

•{वृष्णिवंशी यादवों के बुद्धि रूपी पेट के मूसल ही लोहे के मिसाइल्स हैं, जो रजोगुणी और तामसी-कामी-क्रोधी स्लामी व क्रिश्चियन्स की अंतिम परिणति है, जिनसे सारे संसार का महाविनाश हो जाता है।}

श्रीभगवानुवाच-काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धि एनम् इह वैरिणं।।3/37

रजोगुणसमुद्भवः एष काम	{द्वापुर से ढाई हज़ार वर्ष में} रजोगुण से पैदा यह {डकैतों का मुखिया} कामविकार {और}
एष क्रोध महाशनः महापाप्मा	यह {सत्यानाशी} क्रोध बहुत भोगी है {और} बड़ा पापी है; {क्योंकि कामांग ही विनाशी देह में
इह एनं वैरिणं विद्धि	आत्मा का महापापी भ्रष्टांग है।} इस {द्वैतवादी विधर्मियों-विदेशियों के} संसार में इसको वैरी समझ।

{ऐसे तो सत-त्रेतायुग में देवगण भी श्रेष्ठ ज्ञानेन्द्रियों से भोगी ही हैं; किंतु वे तो आत्मस्थ मन-बुद्धिरूप आत्मा के संग ही हैं।}

धूमेनाव्रियते वह्निः यथा आदर्शः मलेन च। यथा उल्बेनावृतो गर्भः तथा तेन इदं आवृतं।। 3/38

यथा धूमेन वह्निश्च आदर्शः मलेन	जैसे काले धुएँ से अग्नि और {मनदर्पणरूप} शीशा {गंदे कर्म के} मैल से {अच्छी तरह}
आव्रियते यथा गर्भः उल्बेनावृतः	{द्वापुर से ही} ढक जाता है, जैसे गर्भ {मूत-पलीती कर्म से बनी} थैली से ढका रहता है,
तथा तेन इदं आवृतं	वैसे उस {रजोगुण पैदाकत्री भ्रष्ट कामेन्द्रिय के दुष्कर्म} से यह {बुद्धि का ज्ञान} ढका हुआ है।

आवृतं ज्ञानं एतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।3/39

कौन्तेय ज्ञानिनः नित्यवैरिणा च दुष्पूरेण	हे {कुमुनत्ति} कुन्ती के पुत्र! ज्ञानी का नित्य शत्रु-जैसा तथा कठिनाई से पूर्ति वाली
एतेन कामरूपेण अनलेन ज्ञानमावृतं	इस •कामविकार रूपी {बढ़वानल की} आग से {चंचल मन में} ज्ञान ढका रहता है।

•{इसीलिए सच्चीगीता एडवांस ज्ञान के साप्ताहिक पाठ में नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य अनिवार्य है; अन्यथा असुर/दैत्य ही बनेंगे।}

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्य अधिष्ठानमुच्यते। एतैः विमोहयति एषः ज्ञानमावृत्य देहिनं।।3/40

इन्द्रियाणि मनः बुद्धिः अस्य	{दस} इन्द्रियाँ, {अव्यक्त} मन-बुद्धि इस {काम} का {द्वैतवादी द्वापुरयुग से ही}
अधिष्ठानं उच्यते एषः एतैः	{देह समझने कारण} आश्रयस्थान कही जाती हैं। यह काम इन {प्रबल इन्द्रियों की चंचलता} के द्वारा
ज्ञानं आवृत्य देहिनं विमोहयति	{बुद्धिगत} ज्ञान को ढककर देहधारी {देवात्माओं} को विशेष रूप से मूढ़ बनाता है।

तस्मात् त्वं इन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहि हि एनं ज्ञानविज्ञाननाशनं।।3/41

भरतर्षभ तस्मात्त्वमादौ इन्द्रियाणि नियम्य ज्ञान-	हे भरतश्रेष्ठ! अतः तू पहले {चंचल} इंद्रियों को नियंत्रित कर, ज्ञान
विज्ञाननाशनं एनं पाप्मानं हि प्रजहि	& योग के नाशक इस {चोर/डकैत-प्रधान कामविकार वाले} पापी को अवश्य मार दे।

इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतस्तु सः।। 3/42

इन्द्रियाण्याहुः पराणि मनः इन्द्रियेभ्यः	{ज्ञान&कर्म-} इन्द्रियों को कहते हैं {कि बड़ी} प्रबल हैं; {प्रधान} मन इन्द्रियों से
परं बुद्धिः मनसस्तु परा	प्रबल है; {अल्लाह अव्वल दीन त्रिनेत्री जगत्पिता शंकर की} बुद्धि {कपिध्वज} मन से भी प्रबल है;
तु यः बुद्धेः परतः सः	किंतु जो {त्रिनेत्री रूप} बुद्धि से परे है, वह {तेरे रथ में त्रिकालदर्शी सदाशिव ज्योति ही} है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदं।। 3/43

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा	ऐसे बुद्धि {रूप त्रिनेत्री शंकर/आदम} से {जो} प्रबल है, {उस आकर्षणमूर्त को परमपिता} जानकर,
आत्मानं आत्मना	अपनी {जड़ स्टार मानिंद चेतन ज्योतिबिंदु} आत्मा को अपने {भ्रूमध्य में अपने मन-बुद्धि} द्वारा {भली भाँति}
संस्तभ्य महाबाहो दुरासदं	संपूर्ण स्थिर करके, हे दीर्घबाहु! कठिनाई {पूर्वक अभ्यास & वैराग} से वश होने वाले
कामरूपं शत्रुं जहि	काम-विकार रूपी {अपने अंदर के इस कपोलकल्पित कामदेव रूपी} शत्रु को मार डाल।

अध्याय-4

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग-नामक चौथा अ0।।

[1-18 सगुण भगवान का प्रभाव और कर्मयोग का विषय]

श्रीभगवानुवाच-इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहं अव्ययं। विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत्।। 4/1

अहं इमं अव्ययं योगं	{निराकार सदाशिव ज्योति स्वरूप} मैंने यह अविनाशी {ऊर्जा रूप} योग {कल्पपूर्व भी}
विवस्वते प्रोक्तवान्	{जर्जरीभूत बुद्धि} विवस्वत/{चेतन ध्रुवतारा/हीरो} को {पु. संगम में प्रविष्ट होकर} कहा था,
विवस्वान् मनवे प्राह	विवस्वत ने {वृषभ रूप बैलबुद्धि} मनुआ {संगठित चतुर्मुखी/सूक्ष्मशरीरी ब्रह्मा} को कहा,
मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत्	मनु ने {कामेच्छाधारी पुत्र} इक्ष्वाकु को कहा। {जिसने तक्षकदंश से अकालमृत्यु पाई।}

एवं परम्पराप्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः। स कालेन इह महता योगो नष्टः परन्तप।। 4/2

एवं परम्पराप्राप्तं इमं	इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस {प्राचीन योग} को {विक्रमादित्यादि दाढ़ी मूंछ वाले विकारी}
राजर्षयः विदुः परंतप स योगः महता	राजर्षियों ने {द्वापर में} जाना। हे शत्रुतापक! वह योग लम्बे {2500 वर्षीय
कालेन इह नष्टः	विदेशी विधर्मी & हिंसक दैत्यों के द्वापरयुगी} काल से {ही} यहाँ {पापी कलियुग में पूरा} नष्ट हो गया।

{पहले संगमी शूटिंग में ब्रह्मर्षियों ने, फिर देवर्षियों ने और अंत में द्वैतवादी द्वापुर से विक्रमादित्य-जैसे राजर्षियों ने जाना है। अभी राजयोगी सदास्वाधीन राजाओं का राज्य है या सदापराधीन प्रजातंत्र राज्य है? (पराधीन भिखमंगों का)}

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तः असि मे सखा च इति रहस्यं हि एतत् उत्तमं।। 4/3

मे भक्तः च सखासि इति स एव	{कलियुगान्त में तू} मेरा भक्त और सखा है, इस कारण से {हर चतुर्युगी के अंत में} वो ही

अयं पुरातनः योगः मया अद्य ते	यह {परम प्रसिद्ध} प्राचीन {कल्पपूर्व का} योग मैंने आज {मुकर्रर रथधारी} तुझको
प्रोक्तः एतत् हि उत्तमं रहस्यं	{पु. संगम में} कहा है। यह {निश्चय} ही श्रेष्ठतम {त्रिकालदर्शिता का} रहस्य है।

अर्जुन उवाच-अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः। कथं एतत् विजानीयां त्वं आदौ प्रोक्तवान् इति।। 4/4

विवस्वतः जन्म परं भवतः	{त्रिनेत्री ज्ञानसूर्य} विवस्वत का जन्म परंपूर्वकाल {कल्प के आदि} में {और} आपका
जन्म अपरं त्वं आदौ	जन्म {कलियुगांत} बाद में {अब} है, {तो} आपने '{चतुर्युगी के} आदिकाल में हुआ',
एतत् प्रोक्तवान् इति कथं विजानीयां	ऐसे कहा- यह कैसे मानूँ? {यह तो दो विपरीत बातें हो गईं।}

श्रीभगवानुवाच-बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तानि अहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।। 4/5

अर्जुन मे च तव	हे अर्जुन! {प्रवेश योग्य दिव्यजन्मा सदाशिव ज्योतिरूप} मेरे और तेरे {5000• वर्षीय चतुर्युगी के}
बहूनि जन्मानि व्यतीतानि	असंख्य {चतुर्युगी में असंख्य} जन्म बीते हैं। {कलियुगांत में 'यदा-2 हि धर्मस्य' (4/7),
तानि सर्वाणि	& रामायण में "कल्प-2 लगि प्रभु• अवतारा"}-उन सब {कल्पों के कलियुगान्त में हुए जन्मों} को
अहं वेद	{चतुर्युगी =1कल्प की हूबहू पुनरावृत्ति से} मैं {त्रिकालज्ञ शिव अजन्मा और अगर्भा होने कारण} जानता हूँ,
परंतप	{पुरुषोत्तम संगमयुग में खास हे कामादिक} शत्रु-तापक/{कामारि महान देवात्मा! अभी अंतिम तामसी जन्म में खास
त्वं न वेत्थ	इन्द्रिय सुख भोगी आत्मा} तू नहीं जानता। {जन्मांतरण में इन्द्रिय सुख भोगते-2 पूर्वजन्म की बातों को भूल जाता है।}

•{हर 5000 वर्ष की चतुर्युगी का ड्रामा हूबहू रिपीट होता है; क्योंकि हरेक स्टार-जैसी आत्मा रूपी रिकॉर्ड में अपना-2 अनादि निश्चित जन्मों का पार्ट भरा हुआ है जो 'कल्प' नाम की चतुर्युगी में बारंबार हूबहू रिपीट होता है। चार सीन का बेहद अविनाशी ड्रामा है}

अजः अपि सन् अव्ययात्मा भूतानां ईश्वरः अपि सन्। प्रकृतिं स्वां अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया।। 4/6

अव्ययात्मा	{अजन्मा,अगर्भा-अभोक्ता-अकर्ता होने कारण देह में सदा अनासक्त,} कभी क्षरित न होने वाला {अमोघवीर्य},
अजः सन् अपि	{प्रवेश होने योग्य और गर्भ से} अजन्मा होते हुए भी {आत्मिक प्यार से भरपूर मैं निराकार बिन्दुरूप शिवज्योति
भूतानां ईश्वरः सन् अपि	देहभाव से सदाशून्य} प्राणियों का {श्रेष्ठतम और अहिंसक} शासनकर्ता होते भी,
स्वां प्रकृतिं अधिष्ठाय	अपने {अर्जुन/आदम के मुकर्रर रथ रूपी दैहिक इन्द्रियों की} प्रकृति को आधीन करके,
आत्ममायया सम्भवामि	{प्रबलतम} आत्मशक्ति से {गीता-11/54 में 'प्रवेष्टुम्' अनुसार ही} जन्म लेता हूँ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत। अभ्युत्थानं अधर्मस्य तदा आत्मानं सृजामि अहं।। 4/7

भारत यदा-2 धर्मस्य	हे भरतवंशी! जब-2 {तामसी कलियुगांत• होते-2 सनातन सद्} धर्म की {&धर्मपिता की घोर}
ग्लानिः अधर्मस्य अभ्युत्थानं	•ग्लानि {और मन-वचन-कर्म से हिंसक स्लाम-क्रिश्चियनादि} अधर्म{या विधर्म} की वृद्धि
भवति तदा हि	{या नास्तिकता} होती है, तब ही {गी.18-66 में 'सर्वधर्मान् परित्यज्य'अनुसार सब विधर्मियों-
अहं आत्मानं सृजामि	अधर्मियों का} मैं स्वयं {शिव, तामसी बने अर्जुन/आदम हीरो पात्र में प्रत्यक्षता रूपी दिव्य} जन्म लेता हूँ।

•{जैन धर्म के अंतिम आरे में और वैदिक सृष्टि प्रक्रिया के अनुसार, पापी कलियुग-अंत में ही सद् धर्म और धर्मपिता आदिदेव/आदम की सम्पूर्ण •ग्लानि होती है।} {दिखिए आदीश्वर चरित्र पृ.110 & 111 (फुटनोट), U TUBE 'AIVV' में भी दे.}

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। 4/8

साधूनां परित्राणाय दुष्कृतां	{मैं} सन्तों की रक्षा के लिए, {ज्ञान और कर्म-इन्द्रियों से हिंसारत} दुराचारियों के
विनाशाय च धर्मसंस्थापनार्थाय	विनाश के लिए और {यहाँ ही 100% वैष्णवी सत्} धर्म की संपूर्ण स्थापना अर्थ

युगे-युगे सम्भवामि	{कलियुगांत+सतयुगादि के} दो युगों के बीच {पुरुषोत्तम संगमयुग में दिव्य प्रवेशनीय} जन्म लेता हूँ।

नोटः- {गीता के इन 4-7,8 और 18-66 के अनुसार सभी धर्मों की उपस्थिति और ग्लानि भी पापी कलियुग के अंत में ही हो रही है & सारे विश्व में 9 कुरी के मानसी ब्रह्मापुत्र भी प्रैक्टिकल AIVV में बन रहे हैं। जैसे नं. वार युगानुकूल सभी धर्मपिताओं ने सुनाया, ऐसे ही शिवबाबा को मौखिक गीता-ज्ञान श्रावणार्थ 100 वर्ष तो पंचानन ब्रह्मा द्वारा चाहिए ना! ये बेहद का रूहानी बाप तो सद्धर्म के साथ राजधानी भी बनाते हैं।}

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनः जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।। 4/9

अर्जुन एवं मे दिव्यं	हे अर्जुन! इस प्रकार मेरे दिव्य {प्रवेशनीय• मानवीय रथ/कपिध्वज अर्जुन को, और इस मुकर्रर रथ के}
जन्म च कर्म यः	जन्म और कर्मों को, जो {कलियुगी तामसी बुद्धि अर्जुन-रथ वाले, गीतावर्णित 13-5 के इन्द्रियादि 23}
तत्त्वतः वेत्ति सः देहं	{जड़जड़ीभूत} तत्त्वों सहित {गीताज्ञान के सार 13-2,3 के क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ को} जानता है, वह देह {रूप देहभान} को
त्यक्त्वा मां एति	त्यागकर मुझ {सद्गतिदाता सदाशिव ज्योति सुप्रीम बाप, टीचर, सद्गुरु} को पाता है {और}
पुनः जन्म न एति	फिर से {इस नारकीय दुःखधाम में} जन्म नहीं लेता; {विष्णुलोकीय स्वर्गीय संसार में ही जाता है।}

•{परकाय प्रवेश के प्रमाणों के लिए 'आदीश्वर रहस्य' में भी देखिए 'शिव का दिव्यजन्म', वृद्ध ब्रह्मा, 'सिंधुरथ', 'परकाया-प्रवेश'आदि। प्रकरण-5, पृष्ठ 131 से 152} {U TUBE 'ADHYATMIK VIDYALAYA'}।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मां उपाश्रिताः। बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावं आगताः।। 4/10

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मां	{पहले भी हर कल्प में} राग-भय-क्रोधरहित मेरे {'अव्यक्त मूर्त' 9-4} में ध्यानमग्न {एवं} मेरे
उपाश्रिताः बहवो ज्ञानतपसा	पूरे ही आश्रित बहुत {लाखों} लोगों ने ज्ञान-योग {रूपी} तपस्या से {मेरी आत्मस्मृति द्वारा}
पूता मद्भावं आगताः	पवित्र बन मेरे {विष्णुलोकीय राजाई} भाव को {नं. वार पुरुषार्थ अनुसार} पाया है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहं। मम वर्त्म अनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। 4/11

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव	जो जैसे {संबंधों से} मुझको समर्पित होते हैं, उनको उसी {नज़दीकी सम्बन्ध से}
अहं भजामि पार्थ मनुष्याः	मैं अपनाता हूँ। हे पृथ्वीपति! {अच्छे} लोग {मेरी डाली गई श्रेष्ठतम परम्परानुसार}
सर्वशः मम वर्त्मानुवर्तन्ते	सब रीति मेरे मार्ग का अनुकरण करते हैं। {गाते भी हैं 'महाजनेन येन गतः स पन्थाः।'}

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः। क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिः भवति कर्मजा।। 4/12

इह कर्मणां सिद्धिं कांक्षन्तः	इस {असम्भव को संभवकर्ता पु.संगमयुगी} लोक में कर्मों की सफलता के इच्छुक
देवताः यजन्त हि मानुषे लोके	देव-यज्ञसेवा करते हैं; क्योंकि {यहीं साक्षात् मननशील मनु के पुत्ररूप} मनुष्यलोक में
कर्मजा सिद्धिः क्षिप्रं भवति	कर्म से उत्पन्न सफलता शीघ्र होती है, {देवलोक या नरकलोक/पृथ्वीलोक में नहीं।}

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारं अपि मां विद्धि अकर्तारं अव्ययं।। 4/13

मया गुणकर्मविभागशः	{कल्प/चतुर्युगी पहले भी हर व्यक्ति के भावानुकूल} मैंने {पु.संगम में हुए} गुण-कर्म के विभागानुसार
चातुर्वर्ण्यं सृष्टं तस्य	{नं.वार} चार वर्णों को रचा था। उसका {मेरी श्रीमत से मेरे समान बने ज्योतिर्लिंग-रूप}
कर्तारं अपि अकर्तारं	{अव्यक्तमूर्ति के} कर्ता होने पर भी {सदा शिवज्योति} अकर्ता, {अभोक्ता,अगर्भजन्मा,अनासक्त}
मां अव्ययं विद्धि	{एवं निर्विकारी} मुझ अक्षर {अमोघवीर्य} को {•मूर्तिमान भोगी आत्मा महादेव शंकर} समझ लेते हैं।

•{निराकार शिवज्योति सदा परमधामवासी है; आदिदेव/आदम/एडम/काशी-कैलाशीवासी साकारी दुनियाँ का वासी है।}

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। इति मां यः अभिजानाति कर्मभिः न स बध्यते।। 4/14

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले	न मुझको {अच्छे-बुरे} कर्मों का बंधन है, न मुझे कर्मों के फल में {कोई प्रकार की}

स्पृहा इति यः मां अभिजानाति	इच्छा है। ऐसे जो {भली-भाँति मंथन करके} मुझ {सदाकाल निर्लिप्त रूप} को जान लेता है,
स कर्मभिः न बध्यते	वह {स्वर्ग + वैकुण्ठ के 21 जन्म=सत-त्रेतायुगी/आधाकल्प} कर्मों में नहीं बँधता। {वहाँ सुखी ही रहता है।}

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैः अपि मुमुक्षुभिः। कुरु कर्म एव तस्मात् त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतं।। 4/15

एवं ज्ञात्वा पूर्वैः मुमुक्षुभिरपि	ऐसा जानकर पूर्व {कल्प-कल्पान्तर} के {पु. संगमयुगी} मुक्ति-अभिलाषियों ने भी {हूबहू
कर्म कृतं तस्मात्त्वं	ऐसा ही} कर्म किया था, इसलिए {हर कल्प के ज्यों के त्यों/हूबहू पुनरावृत्ति नियम से} तू
पूर्वैः पूर्वतरं कृतं कर्मैव कुरु	पूर्व से पूर्वतर {हर चतुर्युगी में} किए हुए कर्मों को {मुकर्रर रथ में मुझे पहचानकर} ही कर।

किं कर्म किं अकर्म इति कवयः अपि अत्र मोहिताः। तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्।। 4/16

किं कर्म किं अकर्म इति	क्या कर्म है, {क्या विकर्म है और} क्या अकर्म है- ऐसे {कर्मथ्योरी के बारे में 2500 के इतिहास में}
अत्र कवयः अपि मोहिताः	यहाँ {बड़े-2 न्यायाधीश ऋषि-मुनि आदि} विद्वान लोग भी चकरा गए हैं। {ऐसे पत्थरबुद्धि बन पड़े}
ते तत् कर्म प्रवक्ष्यामि यत्	तुझे वह कर्म- {अकर्म-विकर्म का स्वरूप} बताता हूँ, जिसे {सच्ची गीता संविधानानुसार}
ज्ञात्वा अशुभात् मोक्ष्यसे	जानकर {2500 वर्षीय सत-त्रेता के आधाकल्प के लिए} अशुभ {कर्मों} से मुक्त हो जाएगा।

कर्मणो हि अपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।। 4/17

कर्मणो बोद्धव्यं च विकर्मणः अपि	कर्म को जानना चाहिए और विपरीत कर्म {अर्थात् श्रीमत-विरुद्ध विकर्म को} भी
बोद्धव्यं च अकर्मणः बोद्धव्यं	जानना चाहिए और {आत्मबिंदु की स्मृति में रह} अकर्म {भी} जानने योग्य है;
हि कर्मणः गतिः गहना	क्योंकि कर्म-गति {अति} गहन है। {जो केवल मैं सदाशिव ज्योति पु. संगमयुग में ही आकर बताता हूँ।}

कर्मणि अकर्म यः पश्येत् अकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।। 4/18

यः कर्मणि अकर्म	जो {व्यक्ति आत्मस्मृति से} कर्म में •अकर्म को {निस्संकल्प यानी बिन्दुरूप बनकर निराकारी होते हुए}
पश्येत् च यः अकर्मणि	देखता है और जो कर्मत्याग में {भी सदाकाल संकल्प-शून्य रहते हुए 'न किंचिदपि चिंतयेत'(गी.6-25) ऐसी}
कर्म स मनुष्येषु बुद्धिमान्	{मनसा से} कर्म देखता है, वह मनुष्यों में {अवश्य ही} समझदार {प्रजापिता ब्रह्मापुत्र} है।
स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्	{और} वह योगी सम्पूर्ण {'सर्वसंकल्पसंन्यासी' गीता, 6-4 जैसा} कर्म करने वाला है।

•बाप (तुम बेहद के संन्यासियों को) कर्म-विकर्म-अकर्म की गति समझाते हैं। (मुरली ता.2.7.68 पृ.2 मध्य)

[19-23 योगी महात्मा पुरुषों के आचरण और उनकी महिमा]

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तं आहुः पण्डितं बुधाः।। 4/19

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्प-	जिस {व्यक्ति} के {लौकिक-अलौकिक} सब कार्य {हिंसायुक्त} कामविकार के संकल्प
वर्जिताः तं बुधाः ज्ञानाग्नि-	से रहित हैं, उसको बुद्धिमान् लोग ज्ञानाग्नि से, {द्वैतवादी द्वापुर से हुए अनेक (63) जन्मों के अपने}
दग्धकर्माणं पंडितं आहुः	{पाप-} कर्म जलाने वाला {पु. संगमयुगी} पंडित कहते हैं। {बाकी सभी साधारण हो गए}

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मणि अभिप्रवृत्तः अपि नैव किञ्चित् करोति सः।। 4/20

निराश्रयः कर्मफलासंगं त्यक्त्वा	{शिवबाबा सिवा किसी के} आश्रयहीन, कर्मफल की आसक्ति त्यागकर {'नैष्कर्म्यसिद्धिम्' (गी.18-49) से}
नित्यतृप्तः सः कर्मणि अभिप्रवृत्तः	सदा संतुष्ट हुआ वह {सहज योगी सांसारिक} कर्म में अच्छी तरह लगा रहने पर
अपि किंचित् एव न करोति	भी कुछ भी नहीं करता। {सदा शिवज्योति समान जैसा निराकारी,अभोक्ता,अकर्ता रहता है।}

निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः। शारीरं केवलं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषं।। 4/21

निराशीः यतचित्तात्मा	{सांसारिक} आशारहित, अपने {मन-बुद्धि रूप} चित्त का वशकर्ता, {एकाग्र भावेन तन-धन-धाम से}
त्यक्तसर्वपरिग्रहः	सब प्रकार के स्वामित्व का त्यागी, {मुझ अभोक्ता शिवज्योति समान सदा निराकारी आत्मलोकवासी बन}
केवलं शारीरं कर्म	{सांसारिक इच्छामात्रमविद्या होकर} केवल {विष्णु लोकीय पुरुषार्थ निर्वहणार्थ अनिवार्य} शारीरिक कर्म
कुर्वन् किल्बिषं न आप्नोति	करता हुआ पाप को नहीं पाता; {पतित देह & दुनियाँ में भी सदा निष्पाप बना रहता है।}

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः। समः सिद्धौ असिद्धौ च कृत्वा अपि न निबध्यते।।4/22

यदृच्छालाभसंतुष्टः द्वन्द्वातीतः	संयोगवश {जो मिले, न मिले,ऐसी} प्राप्ति से संतुष्ट रहने वाला, {सुख-दुःखादि } द्वन्द्वों से परे,
विमत्सरः च सिद्धौ असिद्धौ समः	ईर्ष्याहीन और {पूर्वकृत अपने ही किए कर्मों की} सफलता-असफलता में समानता
कृत्वा अपि न निबध्यते	करके भी {आत्मस्थ हुआ, शिवबाबा की याद में रहने से कर्म-} बँधन में नहीं पड़ता।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञाय आचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।4/23

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञान-	{दैहिक} आसक्ति-रहित, {एक सिवा सभी से} बन्धनमुक्त, {शिव की सच्चीगीता एडवांस} ज्ञान में
अवस्थितचेतसः यज्ञाय	{अडोल} दृढ़ बुद्धि वाले {और तन-मन-धन-समय-संबंध की शक्तियों द्वारा} यज्ञ-सेवाभाव से
आचरतः समग्रं कर्म प्रविलीयते	{अटूट} चलने वाले के सारे {भूत-वर्तमान के अच्छे-बुरे} कर्म पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।

[24-32 फलसहित पृथक्-पृथक् यज्ञों का कथन]

ब्रह्म अर्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं। ब्रह्म एव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।। 4/24

अर्पणं ब्रह्म ब्रह्मणा	{यज्ञसेवा में तन-धनादि सब-कुछ} अर्पित हुआ ब्रह्म है। {चतुर्मुखी} ब्रह्मा द्वारा {पंचम ऊर्ध्वमुखी}
ब्रह्माग्नौ हुतं हविः	{पंचानन} परंब्रह्म• की योगाग्नि {वा ज्ञानाग्नि} में अर्पित हवि, {जो भाव से अर्पित हुई वस्तुएँ हैं,}
ब्रह्म ब्रह्मकर्मसमाधिना	{परं} ब्रह्म हैं। ब्रह्म {तत्वाग्नि} में {मनसा, वाचा या} कर्मणा {रुद्रज्ञान की यज्ञसेवा} से समाधिस्थ,

तेन ब्रह्म एव गन्तव्यं	उस {महत ब्रह्म-ज्ञान} से {भरपूर, इसी सृष्टि में सम्पन्न गीता-8/20 का} ब्रह्मलोक ही गंतव्य है।

•{मूर्तिमान् रूहानी शंकर के बीजरूप पंचतत्वों की देह का मुखमंडलीय अणु-2, योगबल की अखूट ऊर्जा से सोमनाथ मंदिर का लाल-2 लिंग-रूप आग का गोला जैसा बन जाता है, जिस 'यहोवा' को यहूदी लोग भी पूजते थे। बीच में हीरा, सुप्रीम बाप सदाशिव-ज्योति के योगबल से समान बनी हीरो समान शास्त्र-वर्णित श्वेत अर्जुन की आत्मा जगत्पिता/आदम की यादगार है। इन्हें ही शास्त्रों में 'हिरण्यगर्भ' कहा है।}

दैवं एव अपरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नौ अपरे यज्ञं यज्ञेन एव उपजुह्वति।।4/25

अपरे योगिनः दैवं यज्ञं एव	दूसरे योगीजन {चौमुखी ब्रह्मा के कुमारकादि भोगी} देवों की यज्ञ-सेवा से ही {पृथक-2 रीति}
पर्युपासते अपरे यज्ञेन यज्ञं एव	उपासना करते हैं, {जबकि} अन्य {ज्ञान-} यज्ञसेवा से {अश्वमेध रूद्र} यज्ञ को ही
ब्रह्माग्नौ उपजुह्वति	परंब्रह्म-योगाग्नि में होम करते हैं। {फिर भी एक अव्यक्तमूर्ति की स्मृतियुक्त उपासना ही सहज है।}

श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि अन्ये संयमाग्निषु जुह्वति। शब्दादीन् विषयान् अन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।4/26

अन्ये श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि संयमाग्निषु	अन्य {ब्राह्मण} कर्ण-{चक्षु} आदि {एकादश} इन्द्रियों की संयम रूपी अग्नि में
जुह्वति अन्ये शब्दादीन् विषयान्	आहुति देते हैं, {जबकि} अन्य {गृहस्थी} शब्द-{स्पर्श} आदि विषय-भोगों को
इन्द्रियाग्निषु जुह्वति	{कर्ण-त्वचादि पाँच ज्ञान} इन्द्रियों की आग में {साक्षात् ईश्वरीय याद द्वारा ही} आहुति देते हैं।

सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि च अपरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। 4/27

अपरे सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि च प्राणकर्माणि	दूसरे सभी इन्द्रिय-कर्मों & {अपान-उदान आदि पञ्च} प्राण-कर्मों को
ज्ञानदीपिते आत्मसंयम योगाग्नौ जुह्वति	ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त आत्म-संयम की योगाग्नि में {जीवनपर्यंत} आहुति देते हैं।

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञाः योगयज्ञाः तथा अपरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।।4/28

द्रव्ययज्ञाः च तपोयज्ञाः	{इसी प्रकार विनाशी} पदार्थों की सेवाएँ और {भ्रूमध्य में ज्योतिबिंदु आत्मा की स्मृति का} तपयज्ञ, {या}
योगयज्ञाः तथा अपरे स्वाध्याय	{अनेकशः} योग यज्ञों तथा दूसरे आत्मा के {अनेक जन्मों के काल्पनिक} अध्ययन के
ज्ञानयज्ञाः यतयः संशितव्रताः	ज्ञानयज्ञ-सेवी; {व्यास मुनि जैसे नं. वार मननशील तपस्वी} योगीजन तीक्ष्णव्रत वाले हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे अपानं तथा अपरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।। 4/29

अपरे अपाने प्राणं तथा	अन्य {भक्त योगी प्राणवायु को परमात्मस्मृति समझ जड़त्वमयी} अपान वायु में प्राणवायु की तथा
प्राणे• अपानं जुह्वति	{जड़} प्राणवायु में अपान वायु की {क्षुद्र योगाग्नि-कुंड में} आहुति देते हैं, {जबकि अन्य भक्तयोगी}
प्राणापानगती रुद्ध्वा	{इन्हीं} प्राण•-अपान दोनों की गति को रोककर {अर्थात् अल्पकालीन निल संकल्प होकर}
प्राणायामपरायणाः	{निल बुद्धि रूपी कुम्भ के दिखावटी कुम्भक रूप} प्राणायाम के {अल्प} आश्रय में रहते हैं।

•यथार्थ में तो यहाँ प्राणवायु रूपी शुद्ध संकल्प और अपानवायु रूपी अशुद्ध संकल्पों की बात है। अर्थात् दैहिक वायु तत्व को रोकने-छोड़ने के शारीरिक हठयोग की बात नहीं है। ऐसे प्राणायाम & दैहिक आसन तो देहभान ही बढ़ाएँगे।

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति। सर्वे अपि एते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।। 4/30

अपरे नियताहाराः प्राणान्	अन्य {न खाने-पीने आदि के उपवासों में} नियमित आहार वाले {हठयोग पूर्वक} प्राणों को
प्राणेषु जुह्वति यज्ञक्षपित-	{मनमत या मानवमत पर} प्राणवायु में हवन करते हैं। {स्वाहा-2 वाले तन-} तापितयज्ञ से क्षीण
कल्मषाः सर्वेऽप्येते यज्ञविदो	हुए पाप वाले ← ये सब {भिन्न-2 प्रकार के हठयोगी यज्ञकर्ता} भी {नं.वार} यज्ञ के ज्ञाता हैं।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनं। न अयं लोकः अस्ति अयज्ञस्य कुतः अन्यः कुरुसत्तम।।4/31

यज्ञशिष्टामृतभुजो सनातनं	{ईश्वरीय सेवा में आहुति के बाद} यज्ञ से बचे अमृततुल्य {भोग} को भोगने वाले अनादि
ब्रह्म यान्ति कुरुसत्तम	{पंचमुखी परम} ब्रह्म को जाते हैं; {भ्रष्टकर्मी-कर्मघमंडी} कुरुओं में हे {धर्मानुकूल} उत्तम अर्जुन!
अयज्ञस्य अयं लोकः	यज्ञसेवाविहीन {स्वार्थी नास्तिकों} का {सम्पूर्ण विनाश चिन्तन वाला} यह संसार {भी सुखदायी}
न अस्ति अन्यः कुतः	नहीं है, {फिर} दूसरा {अतीन्द्रिय सुख का स्वर्गीय वैकुण्ठ सुखदाई} कैसे होगा?

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे। कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान् एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।।4/32

एवं ब्रह्मणो मुखे बहुविधा यज्ञा	इस प्रकार {संगठित चतुर्मुखी} ब्रह्मामुख से भाँति-2 के {मेले-सम्मेलनादि} यज्ञों का
वितता तान्सर्वान्कर्मजान्विद्धि	विस्तार हुआ है। उन सब {यज्ञों} को {कुरुवंशियों की कर्मेंद्रियों के} कर्म {घमण्ड} से उत्पन्न जान।
एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे	ऐसा जानकर {तू कुरुवंशियों की भ्रष्ट कर्मेन्द्रियों से (सीखे) हिंसक कर्मों से भी} मुक्त हो जाएगा।

[33-42 ज्ञान की महिमा]

श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप। सर्वं कर्म अखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। 4/33

परंतप द्रव्यमयात् यज्ञात्	हे शत्रुपीड़क! {नाशवान} भौतिक पदार्थों से किए गए {भौतिक अग्नि द्वारा चालित} यज्ञ से
ज्ञानयज्ञः श्रेयान्	{अश्वमेध• रुद्र} ज्ञान-यज्ञ अधिक अच्छा है, {जो शतवर्षीय ज्ञान-योगाग्नि से निरंतर चलता है}
पार्थ अखिलं सर्वं	हे पृथ्वीश्वर! अखिल {विश्व-धर्मों के} सारे {वाममर्गी/भक्तिमार्गीय- अंधश्रद्धायुक्त धर्मों से उत्पन्न}
कर्म ज्ञाने परिसमाप्यते	कर्मकाण्ड {श्रद्धाभावनायुक्त एक लिंग भगवान के रुद्र} ज्ञान-{यज्ञ} में समाप्त हो जाते हैं।

•{①'राजस्व:'-स्व अर्थात् आत्मा का सच्चा स्वराज्य प्रदातायज्ञ। ②'अश्वमेध:'-मनरूपी अश्व मारा जाता है। ③'अविनाशी:'-भौतिक यज्ञ तो भौतिक पदार्थों से नाशवान हैं; परंतु इसमें मन-बुद्धि वाली अविनाशी आत्मा की ही प्रधानता है।④'रुद्र-ज्ञान-यज्ञ'=साक्षात् महारुद्ररूप ज्योतिर्लिंग की ज्ञान+योगाग्नि से कलियुगान्त में कल्पान्तकारी महाविनाश की अन्तिम आहुति डाली जाती है। जिसकी यादगार अभी की है- शंकर महादेव की अंतिम आहुति।}

तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।। 4/34

प्रणिपातेन सेवया परिप्रश्नेन	परमादरपूर्वक, {ज्ञान की} सेवा द्वारा, {व्यक्तिगत साप्ताहिक •कोर्स में} प्रश्नोत्तरपूर्वक
तत् विद्धि तत्त्वदर्शिनः	उस {रुद्रज्ञानयज्ञ} को {तू} जान ले। {एडवांस सच्चीगीता के} तत्त्वदर्शी {श्रेष्ठ ब्रह्मावत्स}
ज्ञानिनः ते ज्ञानं उपदेक्ष्यन्ति	/ज्ञानीजन• तुझे {साक्षात् ब्रह्मामुखनिसृत वेदवाक्यों के कपिलसांख्य}-ज्ञान का उपदेश करेंगे।

•आध्यात्मिक विश्वविद्यालय, कम्पिला-फर्रुखाबाद (उ.प्र.) भारत; Email- a11spiritual1@gmail.com; website-www.pbks.info/www.adhyatmik-vidyalaya.com; Utube-AIVV/ADHYATMIK VIDYALAYA

यत् ज्ञात्वा न पुनः मोहं एवं यास्यसि पांडव। येन भूतानि अशेषेण द्रक्ष्यसि आत्मनि अथो मयि।। 4/35

पाण्डव यत् ज्ञात्वा पुनः	हे पण्डा रूप पाण्डु के पुत्र! जिस {पांडवपति/जगत्पिता} को जानकर फिर से {इस संसार में}
एवं मोहं न यास्यसि अथो	ऐसे {अल्पकालीन संबंधियों के दैहिक} मोह को {तू 21 जन्म में} नहीं पाएगा, फिर तो
येन आत्मनि अशेषेण भूतानि	जिस {जगत्पिता} की {देहरूप लिंगसहित हीरा-जैसी} आत्मा में समस्त प्राणियों को
मयि द्रक्ष्यसि	{बुद्धि नेत्र से} मुझ {बीजरूप अव्यक्तलिंग} में {समाए स्वर्गीय+नारकीय सृष्टिवृक्ष को साक्षात् & स्पष्ट} देखेगा।

अपि चेत् असि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेन एव वृजिनं सन्तरिष्यसि।।4/36

चेत् सर्वेभ्यः पापेभ्यः अपि	चाहे सब पापियों से भी {महाधोखेबाज & महापापी अजामिल-जैसा नीच,क्षुद्र माना गया}

पापकृत्तमः असि	अधिक पापी {क्यों न} हो, {तो भी दया के भंडार शिवबाबा पुत्र महादेव/अर्जुन/आदम/यहोवा/अग्निदेव}
ज्ञानप्लवेन एव सर्वं	{स्वरूप} ज्ञानी {'शंकर-•चाप} जहाज' से निस्सन्देह सारे ही {63 जन्मों से आधाकल्प के द्वापुर-कलियुगी}
वृजिनं संतरिष्यसि	{नारकीय} पाप-समुद्र को {तू देहरूप जहाज में बैठा ज्ञान-योग बल से} तैरकर पूरा पार कर जाएगा।

•{'शंकरचाप जहाज, जेहि चढ़ि उतरहिं पार नर। बूढ़ि सकल संसार'} {'नानक नाम जहाज'} {'चन्द्रकांत वेदांत जहाज'} जगत्पिता की बच्चों जैसी लक्कड़बुद्धि लचीली देह को ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में जहाज/धनुष/चाप/नवैया बताया है।

यथा एधांसि समिद्धः अग्निः भस्मसात् कुरुते अर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।4/37

अर्जुन समिद्धोऽग्निः यथैधांसि	हे अर्जुन! {द्वैतवादी युग से कामक्रोधादि विकारों की होली में} जलाई हुई अग्नि जिस रीति ईंधन को
भस्मसात् कुरुते तथा	जलाकर राख कर देती है, वैसे ही {अखूट ज्ञान-योगाग्नि के भंडारी सदाशिव ज्योति+यहोवा अग्निदेव}
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते	{अर्थात् शिव+साकार बाबा की} ज्ञानाग्नि सब {प्रकार के पाप} कर्मों को भस्म कर देती है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं इह विद्यते। तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति।। 4/38

इह ज्ञानेन सदृशं पवित्रं	इस {संसार} में {सच्चीगीता एडवांस} ज्ञान समान {परमोत्कृष्ट} पवित्र {तो कोई धर्मशास्त्रों में}
हि न विद्यते योगसंसिद्धः	कुछ भी नहीं है। {ईश्वरीय} याद से सम्पूर्ण सिद्ध रूप {हीरो पार्टधारी विश्वपिता/जगन्नाथ/विश्वनाथ/}
कालेन आत्मनि	{यहोवा/अग्निदेव/जगत्पिता आदम या अर्जुन के} पुरुषार्थ पूर्ण होते ही समय आने पर अपनी आत्मा में
स्वयं तत् विन्दति	•स्वयं उस संज्ञान {सांख्ययोग} को पाता है {जिससे 'भूतल देखहिं शैलवन भूतलभूरिनिधान।'} (रामायण)

•बाप को (निरंतर अव्यभिचारी रीति) याद करने से (सं.) ज्ञान आपे ही इमर्ज हो जाता है। (अ.वा.24.1.70 पृ.3 आदि)

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिं अचिरेण अधिगच्छति।।4/39

श्रद्धावान् तत्परः	{पूरा} श्रद्धावान् ,{ब्रह्मचर्य सहित ज्ञान-योग से इन्द्रियों को साधने में} सदा प्रयत्नशील {और आत्मस्मृति से}

संयतेन्द्रियः ज्ञानं लभते	संपूर्ण इन्द्रियदमनशील {ही} ज्ञान लेता है। {एकाग्र मनसा द्वारा दृढ़तापूर्वक इन्द्रियवशकर्ता}
ज्ञानं लब्ध्वा अचिरेण	ज्ञान पाकर शीघ्र ही {असम्भव को संभव करने वाले पुरुषोत्तम संगम के इसी संसार में रहते हुए}
परां शांतिं अधिगच्छति	{इसी जन्म में} परमधाम की शांति पाता है। {यानी परमब्रह्मलोक/परमाकाश यहीं उतार लेता है।}

अज्ञश्च अश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति। न अयं लोकः अस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।4/40

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा	अज्ञानी & अश्रद्धालु तथा संशयालु {सहज राजयोग से जन्म-जन्मान्तर की राजाई या देवपद प्राप्ति से}
विनश्यति संशयात्मनः न अयं	नष्ट हो जाता है। संशयालु व्यक्ति को न यह {नारकीय, क्षणिक कागविष्ठा जैसे सुख का}
लोकः न परः अस्ति न सुखं	संसार है, न पार-{लोकीय स्वर्ग और} न {वैकुण्ठ का विष्णुलोकीय अतीन्द्रिय} सुख है।

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयं। आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।।4/41

धनंजय आत्मवन्तं योगसंन्यस्तकर्माणं	हे ज्ञानजयी! {स्टार रुप} आत्मा में स्थिर याद से संपूर्ण कर्मबंधन का त्यागी,
ज्ञानसंछिन्नसंशयं कर्माणि न निबध्नन्ति	{एडवांस सच्ची गीता} ज्ञान से सारे संशयों के छेदक को कर्म {बिल्कुल} नहीं बाँधते;

तस्मात् अज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिना आत्मनः। छित्त्वा एनं संशयं योगं आतिष्ठ उत्तिष्ठ भारत।। 4/42

तस्मात् भारत अज्ञानसम्भूतं एनं हृत्स्थं संशयं	इसलिए हे भारत! अज्ञान से उत्पन्न हुए इस हृदय में स्थित संशय को
आत्मनः ज्ञानासिना छित्त्वा योगमातिष्ठोत्तिष्ठ	आत्मा की ज्ञानकटारी से काटकर योग में जुट जा {और} उठ खड़ा हो।

(88)

अध्याय-5

कर्मसंन्यासयोग-नामक पाँचवा अ0।।

[1-6 सांख्ययोग और कर्मयोग का निर्णय]

अर्जुन उवाच-सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनः योगं च शंससि। यत् श्रेयः एतयोः एकं तत् मे ब्रूहि सुनिश्चितं।। 5/1

कृष्ण कर्मणां संन्यासं च पुनः	हे आकर्षणमूर्त! कर्मों के {समुचित या} सम्पूर्ण त्याग {रूप} संन्यास की और फिर {कभी}
योगं शंससि एतयोः यत् श्रेयः	{कर्म करते हुए} कर्मयोग की प्रशंसा करते हो। इन दोनों में से जो {अधिक} श्रेष्ठ हो,
तत् एकं सुनिश्चितं मे ब्रूहि	उस एक को भली-भाँति निश्चित कर मुझे बताइए, {जिससे सुमार्गगामी बनूँ।}

श्रीभगवानुवाच-सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरौ उभौ। तयोः तु कर्मसन्न्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।। 5/2

संन्यासः च कर्मयोगः उभौ	समुचित कर्मत्याग और कर्म के साथ योग, {ये साधु-संन्यासी या गृहस्थी} दोनों प्रति
निःश्रेयसकरौ तु तयोः कर्म-	परमकल्याणकारी हैं; किन्तु उन दोनों में {सहज-2 होने की दृष्टि से} कर्म {के समुचित}
संन्यासात् कर्मयोगः विशिष्यते	त्याग से कर्म करते-2 याद {धंधाधोरी वाले गृहस्थियों के लिए} विशेष अच्छी है।

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति। निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते।।5/3

महाबाहो यः न द्वेष्टि	हे महान {अष्टदेवों की सहयोगी रूप} भुजाओं वाले! जो न {प्राणीमात्र से} द्वेष करता है,
न कांक्षति स नित्यसंन्यासी	न {कोई सांसारिक} इच्छा करता है, वह {गी. 6-4 में कर्मों का} सदा त्यागी संन्यासयोगी
ज्ञेयः हि निर्द्वन्द्वः बन्धात्सुखं प्रमुच्यते	जाना जाता है; क्योंकि द्वन्द्वरहित कर्मबंधन से सुखपूर्वक पूरा ही छूट जाता है।

साङ्ख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। एकं अपि आस्थितः सम्यक् उभयोः विन्दते फलं।।5/4

सांख्ययोगौ पृथक् बालाः	•सांख्य {सम्पूर्ण व्याख्या सहित केवल ज्ञान} और कर्मयोग- ये दोनों अलग हैं, {ऐसे} बालबुद्धि
प्रवदन्ति पण्डिताः न एकं अपि	कहते हैं; विद्वान लोग नहीं {कहते। सांख्य & कर्म करते हुए भी योग, दोनों से} एक में भी
सम्यक् आस्थितः उभयोः फलं विन्दते	भली प्रकार स्थित हुआ {कपिलमुनि समान सांख्य•&योग} दोनों का फल पाता है।

•कपलरूप जोड़ी कपिल द्वारा बसाई प्राचीनतम कांपिल्यनगर वासी कपिलमुनि का मनन-चिन्तन ही 'सांख्य' है।

यत् साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तत् योगैः अपि गम्यते। एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।। 5/5

सांख्यैः यत् स्थानं प्राप्यते च तत्	सांख्य द्वारा जो पद मिलता है और वही {ल.ना. पद, कर्म करते एक बाबा की याद में}
योगैः अपि गम्यते सांख्यं च	कर्म {सहित} योग द्वारा भी {परमश्रेष्ठ विष्णु का पद} प्राप्त होता है। {अतः} सांख्य और
योगं यः एकं पश्यति स पश्यति	कर्मयोग को जो {गीता संविधान-अनुसार} एक देखता है, वह {सत्य} देखता है।

सन्न्यासः तु महाबाहो दुःखं आप्तुं अयोगतः। योगयुक्तो मुनिः ब्रह्म नचिरेण अधिगच्छति।। 5/6

महाबाहो सन्न्यासः तु अयोगतः	हे अष्टमूर्ति वाले महाबाहु! संन्यास तो कर्मयोग {में गृहस्थ के अनुभव} बिना
दुःखं आप्तुं योगयुक्तो मुनिः	दुःखपूर्वक प्राप्त होता है। योगयुक्त मननशील व्यक्ति {सांख्ययोग प्रणेता कपिलमुनि की भाँति}
ब्रह्म नचिरेण अधिगच्छति	परंब्रह्म को शीघ्र ही पाता है। {वही राजा जन+क ने तो एक सेकिंड में जीवन्मुक्ति पाई थी।}

[7-12 सांख्ययोगी और कर्मयोगी के लक्षण और उनकी महिमा]

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः। सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन् अपि न लिप्यते।। 5/7

योगयुक्तः विशुद्धात्मा विजितात्मा	योगयुक्त {चित्त से} विशेष शुद्ध, {चंचल मन पर बुद्धि द्वारा} विजयी आत्मा,
जितेन्द्रियः सर्वभूतात्मभूतात्मा	जितेन्द्रिय {और हिंसक-अहिंसक/अच्छे-बुरे} सब प्राणियों में आत्मभाव वाला {व्यक्ति}

कुर्वन् अपि न लिप्यते	{कोई कर्म} करता हुआ भी {उस अच्छे-बुरे कर्म में} न आसक्त होता {न बंधनग्रस्त}।

न एव किञ्चित् करोमि इति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्। पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्।। 5/8

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।।5/9

युक्तः तत्त्ववित् इन्द्रियाणि	{शिवबाबा की} यादमग्न, {तेईसों} तत्त्वों का जानकार, {प्रकृतिकृत कर्म & कर्णादि ज्ञान} -इन्द्रियाँ,
इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्	इन्द्रियों के {स्वाभाविक} भोगों में लगी हुई हैं- ऐसा {निश्चय} धारण करते हुए,
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन्	देखते, सुनते, छूते, सूँघते, खाते, जाते,
स्वपन् श्वसन् प्रलपन् विसृजन्	सोते, श्वाँस लेते, बोलते, {मल-मूत्र} त्यागते,
गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि	{कुछ} लेते हुए, आँखें खोलते {और} बन्द करते भी,
किंचित् एव न करोमि इति मन्येत	कुछ भी नहीं करता, ऐसे मानता है। {ऐसा आत्मज्योति में स्थिर योगी अकर्ता है।}

ब्रह्मणि आधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रं इव अम्भसा।। 5/10

यः ब्रह्मण्याधाय संगं त्यक्त्वा कर्माणि करोति	जो {एकमात्र} परंब्रह्म-आश्रयी आसक्ति त्यागकर कर्म करता है,
स अम्भसा पद्मपत्रं इव पापेन लिप्यते न	वह {मलिन} पानी से कमल-पत्र की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैः इन्द्रियैः अपि। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वा आत्मशुद्धये।। 5/11

योगिनः कायेन मनसा बुद्ध्या	योगीजन तन-मन {धन} से, बुद्धि द्वारा {और प्रकृति द्वारा समय-सम्बन्ध-संपर्क से}
केवलैः इन्द्रियैरपि आत्मशुद्धये	{प्राप्त} केवल इन्द्रियों द्वारा भी, आत्मा की {कामक्रोधादिक पञ्चविकारों से} शुद्धि हेतु
सङ्गं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति	{मनसा} आसक्ति को त्यागकर {अणुरूप आत्मज्योतिबिन्दु की स्मृति में} कर्म करते हैं।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिं आप्नोति नैष्ठिकीं। अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।। 5/12

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा नैष्ठिकीं	योगी {पु. संगमी शूटिंग में अनादिनिश्चित} कर्मों के फल को त्यागकर निश्चल {हुआ}
शांतिम आप्नोति अयुक्तः काम-	शांति को पाता है; {परंतु} अयोगी=भोगी {आसक्ति भरी सदा अपूर्तनीय} कामनाओं के
कारेण फले सक्तः निबध्यते	कारण फल में आसक्त हो {भली-भाँति दैहिक इन्द्रियों के बंधन में} बँध जाता है।

[13-26 ज्ञानयोग का विषय]

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्य आस्ते सुखं वशी। नवद्वारे पुरे देही न एव कुर्वन् न कारयन्।। 5/13

वशी देही मनसा सर्वकर्माणि	{इन्द्रियों का} वशकर्ता आत्मा {भ्रूमध्य स्टार में स्थित हो,} मन से सब कर्मों को
संन्यस्य नवद्वारे पुरे न कुर्वन्	सम्पूर्ण त्यागकर, नौ द्वार वाले नगर {रूपी शरीर} में {मानों कुछ} न करता हुआ
न कारयन् सुखं एव आस्ते	{और} न {मन सहित ज्ञान या कर्मेन्द्रियों द्वारा} कराता हुआ सुखपूर्वक ही रहता है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावः तु प्रवर्तते।। 5/14

प्रभुः लोकस्य न कर्तृत्वं	{अर्जुन-देह में अनासक्त अकर्ता} प्रभु {शिवज्योति भी} न सांसारिक कर्तापने {के अहंकार} का,
न कर्माणि न कर्मफलसंयोगं	न कर्मों का {और निरंतर अखूट ज्ञानभंडार की स्थिरता से} न कर्मफल-संयोग का
सृजति तु स्वभावः प्रवर्तते	सर्जक है; किंतु {पु.संगमयुगी शूटिंग• में भी भोग वादी प्राणी} -स्वभाव प्रवर्तित होता है।

•{देखिए गीता 4-13 में पु.संगमयुग में ही कल्प-2 की शूटिंग का प्रमाण→ "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।"}

न आदत्ते कस्यचित् पापं न च एव सुकृतं विभुः। अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। 5/15

विभुः कस्यचिन्न पापं च न	विशिष्ट जन्मा {हल्का-फुल्का, सूक्ष्मतम, प्रवेशनीय & अनासक्त} प्रभु किसी के न पाप को और न

सुकृतं एव आदत्ते अज्ञानेन	{हल्के-भारी} पुण्य को ही लेता है। {आद्यशंकराचार्य द्वारा वितत सर्वव्यापी के} अज्ञान से
ज्ञानं आवृतं तेन जन्तवः मुह्यन्ति	ज्ञान ढका है, उससे {पैदा हुए कलियुगी मोहान्धकार में} प्राणी मोहित हैं;

ज्ञानेन तु तत् अज्ञानं येषां नाशितं आत्मनः। तेषां आदित्यवत् ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं।। 5/16

तु ज्ञानेन येषां आत्मनः	किंतु {एकमात्र श्वेतवाहन अर्जुन-रथ में मुकर्रर रूप से एक व्यापी के} ज्ञान द्वारा जिनका आत्मा
तदज्ञानं नाशितं तेषां तत् ज्ञानं	{सो परमात्मा} का वह अज्ञान नष्ट हो गया, उनका वह {अव्यभिचारी गीता-} ज्ञान
परं आदित्यवत् प्रकाशयति	परम {पिता सदाशिव ज्योति} को {अखूट ज्ञानप्रकाश के भंडारी चेतन} सूर्य-जैसा दिखाता है।

तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः। गच्छन्ति अपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।। 5/17

तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः	उसमें बुद्धियुक्त, उस {स्वरूप ही} में आत्मवान, उसमें आत्म निष्ठावान,
तत्परायणाः ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः	उसमें परमाधारित ज्ञान से {अव्यभिचारी योग द्वारा पूर्णतः} धुले पापों वाले
अपुनरावृत्तिं गच्छन्ति	{लोग यहाँ} पुनः वापस नहीं आते; {युधिष्ठिर जैसे सदेह सुखधाम जाते हैं।}

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि च एव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। 5/18

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि	विद्या और विनयशील ब्राह्मण में,{सीधे स्वभाव की भारतीय मानवीय} गाय में,
हस्तिनि च शुनि च श्वपाके	हाथी {जैसे देहंकारी में} & कुत्ते {जैसे महाकामी} में या कुत्ते को पकाने वाले
पण्डिताः एव समदर्शिनः	{अतिक्रोधी चंडाल} में पण्डितजन ही {आत्मभाव से साक्षी हो} समदर्शी होते हैं।

इह एव तैः जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्मात् ब्रह्मणि ते स्थिताः।। 5/19

येषां मनः साम्ये स्थितं तैः इहैव	जिनका मन समानता में स्थित है, उन्होंने यहाँ {दुःखधाम में} ही {सारे हिंसक}

सर्गः जितः हि ब्रह्म निर्दोषं	संसार को {गीताज्ञान & राजयोग से} जीता है; क्योंकि परंब्रह्म निर्दोष {और}
समं तस्मात् ते ब्रह्मणि स्थिताः	समान है। अतः वे {आत्मस्थ सहजराजयोगी सो सहयोगी} परंब्रह्म में {ही} स्थिर हैं।

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य न उद्विजेत् प्राप्य च अप्रियं। स्थिरबुद्धिः असम्मूढो ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः।। 5/20

प्रियं प्राप्य प्रहृष्येत् न	{जिसमें लगाव हो उस} प्रिय {वस्तु या व्यक्ति} को पाकर अति हर्षित नहीं होना चाहिए
चाप्रियं प्राप्य उद्विजेन्न	और {स्नेहशून्य या द्वेषभरे} अप्रिय को पाकर {भी} दुःखी {या हताश} नहीं होना चाहिए।
असम्मूढः स्थिरबुद्धिः	{एकमात्र सदा अनासक्त शिवबाबा सहित सभी व्यक्ति या वस्तु में} संशयहीन {और} स्थिरबुद्धि
ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः	परम्ब्रह्म-ज्ञाता {ब्रह्मावत्स तुरीया} •ब्रह्मतत्व {की उच्चतम और दीर्घतम स्थिति} में {ही} स्थिर है।

•गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः साक्षात् {ऊर्ध्वमुखी} परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा विन्दति आत्मनि यत् सुखं। स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखं अक्षयं अश्नुते।। 5/21

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा आत्मनि	बाहरी विषय-भोगों में अनासक्त पुरुष {भ्रूमध्य में टिकी हुई ज्योतिबिंदु} आत्मा में
यत् सुखं विन्दति स ब्रह्मयोग-	जो {मन का} सुख पाता है, वह परम्ब्रह्म से {सर्वसंबंधों की प्रैक्टिकल सतत भासना से}
युक्तात्मा अक्षयं सुखं अश्नुते	योगयुक्त हुआ {इसी जीवन में} अखूट {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ का अतीन्द्रिय} सुख भोगता है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। 5/22

ये संस्पर्शजाः भोगा ते हि दुःखयोनयः	जो सभी कर्म-इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न भोग हैं, वे ही दुखों के जन्मदाता,
आद्यन्तवन्तः एव कौन्तेय	आदि-अंत वाले {क्षणभंगुर} ही हैं। हे {देहभानहारिणी संगमरमरी दृढ़ भावना वाली} कुन्ती के पुत्र!
बुधः तेषु न रमते	{बुद्धिमानों की बुद्धि शिव से लगे} बुद्धिमान लोग उन {भ्रष्ट कर्म इन्द्रियों के विषयों} में रमण नहीं करते।

शक्नोति इह एव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्। कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।। 5/23

इह एव यः शरीरविमोक्षणात्	इस {लोक} में ही जो {पुरुष परमात्म-स्मृति द्वारा नाशवान} शरीर छूटने से
प्राक् कामक्रोधोद्भवं वेगं सोढुं	पहले काम-क्रोध आदि विकारों से उत्पन्न हुए आवेग को सहने में {या उद्वेगहीन रहने में}
शक्नोति स नरः युक्तः स सुखी	समर्थ है, वह मनुष्य {सहजराज} योगी है, वही सुखी है; {नहीं तो भोगी & दुःखी है।}

यः अन्तःसुखः अन्तरारामः तथा अन्तर्ज्योतिः एव यः। स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतः अधिगच्छति।। 5/24

यः अन्तःसुखः अन्तरारामः	जो {मन बुद्धि से} अन्दरूनी सुखमय है, अन्तर में {प्रशांत महासागर-जैसा शांत&} आनन्दित है,
तथैव यः अन्तर्ज्योतिः ब्रह्मभूतः	वैसे ही जो आत्मज्योति बिंदु में {स्थिर नं. वार पुरुषार्थ अनुसार} ब्रह्मलोक में स्थित हुआ
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं अधिगच्छति	वह योगी परम्ब्रह्म का {यहाँ ही वाणी रहित अन्तर्मौनी} निर्वाणपद पाता है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणं ऋषयः क्षीणकल्मषाः। छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।। 5/25

क्षीणकल्मषाः छिन्नद्वैधाः यतात्मानः सर्वभूत	{सर्व} पापनाशक, द्विविधारहित, मन-बुद्धि के वशकर्ता, सर्व प्राणीमात्र के
हितेरताः ऋषयः ब्रह्मनिर्वाणं लभन्ते	कल्याण में {परमपिता समान} लगे ऋषि परंब्रह्म का निर्वाण पद पाते हैं।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसां। अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनां।। 5/26

कामक्रोधवियुक्तानां यतचेतसां	{लोभ-मोह, अहंकार सहित} काम-क्रोध से रहित, संयमित मन-बुद्धि वाले {लोगों का},
विदितात्मनां यतीनां	{व उत्तमांगी अकालतख़्त/भ्रूमध्य में एकाग्र हुई} आत्मज्योति बिंदु के जानकार यतियों का
ब्रह्मनिर्वाणं अभितः वर्तते	परंब्रह्मनिर्वाण पद यहाँ {पुरुषोत्तम संगम में} & वहाँ {•विष्णुलोकीय स्वर्ग में} भी होता है।

•{सतत्रेतायुगी 16 या 14 कला स्वर्ग में ज्ञानेन्द्रियों का सुख और विष्णुलोकीय वैकुण्ठ में अतीन्द्रिय सुख होता है।}

[27-29 भक्तिसहित ध्यानयोग का वर्णन]

स्पर्शान् कृत्वा बहिः बाह्यान् चक्षुः च एव अन्तरे भ्रुवोः। प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।। 5/27

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः मुनिः मोक्षपरायणः। विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।।5/28

बाह्यान् स्पर्शान् बहिः एव कृत्वा च चक्षुः	बाहर के इन्द्रिय-भोगों को {चित्त से} बाहर ही करके और आत्मबिंदु नेत्र को
भ्रुवोः अन्तरे नासाभ्यन्तरचारिणौ	भृकुटि में,{सूंघासांघी या श्वास-प्रश्वास की वृत्ति से} नासिका के अंदर-भीतर संचारित
प्राणापानौ समौ कृत्वा	{मन में चलने वाले शुद्ध-अशुद्ध संकल्प रूप} प्राण-अपान वायु को समानता में रखकर,
यतेन्द्रियमनोबुद्धिः मोक्षपरायणः	वशीभूत इन्द्रियों की मन-बुद्धि वाला,{दुःखों की दुनियाँ से दूर} मुक्ति के आश्रित हुआ← {ऐसा}
विगतेच्छाभयक्रोधः यः मुनिः सः सदा मुक्त एव	इच्छा, भय व क्रोधहीन जो मननशील मुनि है, वह सदामुक्त ही है।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरं। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिं ऋच्छति।। 5/29

यज्ञतपसां भोक्तारं सर्वभूतानां	यज्ञ-{सेवाओं और आत्मस्मृति की} तपस्या के {आत्मसुख} भोक्ता को, सब प्राणियों में
सुहृदं मां सर्वलोकमहेश्वरं	{विश्व} मित्ररूप मुझ {समान बने जगत्पिता को,सुख-दुख-शांति रूप} •त्रिलोकीनाथ को
ज्ञात्वा शांतिं ऋच्छति	जानकर शांति को पाता है। {अमूर्त शिव तो सिर्फ अण्डे मिसल ब्रह्मांड का मालिक है।}

•{एकमात्र मूर्तिमान साकारी शंकर महादेव/जगत्पिता का ही नाम शिव सुप्रीम सोल के साथ जोड़ा जाता है। और किसी देवता, राक्षस, मनुष्य, प्राणी आदि का नाम सदा पर्दे के पीछे अदृश्य पार्टधारी M. डाइरैक्टर शिव निराकार के बाद और साथ नहीं जोड़ा जाता। इसलिए मूर्तिमान शंकर साकारी होने से सुख-दुख-शांतिधाम तीनों का त्रिलोकीनाथ है।}

(96)

अध्याय-6

आत्मसंयमयोग-नामक छठा अ0।।

[1-4 कर्मयोग का विषय और योगारूढ़ पुरुष के लक्षण]

श्रीभगवानुवाच-अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निः न च अक्रियः।। 6/1

यः कर्मफलं अनाश्रितः कार्यं कर्म	जो कर्मफल का आश्रय न लेकर {एडवांस सच्चीगीता-मतानुसार} करने योग्य कर्म
करोति स संन्यासी च योगी च	करता है, वह {बेहद का} संन्यासी {भी है} और कर्म {करते भी} योगी है; किन्तु
निरग्निः न च अक्रियः न	ज्ञान-योगाग्निहीन {कर्मभोगी} नहीं और {निठल्ला/} निष्क्रिय {संन्यासयोगी भी} नहीं।

यं सन्न्यासं इति प्राहुः योगं तं विद्धि पाण्डव। न हि असन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन।। 6/2

पाण्डव यं संन्यासं इति प्राहुः	हे पाण्डव! जिसको {मनसा संकल्पों से भी} संपूर्ण त्यागी=संन्यासी, ऐसा कहा जाता है, {वास्तव में}
तं योगं विद्धि हि कश्चन	{कर्मघमंडरहित} उसको कर्मयोग समझो; क्योंकि कोई {इन्द्रियों से करता या न करता हुआ}
असंन्यस्तसंकल्पः योगी न भवति	सर्वसंकल्पों का संपूर्ण त्यागी नहीं है {तो} योगी नहीं होता; {सांसारिक भोगी ही है।}

आरुरुक्षोः मुनेः योगं कर्म कारणं उच्यते। योगारूढस्य तस्य एव शमः कारणं उच्यते।। 6/3

योगं आरुरुक्षोः मुनेः कर्म	योग-स्थिति में चढ़ने के इच्छुक मुनि के लिए {मन-व.-कर्म से अलौकिक हुआ} यज्ञकर्म
कारणमुच्यते तस्य शमः एव	{ऊँची अव्यक्त स्थिति का} कारण कहा है {और तन-धनादि के •त्याग से} उसके चित्त की शांति ही
योगारूढस्य कारणं उच्यते	योगारूढ़ के {एकटिक होने का} कारण कही है; {'त्यागाच्छान्तिरनन्तरं' (गी. 12-12)}

यदा हि न इन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुषज्जते। सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढः तदा उच्यते।। 6/4

हि यदा सर्वसंकल्पसंन्यासी	क्योंकि जब {कामविकार के संकल्प सहित} सब संकल्पों का संपूर्ण त्यागी, {आत्मबिंदु स्मृति से}
न कर्मसु न इन्द्रियार्थेषु	न {लोलुप इन्द्रियों के} कर्मों में {और} न इन्द्रिय {के स्पर्श-रूप-रसादि विविध} भोगों में
अनुषज्जते तदा योगारूढः उच्यते	आसक्त होता है, तब योग {की सर्वोच्च अव्यक्त स्थिति} में चढ़ा हुआ कहा जाता है।

[5-10 आत्म-उद्धार के लिए प्रेरणा और भगवत्प्राप्त पुरुष के लक्षण]

उद्धरेत् आत्मना आत्मानं न आत्मानं अवसादयेत्। आत्मा एव हि आत्मनो बन्धुः आत्मा एव रिपुः आत्मनः।। 6/5

आत्मना आत्मानं उद्धरेत् आत्मानं	अपने मन-बुद्धि द्वारा ज्योतिबिंदु आत्मा को ऊँची स्थिति {के हीरो} में ले जाए। आत्मा को
अवसादयेन्न हि आत्मैवात्मनः	{भ्रष्ट इन्द्रियों की} अधोगति में न जाने दे; क्योंकि ज्योतिबिंदु आत्मा ही अपना {सदाकाल}
बन्धुः आत्मा एव आत्मनः रिपुः	{सहयोगी} मित्र है। आत्मा ही अपना •शत्रु है। {हीरो पार्टधारी विश्वामित्र ही विश्वमित्र है।}

•जीवात्मा अपना ही मित्र है, अपना ही शत्रु है। (मु.ता.21.3.67 पृ.3 मध्य) {सदा मित्र एक ही विश्वनाथ है।}

बंधुः आत्मा आत्मनः तस्य येन आत्मा एव आत्मना जितः। अनात्मनः तु शत्रुत्वे वर्तेत आत्मा एव शत्रुवत्।। 6/6

येनात्मनात्मा जितः तस्यात्मैव	जिसने अपनी {चेतन बनी} मन-बुद्धि द्वारा ज्योतिबिंदु आत्मा को जीता है, उसकी आत्मा ही
आत्मनः बन्धुः त्वनात्मनः	{मन जीत होने से} अपना मित्र है, {दूसरा मित्र-शत्रु नहीं}; किंतु अनात्मस्थ देहभानी की
आत्मैव शत्रुवत् शत्रुत्वे वर्तेत	{चंचल मन वाली क्षीण बुद्धि} आत्मा ही शत्रु की तरह शत्रुता करने में तत्पर रहती है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः। शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।। 6/7

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा	आत्मजयी परमशांत {बिन्दु बने} पुरुष की परमपार्टधारी हीरो आत्मा (गीता15-17)

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः समाहितः	सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में तथा मान-अपमान में सन्तुष्ट रहती है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः। युक्त इति उच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।। 6/8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थः	{शिव के} ज्ञान+विशेष ज्ञान=योग से तृप्त आत्मा, {परम्ब्रह्म के ऊँचे} शिखर पर स्थिर,
विजितेन्द्रियः समलोष्टाश्मकांचनः	विशेष कामेन्द्रिय को भी जीतने वाला, मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण आदि में समान {भाव वाला}
योगी युक्तः इति उच्यते	योगी योगनिष्ठ है ←ऐसा कहा जाता है। {ऐसे अलोलुप का 'योगक्षेमं वहाम्यहम' (गी.9-22)}

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु। साधुषु अपि च पापेषु समबुद्धिः विशिष्यते।। 6/9

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु	स्नेही, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी वा बंधुजनों में, {इन्द्रियों की}
साधुषु च पापेष्वपि समबुद्धिः विशिष्यते	{साधना कर्ता} साधू और पापियों में भी समान बुद्धि वाला विशेष माना गया है।

योगी युञ्जीत सततं आत्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः।। 6/10

यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः योगी	{चंचल} मन व निर्णायक बुद्धि का वशकर्ता, आशाहीन, असंग्रही योगी
एकाकी रहसि स्थितः सततं आत्मानं युंजीत	अकेला, एकांत स्थान में स्थित हुआ निरन्तर परमात्मा से योग लगाए।

[11-32 विस्तार से ध्यानयोग का विषय]

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरं आसनं आत्मनः। न अत्युच्छ्रितं न अतिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरं।। 6/11

तत्र एकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः। उपविश्य आसने युञ्ज्यात् योगं आत्मविशुद्धये।। 6/12

आत्मविशुद्धये शुचौ देशे चैलाजिन	{ज्योतिबिंदु} आत्मा की विशेष शुद्धि हेतु पवित्र स्थान में, {सूत से बने} वस्त्रसहित मृगचर्म

कुशोत्तरं नातिनीचं नात्युच्छ्रितं	{पवित्र} कुशाघास पर बिछाए, न अति नीचे {गर्त में}, न अति ऊँचे {स्थान पर}
आत्मनः स्थिरं आसनं प्रतिष्ठाप्य तत्रासने	{अभ्यासपूर्वक} अपना स्थिर आसन जमाकर, उस आसन पर {निश्चिंत हो}
उपविश्य मनः एकाग्रं कृत्वा	बैठकर, मन को {भ्रूमध्य आत्मस्टार में} एकाग्र करके, {विशेष कर्मयोगी ब्राह्मण इसप्रकार}
यतचित्तेन्द्रियक्रियः योगं युंज्यात्	चित्त, इन्द्रिय-क्रिया का वशकर्ता {एक मात्र अर्जुन-रथ व्यापी शिव से} योग लगाए।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्च अनवलोकयन्।। 6/13

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।।6/14

स्थिरः कायशिरोग्रीवं सममचलं धारयन्	स्थिर हुआ {संन्यासयोगी} शरीर, सिर-गर्दन को एक सीध में अडोल रखते हुए
च स्वं नासिकाग्रं संप्रेक्ष्य	और अपनी {भृकुटि-मध्य में बुद्धि नेत्र से} नासिकाग्र में संपूर्ण खुली आँखों द्वारा {अपलक हुआ}
दिशोऽनवलोकयन्प्रशान्तात्मा विगतभीः	{निश्चल मन से} दिशाओं को न देखता हुआ, प्रशान्तचित्त हुआ, निर्भय {और}
ब्रह्मचारिव्रते स्थितः मनः संयम्य	{बलवती दृढ़ता से कामजीतेच्छा से} ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर हुआ, मन एकाग्र करके
मच्चित्तः मत्परः युक्त आसीत	मेरे में चित्त सहित आश्रित हो, {अव्यभिचारी इन्द्रियों द्वारा बाबा से} योग लगाए।

युञ्जन् एवं सदा आत्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थां अधिगच्छति।। 6/15

नियतमानसः योगी एवं सदा	नियमित मन वाला {नेमिनाथ} संन्यासयोगी {अभी-2 बताया} ऐसे, सदैव {ज्योतिबिंदु}
आत्मानं युंजन मत्संस्थां	{रूप सूक्ष्म अणु} आत्मा को {मुझ शिवज्योति में} जोड़ता हुआ मेरे में स्थित {सदा असीम}
निर्वाण परमां शान्तिमधिगच्छति	निर्वाणधाम की परमशान्ति को {नं. वार पुरुषार्थानुसार अतिशीघ्र ही} पा लेता है।

न अति अश्नतः तु योगः अस्ति न च एकान्तं अनश्नतः। न च अति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो न एव च अर्जुन।। 6/16

अर्जुन न तु अति अश्नतः च न	हे ज्ञानधन-जेता अर्जुन! न तो अधिक खाने वाले को {बहुत आलस्य/नींद आने कारण} और न
एकान्तं अनश्नतः योगः अस्ति च	{सभी संसारी भोगियों को भूख सताने से} बिल्कुल उपवास वाले का योग लगता है तथा
नाति स्वप्नशीलस्य च न जाग्रतः एव	न अधिक सोने वाले का और न पूरा जागने वाले का ही {अच्छा योग लगता है।}

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। 6/17

युक्ताहारविहारस्य कर्मसु युक्तचेष्टस्य	आहार-विहार में युक्तियुक्त, कर्मों में {धर्मानुकूल} युक्तियुक्त चेष्टावान का,
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगः दुःखहा भवति	{इसी प्रकार सदाकाल} नियमित निद्रालु&जाग्रत का योग दुःखहर्ता होता है।

यदा विनियतं चित्तं आत्मनि एव अवतिष्ठते। निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इति उच्यते तदा।। 6/18

यदा विनियतं चित्तं आत्मन्येव	जब विशेषतः {मन सहित 10 इन्द्रियों द्वारा} संयमित चित्त {ज्योतिबिंदु} आत्मा में ही
अवतिष्ठते तदा सर्वकामेभ्यः	भलीभाँति स्थिर हो जाता है, तब सब {प्रकार की श्रेष्ठ या निष्कृष्ट सांसारिक} कामनाओं से
निःस्पृहः युक्त इति उच्यते	बिल्कुल इच्छाहीन हुआ {सहजराज} 'योगयुक्त'{संन्यासी या कर्मयोगी} ऐसा कहा जाता है।

यथा दीपो निवातस्थो न इङ्गते सा उपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगं आत्मनः।। 6/19

यथा निवातस्थः दीपः नेङ्गते यतचित्तस्य	जैसे निर्वात स्थान में दीपक हिलता नहीं, {वैसे} वशीभूत चित्त वाली
आत्मनः योगं युंजतः योगिनः सोपमा स्मृता	आत्मा का लगाव {परमात्मा से} जुड़े {तो} योगी की वह उपमा याद की जाती है।

यत्र उपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। यत्र च एव आत्मना आत्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।। 6/20

यत्र योगसेवया निरुद्धं चित्तं	जिस {अव्यक्त अवस्था} में {आत्मा का परमात्मा से} योगाभ्यास द्वारा नितान्त वशीभूत चित्त
उपरमते च यत्र आत्मना	{परमात्मा में} उपराम हो और जहाँ अपने मन-बुद्धि से {भ्रूमध्य में ज्योतिबिंदु स्वरूप में स्थिर}

आत्मानं पश्यन्नात्मन्येव तुष्यति	{अव्यक्त} आत्मा को देखता हुआ आत्मरूप {परमपिता शिव समान परमात्मा} में ही संतुष्ट होता है;

सुखं आत्यन्तिकं यत् तत् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियं। वेत्ति यत्र न च एव अयं स्थितः चलति तत्त्वतः।। 6/21

बुद्धिग्राह्यं यत् आत्यन्तिकं अतीन्द्रियं	{निर्णायक} बुद्धि से ग्राह्य जो उत्कृष्टतम {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ के कलातीत} अतीन्द्रिय
सुखं तत् अयं यत्र वेत्ति च स्थितः	सुख है उसे {उत्कृष्ट योगी} जहाँ {जिस स्थिति में} जानता है & {वहीं पर} स्थिर हुआ,
तत्त्वतः न एव चलति	तात्विक रूप से {गीता (13-5) वर्णित संसार के 23 जड़ तत्वों द्वारा} कभी विचलित नहीं होता;

यं लब्ध्वा च अपरं लाभं मन्यते न अधिकं ततः। यस्मिन् स्थितः न दुःखेन गुरुणा अपि विचाल्यते।। 6/22

च यं लब्ध्वा ततः अपरं लाभं	और जो {स्वर्ग के अतीन्द्रिय सुख} पाकर उससे दूसरे {अधोगामी सांसारिक} लाभ को
अधिकं न मन्यते यस्मिन् स्थितः	अधिक {अच्छा} नहीं मानता, जिस {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ सुख} में स्थित हुआ
गुरुणा दुःखेन अपि विचाल्यते न	{कल्पान्त की महामृत्यु के आत्यंतिक} महान दुःख से भी विचलित नहीं होता;

तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितं। स निश्चयेन योक्तव्यो योगः अनिर्विण्णचेतसा।। 6/23

दुःखसंयोगवियोगं तं योगसंज्ञितं	दुःखों की प्राप्ति से दूर करने वाले उस {अतीन्द्रिय सुख} को {सहजराज} 'योग' नाम से
विद्यात् अनिर्विण्णचेतसा	जानना चाहिए। {बीमारियों से भरे सांसारिक जन्म-जरा-मरण के} दुःख दर्द रहित चित्त से
स योगः निश्चयेन योक्तव्यः	वह {सहजराज} योग निश्चयपूर्वक लगाना चाहिए; {क्योंकि 'निश्चयबुद्धि विजयते' ही सत्य बात है।}

सङ्कल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः। मनसा एव इन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।। 6/24

संकल्पप्रभवान्सर्वान्कामान् अशेषतः त्यक्त्वा	संकल्प से पैदा सब कामनाओं को {निःसंकल्प हो} पूरी तरह त्यागकर,
मनसा एव इन्द्रियग्रामं समंततः विनियम्य	मन से ही इन्द्रिय-समूह को सब ओर से विशेष रूप से नियमित कर,

शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया। आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चित् अपि चिन्तयेत्।। 6/25

शनैः-2 मनः धृतिगृहीतया बुद्ध्या	धीरे-2 मन {100 वर्षीय पु. संगम में नं. वार पुरुषार्थ से} धैर्य वाली बुद्धि द्वारा
उपरमेत् आत्मसंस्थं कृत्वा	{पूरा} उपराम हो जाए {मन-बुद्धिबल को चैतन्य} आत्मबिंदु में पूरा स्थिर करके
किंचित् अपि न चिन्तयेत्	{स्वर्ण लिंगरूप सगुण+निर्गुणात्मा सदाशिवज्योति सिवाय} कुछ भी चिंतन न करे।

यतो यतो निश्चरति मनः चञ्चलं अस्थिरं। ततः ततः नियम्य एतत् आत्मनि एव वशं नयेत्।। 6/26

अस्थिरं चंचलं मनः यतः-2	अस्थिर, चंचल {कपि जैसा} मन जहाँ-2 {अपनी देह, देह के संबन्धियों, स्थान विशेष या पदार्थों} से
निश्चरति ततः-2 एतत्	{हठपूर्वक} चलायमान हो, वहाँ-2 से इस {मन} को {भली-भाँति प्रयत्नपूर्वक & धैर्यपूर्वक}
नियम्यात्मन्येव वशं नयेत्	नियमित करके {स्टार-जैसी चेतन अणुरूप ज्योतिबिंदु} आत्मा के ही वश में ले आए;

प्रशान्तमनसं हि एनं योगिनं सुखं उत्तमं। उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतं अकल्मषं।। 6/27

हि प्रशान्तमनसं शांतरजसं	क्योंकि भली-भाँति शान्त मन वाले, शांत रजोगुण {और तामसीगुण} वाले {राजधारी}
एनं योगिनं ब्रह्मभूतमकल्मषमुत्तमं सुखमुपैति	इस योगी को परंब्रह्मजनित, दोषरहित, सर्वोत्तम {अतीन्द्रिय} सुख होता है।

युञ्जन् एवं सदा आत्मानं योगी विगतकल्मषः। सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखं अश्नुते।। 6/28

एवं सदात्मानं युंजन् विगतकल्मषः योगी	ऐसे आत्मा को सदा {शिवबाबा से} संयुक्त करता हुआ पापरहित योगी
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखं अश्नुते	सुख पूर्वक {साक्षात्} परंब्रह्म का संपूर्ण स्पर्शयुक्त अतीव सुख भोगता है।

सर्वभूतस्थं आत्मानं सर्वभूतानि च आत्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। 6/29

योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः	{परमपिता+परमात्मा की} याद में लगी हुई आत्मा सर्वत्र समान भाव होकर {गीता 5-18},

सर्वभूतस्थं आत्मानं च	समस्त प्राणियों में स्थित {ज्योतिबिंदु में भरे चेतन रिकॉर्ड रूप} आत्मा को अथवा
सर्वभूतानि आत्मनि ईक्षते	सब {सांसारिक} प्राणियों को {स्टार-जैसे} आत्मरूप में {बुद्धि रूपी तीसरे ज्ञान-नेत्र से} देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्य अहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। 6/30

यो सर्वत्र मां पश्यति च मयि	जो {प्रेमी-जैसा} सर्वत्र मुझे देखता है और {बीज में वृक्ष जैसा} मुझ {शिव+बाबा} में
सर्वं पश्यति अहं तस्य	सबको देखता है, {अर्थात् आत्मा सो परमात्मा के अज्ञान से दूर है}, मैं उससे {कभी}
प्रणश्यामि न च स मे प्रणश्यति न	दूर नहीं होता और वह {खास पु. संगम में} मेरे से {भी} अदृश्य नहीं होता।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वं आस्थितः। सर्वथा वर्तमानः अपि स योगी मयि वर्तते।। 6/31

एकत्वं आस्थितः यः सर्व	{पुरु. संगम के मुकर्रर अर्जुन-रथ में} एकव्यापी {परमपिता शिव} को जो {योगी} सब
भूतस्थितं मां भजति स योगी	प्राणियों में {नं. वार योग-ऊर्जा से} स्थित मुझे भजता है, वह {श्रेष्ठ} योगी
सर्वथा वर्तमानोऽपि मयि वर्तते	सब प्रकार से व्यवहार करते भी मेरे {परमपार्टधारी हीरो परमात्मरूप दिल} में है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति यः अर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।। 6/32

अर्जुन यः सर्वत्र आत्मौपम्येन सुखं यदि वा	हे अर्जुन! जो {पशु पक्षी-कीट आदि} सब प्राणियों में आत्मभाव से सुख को वा
दुःखं समं पश्यति स योगी परमः मतः	दुःख को समान देखता है, वह {आत्म-दृष्टि वाला} योगी परममान्य है।

[33-36 मन के निग्रह का विषय]

अर्जुनउवाच-यः अयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन। एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिरां।। 6/33

मधुसूदन त्वया साम्येन योऽयं	हे मधु {जैसे मीठे कामविकार के} हंता {शिवबाबा}! आपने साम्यता द्वारा जो यह

योगः प्रोक्तः एतस्य चंचलत्वात्	योग कहा, उसके लिए {मेरे कपि मन की} चंचलता {या अपनी आसक्तियों} के कारण
स्थिरां स्थितिं अहं पश्यामि न	कोई स्थिर आधार मुझे दिखाई नहीं देता। {जन्म-2 की चंचलदृष्टि आत्मदृष्टि में विघ्न है।}

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढं। तस्य अहं निग्रहं मन्ये वायोः इव सुदुष्करं।। 6/34

कृष्ण मनः चंचलं प्रमाथि	हे आकर्षणमूर्त शिवबाबा! मन {बंदर जैसा} चंचल है, {इन्द्रियाँ} मथ डालता है, {बड़ा}
बलवत् दृढं हि अहं तस्य निग्रहं	बलवान है, हठी है; क्योंकि मैं उस {सात्विक बुद्धि रहित बेलगाम घोड़े} का रोकना
वायोः इव सुदुष्करं मन्ये	{मुश्किल से हठयोग पूर्वक रोकी जाने वाली प्राण-} वायु समान अति कठिन मानता हूँ।

श्रीभगवानुवाच-असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। 6/35

असंशयं महाबाहो चलं मनः दुर्निग्रहं तु	निस्संदेह हे महाबाहु! {तीव्रधावी} चंचल {कपिध्वज} मन दुराग्रही है; किन्तु
कौन्तेय वैराग्येण चाभ्यासेन गृह्यते	हे अर्जुन! {एटामिक महाविनाश के} वैराग्य & योगाभ्यास से वश में आता है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः। वश्यात्मना तु यतता शक्यः अवाप्तुं उपायतः।। 6/36

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप	असंयत {इच्छाओं से भरे-पूरे इस} मन {रूप मनुआ} वाले के लिए योग की प्राप्ति कठिन है,
इति मे मतिः तु यतता उपायतः	ऐसा मैं {भोगी आत्माओं लिए} मानता हूँ; किंतु प्रयत्नपूर्वक {अभी-2 बताए} उपायपूर्वक
वश्यात्मना अवाप्तुं शक्यः	वशीभूत मन {निरंतर वैराग्य &'मामेकं' की अव्यभिचारी याद} से हाथ आ सकता है।

[37-47 योगभ्रष्ट पुरुष की गति का विषय और ध्यानयोगी की महिमा]

अर्जुन उवाच-अयतिः श्रद्धया उपेतो योगात् चलितमानसः। अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।। 6/37

कृष्ण योगात् श्रद्धया उपेतः	हे आकर्षणमूर्त {शिवबाबा!} सहजराजयोग से श्रद्धायुक्त; {किंतु विकारों से}

चलितमानसः अयतिः योगसंसिद्धिं	विचलित मन वाला अयोगी={भोगी व्यक्ति} योग {से वैकुण्ठ} की संपूर्ण सिद्धि
अप्राप्य कां गतिं गच्छति	न पाकर {यदि उत्तम राजा नहीं तो मध्यम या नीच प्रजापद की} किस गति को जाता है?

कच्चित् न उभयविभ्रष्टः छिन्नाभ्रम् इव नश्यति। अप्रतिष्ठः महाबाहो विमूढः ब्रह्मणः पथि।। 6/38

महाबाहो ब्रह्मणः पथि विमूढः	हे विशालभुजी अष्टमूर्ति {शिरोधारी} शिवबाबा! परंब्रह्म के मार्ग में भूला हुआ {सर्वथा}
अप्रतिष्ठः उभयविभ्रष्टः	स्थितिभ्रष्ट योगी, {अभ्यास और वैराग्य} दोनों तरह से भ्रष्ट हुआ, {हताश हुआ व्यक्ति}
छिन्नाभ्रम् इव कच्चित् न नश्यति	फटे बादल की तरह कहीं {पागलों की जैसी स्थिति में} नष्ट तो नहीं हो जाता?

एतत् मे संशयं कृष्ण छेत्तुं अर्हसि अशेषतः। त्वदन्यः संशयस्य अस्य छेत्ता न हि उपपद्यते।। 6/39

कृष्ण मे एतत् संशयं अशेषतः	हे आकर्षणमूर्त! मेरे इस सन्देह को {जो दुबारा न उठे-ऐसे} पूरी तरह {जड़ सहित}
छेत्तुं अर्हसि हि अस्य संशयस्य	नष्ट करने में समर्थ हो; क्योंकि {ऊँचे-से-ऊँचे आप भगवंत-जैसा} इस संशय का {साक्षात्}
छेत्ता त्वदन्यः न उपपद्यते	नाशकर्ता आपके सिवा दूसरा {संसारभर में कोई अखूट ज्ञान भंडारी} नहीं मिल सकता।

श्रीभगवानुवाच-पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते। न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।। 6/40

पार्थ तस्य न इह अमुत्र एव	हे पृथ्वीपति! उस {योगी} का न इस {नारकीय पृथ्वी} लोक में,{या देवलोकीय} परलोक में भी
विनाशः न विद्यते हि तात कश्चित्	{सवर्था} विनाश नहीं होता; क्योंकि हे तात! कोई भी {ज्ञानसूर्य विवस्वत की}
कल्याणकृत् दुर्गतिं न गच्छति	कल्याणकारी {आत्मकिरणस्वरूप सूर्यवंशी बनी औरस संतान} दुर्गति में नहीं जाती।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टः अभिजायते।। 6/41

योगभ्रष्टः पुण्यकृतां लोकान्	योगभ्रष्ट व्यक्ति {पापात्माओं के नारकीय लोक में सीधा नहीं जाता}, पुण्यात्माओं के लोकों को
प्राप्य शाश्वतीः समाः उषित्वा	{यहीं} पाकर, अनेक वर्षों तक {साधारण समझे गए प्रजावर्ग के सामान्य जीवन में} रहकर,
शुचीनां श्रीमतां गेहेऽभिजायते	{श्रेष्ठ कुल के 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी' गृहस्थियों में}, पवित्र श्रीमन्तों के घर में जन्म लेता है

अथवा योगिनां एव कुले भवति धीमतां। एतत् हि दुर्लभतरं लोके जन्म यत् ईदृशं।। 6/42

अथवा धीमतां योगिनां कुले	अथवा बुद्धिमान योगियों के {लगनशील;किन्तु संशयालु बने ब्राह्मणों के अधूरे} कुल में
एव भवति हि ईदृशं यत्	ही पैदा होता है; किन्तु ऐसा {साक्षात् माहेश्वरी सूर्य-वंशियों के परिवार में} जो
जन्म एतत् लोके दुर्लभतरं	जन्म है, इस {पु.संगम में तीव्रतर पुरुषार्थियों के} लोक में अधिक कठिन है।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकं। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।। 6/43

तत्र पौर्वदेहिकं तं बुद्धिसंयोगं लभते	वहाँ {ब्राह्मण बने} पूर्वजन्म से प्राप्त वह {एडवांस रुद्रगणों का} बुद्धि-संयोग पाता है
च ततः कुरुनन्दन	और फिर हे कुरुवंशियों के {ठेठ घमंडी स्लामी-बौद्धी आदि विधर्मियों के भी प्रह्लाद/} आनंददाता अर्जुन!
भूयः संसिद्धौ यतते	पुनः {एडवांस ब्राह्मण परिवार में विष्णु लोकीय वैकुण्ठ की} सम्पूर्ण सिद्धि पाने हेतु यत्न करता है।

पूर्वाभ्यासेन तेन एव ह्रियते हि अवशः अपि सः। जिज्ञासुः अपि योगस्य शब्दब्रह्म अतिवर्तते।। 6/44

तेन पूर्वाभ्यासेन एव सः अवशः	उस पूर्वजन्म के अभ्यास द्वारा ही वह {अर्धयोगी ब्रह्मावत्स स्वतः} विवश होकर
ह्रियते हि योगस्य जिज्ञासुः अपि	{योगसिद्धि हेतु} खिंचता है {और} राजयोग का {थोड़ा} ज्ञान पाने का इच्छुक भी
शब्दब्रह्म अतिवर्तते	{झाँझ-मजीरा की} आवाज़ वाले {भक्तिमार्गी चतुर्मुखी} ब्रह्मा के पार {परमब्रह्म में} चला जाता है;

प्रयत्नात् यतमानः तु योगी संशुद्धकिल्बिषः। अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिं।। 6/45

तु प्रयत्नात् यतमानः योगी संशुद्धकिल्बिषः	किन्तु प्रयत्नपूर्वक योगाभ्यासी योगी सम्पूर्ण पाप के धुल जाने पर
अनेकजन्मसंसिद्धः ततः परां गतिं याति	अनेक जन्म में सम्पूर्ण सिद्ध हुआ, बाद में {विष्णुरूप} परमगति को पाता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिकः योगी तस्मात् योगी भवार्जुन।। 6/46

योगी तपस्विभ्यः अधिकः ज्ञानिभ्यः अपि	राजयोगी {दैहिक ताप वाले} तपस्वियों से बढ़कर है, आत्मज्ञानियों से भी
अधिकः मतः च कर्मिभ्यः योगी अधिकः	श्रेष्ठ मान्य है और कर्मकाण्डियों से {तो सहज} राजयोगी बड़ा है {ही};
तस्मात् अर्जुन योगी भव	अतः हे अर्जुन! {तू आत्मस्मृति के तापसी वा त्रिगुणबद्ध कर्मकांडियों से भी श्रेष्ठ} योगी बन।

योगिनां अपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।। 6/47

सर्वेषां योगिनामपि यः श्रद्धावान्	सब योगियों में भी जो {दिल+दिमागयुक्त} श्रद्धा-भावना वाला {सहज राजयोगी}
मद्गतेन अन्तरात्मना मां	मेरे {मूर्तिमान 'अव्यक्तमूर्ति' (गी. 9-4) महादेव हीरो} में लगाई मन-बुद्धि द्वारा मुझको
भजते स मे युक्ततमः मतः	याद करता है, उसे मैं सबसे श्रेष्ठ {दिमाग वाला समझू & दिलसहित भावपूर्ण} योगी मानता हूँ।

अध्याय-7

ज्ञानविज्ञानयोग-नामक 7वाँ अ0।।

[1-7 विज्ञानसहित ज्ञान का विषय]

श्रीभगवानुवाचः-मयि आसक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः। असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तत् शृणु।। 7/1

पार्थ मदाश्रयः मय्यासक्तमनाः	पृथ्वीश्वर! {सब तरह} मेरा आश्रय लेने वाला, मेरे {सौम्य रूप में} आसक्त हुए मन वाला,
योगं युंजन् मां समग्रं यथा	{सहज रीति} योग लगाते हुए मेरे {व्यक्त+अव्यक्त} सम्पूर्ण {विराट} स्वरूप को जिस प्रकार
असंशयं ज्ञास्यसि तत् शृणु	{अटूट श्रद्धा से} संशयहीन हुआ जानेगा, उसे {विस्तारपूर्वक मेरे सन्मुख होकर} सुन।

ज्ञानं ते अहं सविज्ञानं इदं वक्ष्यामि अशेषतः। यत् ज्ञात्वा न इह भूयः अन्यत् ज्ञातव्यं अवशिष्यते।। 7/2

अहं ते सविज्ञानं इदं ज्ञानं अशेषतः	मैं तुझे विशेषज्ञान={योग} सहित इस {सच्चीगीता एडवांस} ज्ञान को पूरी तरह {विस्तार से}
वक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा भूयः	{प्रश्नोत्तर पूर्वक} बताऊँगा, जिसे जानकर {स्व+दर्शन+चक्रधारी बने तेरे लिए} पुनः
इह अन्यत् ज्ञातव्यं न अवशिष्यते	इस {असार बने} संसार में अन्य {वेद-शास्त्रादि} जानने योग्य {कुछ भी} बाकी नहीं बचेगा।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये। यततां अपि सिद्धानां कश्चित् मां वेत्ति तत्त्वतः।। 7/3

सहस्रेषु मनुष्याणां कश्चित् सिद्धये	{जन्म-2 की पुण्यशील} हज़ारों मनुष्यात्माओं में कोई एक सिद्धि के लिए
यतति यततां सिद्धानां अपि मां	{अनवरत/लगातार} यत्न करता है। {नं.वार} यत्नकर्ता सिद्धों में भी मुझको {कपिलमुनि-जैसा}
कश्चित् तत्त्वतः वेत्ति	कोई {एक सत्य सनातनी धर्मपिता, साकार रूप में आए हुए निराकार शिवज्योति को} यथार्थ रीति जानता है।

भूमिः आपः अनलः वायुः खं मनो बुद्धिः एव च। अहङ्कारः इति इयं मे भिन्ना प्रकृतिः अष्टधा।। 7/4

भूमिः आपः वायुः अनलः खं	पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश- {इन पाँचों साररूप जड़ तत्वों सहित जड़त्वमई बुद्धि वाले,}
मनो बुद्धिः च अहंकार एव इति	{अदृश्नीय & फिर चेतन जैसे} मन-बुद्धि और अहंकार {रूप देवात्माएँ} भी, इस तरह
मे इयं प्रकृतिः अष्टधा भिन्ना	मेरी {बाबा वाली साकारी+निराकारी शिव} ← यह प्रकृष्ट कृति आठ प्रकार से विभक्त है।

अपरा इयं इतः तु अन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां। जीवभूतां महाबाहो यया इदं धार्यते जगत्।। 7/5

महाबाहो इयं अपरा तु इतः	हे {चेतन} दीर्घबाहु! यह {अर्जुनरथ} नीची प्रकृति है; किंतु इस {धरणीरूपा जड़प्रकृति} के
अन्यां मे जीवभूतां प्रकृतिं परां	अलावा मेरी जीवंत प्राणीभाव वाली {योग द्वारा भरीपूरी ऊर्जारूपा आत्म-} प्रकृति को श्रेष्ठ
विद्धि यया इदं जगत् धार्यते	जान, जिस {परा प्रकृति} से यह {जड़-चेतन प्राणीमात्र} जगत् {सहज ही} धारण किया जाता है।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणि इति उपधारय। अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयः तथा।। 7/6

सर्वाणि भूतान्येतद्योनीनि	{जड़+चेतन} सब प्राणियों का यह {सार भूत मूर्तिरूप देह+शिवसमान आत्मा} उद्गम है,
इत्युपधारय अहं कृत्स्नस्य	ऐसा {तू खुद को} जान ले {और} मैं {सदाशिव ज्योति+बाबा} समस्त {जड़-जंगम प्राणीमात्र}
जगतः प्रभवः तथा प्रलयः	जगत् का {सिर्फ इस पुरुषोत्तम संगमयुग में} उत्पत्तिकर्ता तथा विनाशकर्ता हूँ, {चतुर्युगी में नहीं।}

मत्तः परतरं न अन्यत् किञ्चित् अस्ति धनञ्जय। मयि सर्वं इदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। 7/7

धनंजय मत्तः परतरं अन्यत्किञ्चित्	हे ज्ञानधनजेता अर्जुन! मेरे से श्रेष्ठतर {इस संसार सहित तीनों लोकों में} अन्य कुछ भी
न अस्ति सूत्रे मणिगणाः इव इदं	नहीं है। {मेरे स्नेह के} धागे में {रुद्राक्ष के} पिरोए मणकों-जैसा यह {टोटल प्राणियों का}
सर्वं मयि प्रोतं	सारा {5-7 सौ करोड़ का मानवीय} जगत मेरे {नं. वार प्रीति के धागे} में {बेहद ड्रामानुसार ही} पिरोया हुआ है।

{प्रायः शिवज्योति समान बनी अर्जुन/आदम की आत्मज्योति→ परा प्रकृति आत्मा +शंकर-मूर्तिरूप अपरा प्रकृति ही संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति, पालना और विनाश, तीनों का अविनाशी आधार है।} **(यही बात पीछे देखें, गीता 7-5)।**

[8-12 सम्पूर्ण पदार्थों में कारणरूप से भगवान की व्यापकता का कथन]

रसः अहं अप्सु कौन्तेय प्रभा अस्मि शशिसूर्ययोः। प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।। 7/8

कौन्तेय अप्सु रसः अहं	हे {देहभान-हारिणी आत्माभिमानी} कुंती के पुत्र अर्जुन! {ज्ञान-} जल में रस मैं {हूँ}।
शशिसूर्ययोः प्रभास्मि सर्ववेदेषु	{चेतन ज्ञान-} सूर्य {विवस्वत} & {कृष्ण} चन्द्र की कान्ति मैं हूँ। सब वेदों में {'अ+उ+म' रूप}
प्रणवः खे शब्दः नृषु पौरुषं	ऊँकार, {ब्रह्मारूप} आकाश में शब्द, पुरुषों में {जगत्पिता द्वारा मैं शिव ही} पुरुषत्व हूँ।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्च अस्मि विभावसौ। जीवनं सर्वभूतेषु तपश्च अस्मि तपस्विषु।। 7/9

पृथिव्यां पुण्यः गन्धः च विभावसौ	{अखंड योगऊर्जा से} पृथ्वी माता में पवित्र {तन्मात्रा की} सुगन्ध और अग्नि {दिव्यरूप} में
तेजः अस्मि च सर्वभूतेषु जीवनं च	{ज्ञानप्रकाश & योगूर्जा का} तेज हूँ और प्राणीमात्र में {प्राणवायु & ज्ञानजल की} जीवनीशक्ति और
तपस्विषु तपः अस्मि	तपस्वियों में {देहभान को तपाने वाले ज्योति रूप आत्म-स्मृति की} तपशक्ति {सदाकालीन शिवज्योति मैं ही} हूँ।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनं। बुद्धिः बुद्धिमतां अस्मि तेजः तेजस्विनां अहं।। 7/10

पार्थ सर्वभूतानां सनातनं	हे पृथ्वीश्वर! सब {श्रेष्ठ या क्षुद्र} प्राणियों का {सतयुग-आदि कालीन पु. संगम का} सनातन
बीजं मां विद्धि बुद्धिमतां	बीज {शंकर/अर्जुन/आदम} मुझे जान। {सर्व धर्मपिताओं-जैसे} बुद्धिमानों की
बुद्धिस्तेजस्विनां तेजोऽहमस्मि	{श्रेष्ठतम} बुद्धि {और} तेजस्वियों का {नं. वार योगऊर्जा रूप} तेज {भी} मैं {•शिव ही} हूँ।

•कहते हैं हर-हर महादेव। सबके दुख हरने वाला। वह भी मैं हूँ। शंकर नहीं है। (मु. 4-11-78 पृष्ठ 2 आदि)

बलं बलवतां च अहं कामरागविवर्जितं। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामः अस्मि भरतर्षभ।। 7/11

अहं बलवतां कामराग-	मैं {सदा शिवबाबा ही} बलवानों का काम {देवता} & {लगाव-झुकाव वाली} आसक्ति से
विवर्जितं बलं च भरतर्षभ	सर्वथा रहित बल हूँ और हे {विष्णुरूप} भरतश्रेष्ठ! {सतयुगादि के सदा स्थिर आत्मा वाले}
भूतेषु धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि	{विष्णुलोकीय} प्राणियों में धर्मानुकूल {स्त्री-संग की प्यार भरी,अहिंसक और सुखदाई} कामना हूँ।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसाः तामसाश्च ये। मत्त एव इति तान् विद्धि न तु अहम् तेषु ते मयि।। 7/12

चैव ये सात्त्विका राजसाश्च तामसाः	और भी जो {संसार में युगानुरूप क्रमशः} सात्विक, राजसी और तामसी {प्रकृतिगत}
भावा तान् मत्त एव इति विद्धि	{अवसर्पिणी} भाव हैं, उनको मेरे {कैलाशी वासी महादेव} से ही हैं- ऐसा जान।
अहं तेषु न तु ते मयि	मैं {ब्रह्मलोक वासी सदाशिव} उनमें {व्यापी} नहीं; किन्तु वे मेरे {महादेव मूर्ति में काल क्रमानुसार} हैं।

[13-19 आसुरी स्वभाव वालों की निन्दा और भगवद्भक्तों की प्रशंसा]

त्रिभिः गुणमयैः भावैः एभिः सर्वं इदं जगत्। मोहितं न अभिजानाति मां एभ्यः परं अव्ययं।। 7/13

एभिः त्रिभिः गुणमयैः भावैः	{मानवों के पिता आदम के सत-रज-तम} इन तीन गुणयुक्त भावों द्वारा {अज्ञान से}
मोहितं इदं सर्वं जगत् एभ्यः परं	मोहित हुआ यह {अधोमुखी सृष्टि का} सारा संसार इन {गुणों} से परे
मां अव्ययं न अभिजानाति	मुझ अविनाशी, {तुरीया सदाशिव-ज्योति के समान बने एक मुखी रुद्राक्ष} को नहीं जानता।

दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मां एव ये प्रपद्यन्ते मायां एतां तरन्ति ते।। 7/14

हि एषा मम गुणमयी दैवी	निश्चय ही यह {दिह+ली में महरौली के मायापति बने} मेरे {महादेव• वाली} त्रिगुणमयी दैवी {महा}
माया दुरत्यया ये मां एव	माया को पार करना कठिन है। जो {तन-मन-धनादि सर्व रूप से} मेरी {शिव+बाबा की} ही
प्रपद्यन्ते तैतां मायां तरन्ति	{अव्यभिचारी} शरण लेते हैं, वे {अष्टमूर्ति देवात्माएँ} इस {बीजरूप} माया को पार कर जाते हैं।

•{शंकर क्या करते हैं? उनका पार्ट ऐसा वण्डरफुल है जो तुम विश्वास कर न सको। (मु.ता.14.5.70 पृ.2 आदि)}

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। मायया अपहृतज्ञानाः आसुरं भावं आश्रिताः।। 7/15

मायया अपहृतज्ञानाः आसुरं	{इस महा} माया द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है, {वे द्वैतवादी दनुपुत्र दैत्य} आसुरी
भावं आश्रिताः दुष्कृतिनो	{हिंसा के मनमाने} भावों के आश्रित हुए, {भ्रष्टइन्द्रियों की भी हिंसा वाले} दुष्कर्मी {और ऐसे ही}
नराधमाः मूढाः मां न प्रपद्यन्ते	{नर-निर्मित नरक के} नीच मनुष्य/मूर्ख लोग मेरी शरण में {सहज रीति} नहीं आते।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः अर्जुन। आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। 7/16

भरतर्षभ अर्जुन चतुर्विधाः सुकृतिनः	हे भरत/विष्णु वंश में श्रेष्ठ अर्जुन! {द्वापुर युग से} चार प्रकार के पुण्यकर्मी {क्षीणपापा}
जनाः मां भजन्ते आर्तः जिज्ञासुः	लोग 'मुझ {निराकार+साकार} को' भजते हैं- विपत्तिग्रस्त, कुछ जानने के इच्छुक,
अर्थार्थी च ज्ञानी	धनार्थी और {तीनों लोकों में सब-कुछ जानने-समझने के प्रयासी} = ज्ञानी।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते। प्रियः हि ज्ञानिनः अत्यर्थं अहं स च मम प्रियः।। 7/17

तेषां एकभक्तिः	उन {पूर्वजन्मकृत पुण्य कर्मों के अभ्यासियों} में एक {हीरो पात्रधारी+शिवज्योति} की {अव्यभिचारी} याद वाला
नित्ययुक्तः ज्ञानी विशिष्यते हि ज्ञानिनः	सदा योगी, ज्ञानी {त्रिनेत्री महादेवात्मा} विशेष श्रेष्ठ है; क्योंकि ज्ञानी को
अहं प्रियः च स मम अत्यर्थं प्रियः	मैं {शिव ज्योति} प्रिय हूँ और वह {मेरा अटूट ज्ञानवारिस} मुझको {सदा} अति प्रिय है।

{बाबा कहते ज्ञानी तू (1) आत्मा ही मुझे (सदाशिव को अति) प्रिय है। ऐसे नहीं कि योगी प्रिय नहीं है। जो (जितना) ज्ञानी होगा वह (उतना) योगी भी जरूर होगा। (मु.ता.4.12.88 पृ.2 मध्य) {'ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा'} (तु. रामायण) {जैसे 'ज्ञानिनामग्रगण्यं' हनुमान भी विशेष प्रिय कहा गया है।}

उदाराः सर्व एव एते ज्ञानी तु आत्मा एव मे मतं। आस्थितः स हि युक्तात्मा मां एव अनुत्तमां गतिं।। 7/18

एते सर्व एव उदाराः तु ज्ञानी आत्मा	{यों तो} ये सारे चारों ही श्रेष्ठ हैं; किन्तु {सम्पूर्ण} ज्ञानी {तो जैसे मेरी अपनी} आत्मा
एव मे मतं हि स युक्तात्मा मां	ही हैं-{ये} मेरा मत है। क्योंकि वह योगी आत्मा मुझ {सदाशिव ज्योति की परमब्रह्मलोकीय}
अनुत्तमां गतिं एव आस्थितः	सर्वोत्तम गति में ही •आधारित है। {इसीलिए सम्पूर्ण संगठित चतुर्मुखी ब्रह्मा को हज़ार भुजाओं वाला कार्तवीय अर्जुन भी दिखाते हैं, किन्तु अमोघवीर्य शंकर को इतनी और ऐसी सहयोगी भुजाएँ नहीं दिखाते।}

•{"जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो।" (तु.रामायण) और तो सभी सीताएँ हैं जो अपरा प्रकृति+माया के आधीन हो जाती हैं। इसलिए यादगार में आज भी गाँवों में गाते हैं- 'राजा एक राम, भिखारी सारी दुनियाँ।'}

बहूनां जन्मनां अन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वं इति स महात्मा सुदुर्लभः।। 7/19

ज्ञानवान् बहूनां जन्मनां अन्ते मां	ज्ञानी बहुत {अर्थात् 84} जन्मों के अंत {वानप्रस्थ/वाणी से परे की स्थिति} में मुझको {ही}
प्रपद्यते सर्वं वासुदेवः	पाता है। सारा {जड़जंगम जगत उस ज्ञान धन-दाता} वसुदेव {= शिवबाप के पुत्र वासुदेव की
इति स महात्मा सुदुर्लभः	रचना} है, ऐसा वह महान् आत्मा {महादेव, एक मुखी रुद्राक्ष संसारभर में} बड़ा दुर्लभ है।

[20-23 अन्य देवताओं की उपासना का विषय]

कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः। तं तं नियमं आस्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।। 7/20

तैः-2 कामैः हृतज्ञानाः तं-2	उन-2 {इन्द्रिय भोगों की} कामनाओं से अपहृत ज्ञान वाले, {द्वापुर से} उन-2 {नीची कुरी में}
नियमं आस्थाय	{कन्वर्टिड अधकचरे ज्ञानी ब्राह्मण मुनियों के} नियमों का आधार ले, {अनादि निश्चित ड्रामानुसार बरबस}
स्वया प्रकृत्या नियताः	अपने {-2 पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग के} स्वभाव से बँधे हुए {पूर्वजन्मकृत अच्छे- बुरे कर्मानुसार}
अन्यदेवताः प्रपद्यन्ते	दूसरे {नीची कुरी के ब्राह्मण-} देवों की शरण में {शूटिंग-प्रमाण कल्प-2} जाते रहते हैं।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धया अर्चितुं इच्छति। तस्य तस्य अचलां श्रद्धां तां एव विदधामि अहं।। 7/21

यः-2 भक्तः यां-2 तनुं	जो-2 भक्त {रूपी रावण के बंधन की आदी सीताएँ} जिस•-2 {नं वार ब्राह्मण-} तन की
श्रद्धया अर्चितुं इच्छति तस्य-2	श्रद्धा -{भक्ति भावना} से अर्चना के लिए इच्छा करते हैं, उस-2 {सम्बन्ध-सम्पर्क या संसर्ग में}
ताम् एव अचलां श्रद्धां अहं विदधामि	उसी {लगन की} अचल श्रद्धा को मैं {कल्प-2 पु. संगमी शूटिंग में} निश्चित करता हूँ।

•{जो जिनकी पूजा (मनौती) करते हैं वह उसी धर्म के हैं न! (मु.ता.4.5.74 पृ.3 आदि)(गीता 7-23 भी)}

स तया श्रद्धया युक्तः तस्य आराधनं ईहते। लभते च ततः कामान् मया एव विहितान् हि तान्।। 7/22

तया श्रद्धया युक्तः स तस्याराधनं	उस श्रद्धा से लगा हुआ वह {भक्त} उस {कुरी के ब्राह्मण सो देव} की आराधना
ईहते च हि ततः मया एव	{सेवाभाव} चाहता है और निःसन्देह उस {ब्राह्मणदेव} से मेरे द्वारा ही {पु. संगम की}
विहितान् तान् कामान् लभते	{मानसी सृष्टि में} निर्मित उन कामनाओं को {जो मन में सोचता है, वही चतुर्युगी में} पाता है।

अन्तवत् तु फलं तेषां तत् भवति अल्पमेधसां। देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मां अपि।। 7/23

तेषां अल्पमेधसां तु तत् फलं	उन अल्पबुद्धि लोगों का तो वह {मनमाना} फल {संगमी शूटिंग प्रमाण अल्पकालीन}
अन्तवत् भवति देवयजः देवान्	विनाशी {ही} होता है; {क्योंकि} देवयाजी {मुझे न पाकर नं. वार बने} देवात्माओं को
यान्ति मद्भक्ताः मां अपि यान्ति	पाते हैं {और} मेरे भक्त मुझ {सर्वोत्तम शिवसमान बने हीरो पार्टधारी महादेव} को ही पाते हैं।

[24-30 भगवान के प्रभाव और स्वरूप को न जानने वालों की निन्दा और जानने वालों की महिमा]

अव्यक्तं व्यक्तिं आपन्नं मन्यन्ते मां अबुद्धयः। परं भावं अजानन्तः मम अव्ययं अनुत्तमं।। 7/24

अबुद्धयः मां अव्यक्तं व्यक्तिं	बेसमझ लोग मुझ अव्यक्त {शिव} को व्यक्त {अस्थाई रथ चतुर्मुखी ब्रह्मा या संदेशी} में
आपन्नं मन्यन्ते मम अव्ययं परं	आया हुआ मानते हैं {और} मेरे {84 के चक्र में सदा ऑलराउंडर} अविनाशी परंब्रह्म के
अनुत्तमं भावं अजानन्तः	सर्वोत्तम {सहनशील मातृ} भाव को नहीं •पहचान पाते। {अतः द्वापरयुग से पराधीन ही रहते हैं।}

•{निराकारी चेहरे के बुद्ध-क्राइस्टादि को ही न पहचानने कारण धर्म के धक्के खिलाते हैं, तो अविनाशी सत्य सनातन सद्धर्म के धर्मस्थापक 'अल्लाह अव्वल दीन' सुप्रीम शिव को योगेश्वर सनत्कुमार में आदिदेव को कैसे पहचानेंगे? छुपा रुस्तम तो बाद में ही खुलेगा ना! बाप गुप्त तो पण्डा रूप पांडु के पुत्र पाण्डव भी गुप्त।}

न अहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मूढः अयं न अभिजानाति लोको मां अजं अव्ययं।। 7/25

योगमायासमावृतः अहं सर्वस्य	योगमाया से ढका हुआ मैं {शिवज्योति समान बना शिव+बाबा} सब {मानवीय आत्माओं} के लिए
प्रकाशः न अयं मूढः लोको मां	प्रगट नहीं हूँ। यह {शास्त्रों की सुनी-सुनाई बातों (गीता 2-53) से} मूर्ख बना यह संसार मुझ
अजं अव्ययं न अभिजानाति	अजन्मा {दिव्यजन्मा,} अविनाशी {शिवसमान बने बाबा विश्वनाथ} को नहीं जान पाता।

वेद अहं समतीतानि वर्तमानानि च अर्जुन। भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।। 7/26

अर्जुन अहं समतीतानि च	हे अर्जुन! मैं {अजन्मा होने से अखूट ज्ञान-भंडार सदाशिव} सम्पूर्ण भूतकालीन और
वर्तमानानि च भविष्याणि भूतानि वेद	वर्तमान वा भविष्यगत प्राणियों को {बुद्धिमानों की बुद्धि होने से} जानता हूँ;
तु मां कश्चन न वेद	किन्तु मुझ {निराकारी+साकारी अव्यक्तमूर्ति हीरो शंकर महादेव} को कोई नहीं जानता। {गीता 7/25}

•{मनसस्तु परा बुद्धि .... परतस्तु सः (गीता 3-42)।। यानी बुद्धि रूप त्रिनेत्री शंकर से भी परे सदाशिव ज्योति शिव है।}

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत। सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप।। 7/27

परंतप भारत इच्छाद्वेषसमुत्थेन	हे शत्रुतापक! हे भरतवंशी! इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए, {क्षणै-2 परिवर्तनीय}

द्वन्द्वमोहेन सर्गे सर्वभूतानि	{सुख-दुःखादि} द्वन्द्वों के मोह से कल्पांतकाल {के घोर कलियुगान्त} में सब प्राणी
सम्मोहं यान्ति	{द्वैतवादी द्वापुरयुग से विदेशी या विधर्मी धर्मपिताओं से प्रभावित होकर} सम्पूर्ण मूढ़ता को पहुँच जाते हैं।

येषां तु अन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणां। ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।। 7/28

तु येषां पुण्यकर्मणां जनानां पापं	परंतु {मेरी अव्यभिचारी याद से} जिन पुण्यकर्मी {ब्राह्मण-} जनों के पाप- {भंडार} का {पूरा}
अन्तगतं ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता	अंत हुआ है, वे {सुख-दुःखादि} द्वन्द्वों के मोह से {पु. संगम के जन्म में} विमुक्त हुए
दृढव्रताः मां भजन्ते	{धर्मानुकूल कर्मयोगी बनकर ब्रह्मचर्य में} दृढ़व्रत वाले मुझ {शिवबाबा} को {ही} याद करते हैं।

जरामरणमोक्षाय मां आश्रित्य यतन्ति ये। ते ब्रह्म तत् विदुः कृत्स्नं अध्यात्मं कर्म च अखिलं।। 7/29

ये जरामरणमोक्षाय मां आश्रित्य	जो जरा-मरण {आदि दुखों से} मुक्ति-अर्थ {एकमात्र} मेरा आसरा लेकर
यतन्ति ते तत् ब्रह्म कृत्स्नं	{पुरुषार्थ का} प्रयत्न करते हैं, वे उस परंब्रह्म, सम्पूर्ण {ऑलराउंड हीरो महादेव}
अध्यात्मं च अखिलं कर्म विदुः	{रूप} में 84 के पार्टधारी रिकॉर्ड को और सारे {अच्छे-बुरे} कर्मों को जान जाते हैं।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः। प्रयाणकाले अपि च मां ते विदुः युक्तचेतसः।। 7/30

ये आधिदैवं मां	{सृष्टि के आदि पु. संगमयुग में} जो देवताओं के अधिष्ठाता मुझ {सदाशिव समान महादेव} को,
साधिभूत च साधियज्ञं	{सभी} प्राणियों के अधिपति {भूतनाथ} सहित और {रूद्र-} ज्ञानयज्ञाधिपति शिवबाबा सहित
विदुः ते युक्तचेतसोऽपि	{अखूट ज्ञान भंडारी, अव्यक्त-अभोक्ता शिव को} जानते हैं, वे योगयुक्त मन-बुद्धि वाले भी
प्रयाणकाले मां च विदुः	{जड़ चेतन के} प्रयाणकाल में मुझ {परम+आत्मरूप सदाशिव ज्योति} को ही जान जाते हैं।

अध्याय-8

अक्षरब्रह्मयोग-नामक 8वाँ अ0।।

[1-7 ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादि के विषय में अर्जुन के 7 प्रश्न और उनका उत्तर।]

अर्जुन उवाचः-किं तत् ब्रह्म किं अध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम। अधिभूतं च किं प्रोक्तं अधिदैवं किं उच्यते।। 8/1

पुरुषोत्तम तत् ब्रह्म किं	हे आत्माओं में सर्वोत्तम सदाशिवज्योति! वह {सर्व का माननीय परम} ब्रह्म क्या है?
अध्यात्मं किं कर्म किं अधिभूतं	आत्मा के अंदर क्या है? कर्म क्या है? {प्राणवायु धारणकर्ता} प्राणियों का अधिपति
किं प्रोक्तं च अधिदैवं किं उच्यते	किसको कहते हैं? और {द्विलोक में रहने वाले} देवों का अधिपति किसे कहा जाता है?

अधियज्ञः कथं कः अत्र देहे अस्मिन् मधुसूदन। प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयः असि नियतात्मभिः।। 8/2

मधुसूदन अत्र देहे अधियज्ञः कथं	हे मधु जैसे मीठे काम के हंता {शिवबाबा}! इस देह में यज्ञ का अधिपति कैसे {और}
कः चास्मिन् प्रयाणकाले	कौन है? और इस {देह} में महामृत्यु के समय {सच्चीगीता फैमिली-प्लानिंग में}
नियतात्मभिः कथं ज्ञेयोऽसि	वशीभूत मन-बुद्धि वालों द्वारा कैसे जानने योग्य है?

श्रीभगवानुवाचः-अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावः अध्यात्मं उच्यते। भूतभावोद्भवकरः विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः।। 8/3

अक्षरं परमं ब्रह्म स्वभावः	क्षरितहीन/अमोघवीर्य {शिवबाबा} परंब्रह्म है। {आत्म-रिकॉर्ड में} अपना भाव
अध्यात्ममुच्यते भूतभावोद्भवकरः	अध्यात्म {अधि+आत्म} कहा जाता है। प्राणी-भाव की {मानसी} उत्पत्ति करने वाला
विसर्गः कर्मसंज्ञितः	{विश्व-सेवार्थ तन-धन आदि का} त्याग {यज्ञ-सेवा का सर्वोत्तम} कर्म कहा जाता है।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्च अधिदैवतं। अधियज्ञः अहं एव अत्र देहे देहभृतां वर।। 8/4

देहभृतां वर क्षरो	हे देहधारियों में श्रेष्ठ {=हीरोपार्टधारी! 16 कला सतयुगादि से ही अधोमुखी अर्थात्} क्षरित
भावः अधिभूतं च	भाव वाला प्राणियों का अधिपति {जो सतयुग में भी भोगी & कलाबद्ध कृष्णचन्द्र} है तथा
पुरुषः अधिदैवतं	देहरूपा पुरी में आराम से शयनकर्ता {कलातीत विष्णु या} देवों का अधिपति महादेव {ही} है।
अत्र देहे अधियज्ञः अहमेव	यहाँ {अर्जुन के रथरूप} देह में रुद्र-यज्ञ का अधिपति {महारुद्र शिव+बाबा} मैं ही {हूँ}।

अन्तकाले च मां एव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरं। यः प्रयाति स मद्भावं याति न अस्ति अत्र संशयः।। 8/5

यः अन्तकाले मां एव स्मरन्	जो अन्तकाल में भी मुझ {एकमात्र शिवबाबा} को ही {अव्यभिचारी होकर} याद करते हुए
कलेवरं मुक्त्वा प्रयाति स मद्भावं	शरीर {या देहभान} को छोड़कर महाप्रयाण करता है, वह {योगी} मेरे {राजाई} भाव को
याति च अत्र संशयः नास्ति	पाता है और इसमें संशय नहीं है। {वह मेरे जैसा ही युगानुरूप सुखदायी शासक होगा।}

यं यं वा अपि स्मरन् भावं त्यजति अन्ते कलेवरं। तं तं एव एति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।। 8/6

कौन्तेय वा यं-2 भावं अपि	हे {देहभान हरिणी} कुन्ती के पुत्र! अथवा जो-2 {संबन्ध के} भाव को भी {अर्जुन-रथ में}
स्मरन् अन्ते कलेवरं त्यजति सदा	याद करता हुआ अंत में शरीर {या देहभान} को त्यागता है, {तो} सदा {उस जन्म में}
तद्भावभावितः तं-2 एव एति	उसी भावना से प्रभावित हुआ उस-2 {संबंध• के भाव} को ही पाता है।

•{जैसे स्त्री की याद में शरीर छोड़ेगा तो स्त्री चोला ही मिलेगा। इसीलिए 'अंत मते सो गते' की कहावत प्रसिद्ध है।}

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मां अनुस्मर युध्य च। मयि अर्पितमनोबुद्धिः मां एव एष्यसि असंशयं।। 8/7

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मां अनुस्मर	इसलिए हर समय {ऊँच-ते-ऊँच हीरों में} मुझ {शिवज्योति} को स्मरण कर
च युध्य असंशयं मयि	और {विकारों की माया से अहिंसक} युद्ध कर। निस्सन्देह मेरे में
अर्पितमनोबुद्धिः मां एवैष्यसि	अर्पित हुई मन-बुद्धि वाला {तू इस राजयोग से} मेरे {राजाई• भाव} को ही पा लेगा।

लक्ष्यः- •{साक्षात् ईश्वर द्वारा सिखाए राजयोग/बुद्धियोग से ही कलियुग के अंत तक स्वाधीन राजाओं की राजाई चली है। अन्यथा कोई भी विधर्मी धर्मपिताओं ने राजाई का ज्ञान नहीं दिया, सबने आधीन ही बनाया है।}

[8-22 भक्तियोग का विषय।]

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थ अनुचिन्तयन्।। 8/8

पार्थ अनुचिन्तयन् अभ्यास-	हे पृथ्वी के राजा! विचार-मंथन करते हुए, {इस राजयोग के} अभ्यास द्वारा
योगयुक्तेन नान्यगामिना चेतसा	योगयुक्त हुई अव्यभिचारी मन-बुद्धि से, {अर्जुन-रथ में प्रविष्ट 'मामेकं' की सतत् याद से}
दिव्यं परमं पुरुषं याति	{ज्ञानसूर्य स्वरूप} दिव्य प्रकाशयुक्त परमपुरुष {परमपिता शिव+बाबा} को पाता है।

कविं पुराणं अनुशासितारं अणोरणीयांसं अनुस्मरेत् यः। सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।। 8/9

प्रयाणकाले मनसा अचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव। भ्रुवोः मध्ये प्राणं आवेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषं उपैति दिव्यं।। 8/10

यः पुराणं कविं अनुशासितारं	जो {योगी} प्राचीनतम {गीतकार} कवि को, {सब प्राणियों के} शासक,
अणोरणीयांसं सर्वस्य धातारं	सूक्ष्माणु से {भी} अतिसूक्ष्म, सब {जड़-चेतन} के धारणकर्ता, {वटवृक्षरूपसृष्टि के बीज}
अचिन्त्यरूपं आदित्यवर्णं	{बने अति सूक्ष्म} अचिन्त्य रूप वाले, सूर्य की तरह {अखूट ज्ञानप्रकाश के तीक्ष्ण} वर्ण वाले,
तमसः परस्तात् प्रयाणकाले	अज्ञानान्धकार से परे {ज्ञानसूर्य शिवबाबा को पु.संगमयुगी} प्रलयकाल में
भक्त्याचलेन च मनसा योगबलेन	अचल-अडोल भक्ति-भाव से और {अव्यभिचारी} मन-बुद्धि द्वारा योगबलपूर्वक
युक्तः भ्रुवोः मध्ये एव प्राणं	लगा हुआ, भ्रूमध्य में ही प्राण {रूप आत्म-ज्योतियुक्त सूक्ष्मबिंदु स्वरूप} को
सम्यक् आवेश्य अनुस्मरेत् स तं	अच्छे-से स्थिर कर याद करता है, वह उस {श्रेष्ठतम हीरो पार्टधारी},

दिव्यं परं पुरुषं उपैति	{शिवसमान} दिव्यज्योति परमात्मा को पाता है। {जैसे शिवबाप स्वयं जन्म-2 का ही साथी हो गया हो।}

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यत् यतयो वीतरागाः। यत् इच्छन्तः ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये।। 8/11

वेदविदः यत् अक्षरं वदन्ति वीतरागाः	{चौमुखी} ब्रह्मा-वाणी के ज्ञाता जिसे अमोघवीर्य बताते हैं, रागरहित {सहजराज}
यतयः यद्विशन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं	योगीजन जिस {ऊर्ध्वमुखी परंब्रह्मा} में प्रवेश पाते हैं, जिसके इच्छुक ब्रह्मचर्य का
चरन्ति ते तत्पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये	{ज्ञानयुक्त} आचरण करते हैं, तुझे उस {विष्णुलोकीय} पद को संक्षेप में बताऊँगा।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्नि आधाय आत्मनः प्राणं आस्थितो योगधारणां।। 8/12

सर्वद्वाराणि संयम्य च मनः हृदि	सारे {ही नव} इन्द्रिय-द्वार {अविचल रूप से} संपूर्णतः वश करके और मन को अन्तःकरण में
निरुध्य आत्मनः प्राणं योग	रोककर, {ज्योतिबिंदुरूप} आत्मा की प्राण-शक्ति को {शिवबाबा से} योग की
धारणां आधाय मूर्ध्नि आस्थितः	धारणा में आधारित, {निरंतर परमात्मा की} भृकुटि {रूप अकालतख़्त के मध्य} में स्थिर होकर।

ओम इति एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मां अनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिं।। 8/13

ॐ इति एकाक्षरं व्याहरन् मां ब्रह्म	'ॐ' - ऐसा एकाक्षर {मन से} व्यवहार में लाते हुए, मुझ परंब्रह्म को {प्रीतिपूर्वक}
अनुस्मरन् देहं त्यजन् यः प्रयाति	याद करता हुआ {और} शरीर को त्यागता हुआ जो {कल्पान्त में} महामृत्यु पाता है,
स परमां गतिं याति	वह {संगठित चतुर्भुजी विष्णु के कलातीत अतीन्द्रिय सुखरूप वैकुण्ठ की} परमगति को पाता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्य अहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। 8/14

अनन्यचेताः यः मां नित्यशः सततं	अव्यभिचारी {मनबुद्धि रूपी} चित्त से जो {योगी} मुझको नित्य-निरन्तर {लगावपूर्वक}
स्मरति पार्थ तस्य नित्ययुक्तस्य	{प्रेम से} याद करता है, हे कुन्तीपुत्र! उस नित्य-नियमपूर्वक लगनशील {रहने वाले}

योगिनः अहं सुलभः	योगी को मैं सुखपूर्वक मिलता हूँ। {इसीलिए संसार में भारतीय प्राचीन सहजराजयोग प्रसिद्ध है।}

मां उपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयं अशाश्वतं। न आप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।। 8/15

मां उपेत्य परमां	मेरे {पंचमुखी परमब्रह्म महादेव} पास पहुँचकर {विष्णु चतुर्भुज रूप} परमोत्कृष्ट {वैकुण्ठवासी की}
संसिद्धिं गताः महात्मानः अशाश्वतं	संपूर्ण सिद्धि को पहुँचे हुए महात्माएँ {इस} विनाशी {नारकीय/द्वापुर-कलियुगी}
दुःखालयं पुनर्जन्म न आप्नुवन्ति	दुखधाम में {सीधे} पुनर्जन्म नहीं पाते, {वे सत-त्रेता के 2500 वर्ष सुखधाम ही जाते हैं।}

आब्रह्मभुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनः अर्जुन। मां उपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। 8/16

अर्जुन आब्रह्मभुवनाल्लोकाः	हे अर्जुन! {यद्यपि} ब्रह्मलोक से लेकर सभी {स्वर्ग & नरकों के 7 विधर्मी धर्मखण्ड}
पुनरावर्तिनः तु कौन्तेय	{कल्प-2} पुनः-2 आवर्तन वाले हैं; किन्तु हे {देहभाननाशिनी} कुन्ती के पुत्र! {पु. संगम में}
मां उपेत्य पुनर्जन्म न विद्यते	मेरे पास पहुँचकर {21 जन्म से पहले इस दुखधाम में नारकीय} जन्म फिर से नहीं होता।

{द्विसहस्रार्धवर्षाणां}अहर्यत् ब्रह्मणः विदुः। {एतेषां प्रमाणं} रात्रिं ते अहोरात्रविदः जनाः।। 8/17

ब्रह्मणः अहः द्विसहस्रार्धवर्षाणां	{ज्ञानचन्द्रमा} ब्रह्मा का {ज्ञान प्रकाशयुक्त} दिन {उत्तरायण मार्ग} ढाई हज़ार वर्षों का है।
एतेषां प्रमाणं	{सत-त्रेतायुगी स्वर्ग और} इतने ही प्रमाण {2500 वर्ष} की {द्वापर-कलियुगी नारकीय विधर्मियों वाली}
रात्रिं यत् विदुः ते	रात्रि है। {अज्ञानान्धकार-युक्त •दक्षिणायन मार्ग का निमित्त सदा अपूर्णनीय संगठित चतुर्मुखी ज्ञानचन्द्रमा ब्रह्मा ही है। (गीता-8/18,19,24,25)} ऐसा जो जानते हैं, वे {मानते हैं कि ब्रह्मा की याद, मूर्ति, मंदिर क्यों नहीं बने?}
जनाः अहोरात्रविदः	{एडवांस} ब्राह्मण जन {भोगी ब्रह्मा के यथार्थ} दिन और रात्रि के जानकार हैं।

नोटः-हैविनली गॉडफादर निर्मित स्वर्गीय दिन भी ढाई हज़ार वर्ष है और प्रैक्टिकल मानवीय हिस्ट्री में विधर्मियों के द्वैतवादी द्वापुर से अन्यान्य धर्मपिताओं द्वारा यह नर-निर्मित नरक रूप अज्ञानरात भी 2500 वर्ष है।

अव्यक्तात् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्ति अहरागमे। {रात्र्यान्ते} प्रलीयन्ते तत्र एव अव्यक्तसञ्ज्ञके।। 8/18

अहरागमे अव्यक्तात् सर्वाः	{शूटिंग में ही ब्रह्मा का स्वर्गीय} दिन आने पर {निराकारी} अव्यक्तधाम {आत्मलोक} से सभी
व्यक्तयः प्रभवन्ति {रात्र्यान्ते}	व्यक्त प्राणी {नं. वार} यहाँ {सृष्टि में} आते हैं। {फिर ब्रह्मा की अज्ञानान्धकार की} रात्रि-अंत में
अव्यक्तसंज्ञके तत्रैव प्रलीयन्ते	अव्यक्तधाम नामक उस ही {परमधाम• में नं.वार 7 अरब की संख्या} में लीन हो जाते हैं।

•यह अव्यक्त परमधाम सर्वसामान्य निराकारी अणुरूप आत्माओं व निराकार परमपिता शिव का भी अपना सामान्य घर है, जहाँ से आकर ये सभी पार्टधारी संसारी सृष्टि-रंगमंच पर जन्म-2 शरीर रूपी वस्त्र बदल-2 खेलते हैं।

भूतग्रामः स एव अयं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते। {रात्र्यान्ते} अवशः पार्थ प्रभवति अहरागमे।। 8/19

स एवायं भूतग्रामः भूत्वा-2	वही-2 यह {मानवीय} प्राणी-समुदाय {चतुर्युगी में नं. वार} बार-2 जन्म लेकर {यहाँ सृष्टि से}
{रात्र्यान्ते} अवशः प्रलीयते	{चतुर्मुखी ब्रह्मा की} रात्रि के {प्रलय-} अंत में बरबस {अव्यक्तधाम में} पूरा लीन हो जाता है।
पार्थ अहरागमे प्रभवति	{और} हे पृथापुत्र! {16 कला का सतयुगी स्वर्गीय} दिन आने पर {नं.वार} प्रगट होने लगता है।

परः तस्मात् तु भावः अन्यः अव्यक्तः अव्यक्तात् सनातनः। यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।।8/20

तस्मात् अव्यक्तात् तु परः यः अव्यक्तः	उस अदर्शनीय {दिवात्माओं} से भी प्रबल जो अदर्शनीय {बीजरूप रुद्रगणों का}
अन्यः सनातनः भावः	दूसरा प्राचीनतम {सृष्टिवृक्षीय 4.5 लाख असल सूर्यवंशी• चैतन्य सितारों का पितृ-} भाव है,
स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति	वह सब प्राणियों के{पार्ट का समयांतराल} नष्ट होने पर {भी} नहीं विनाश होता।

{•आकाशीय 9 लाख जड़ सितारों मानिंद धरती के बीजरूप पितृभावी दिन के 4.5 लाख अतीन्द्रिय सुख वाले वैकुण्ठ के कलातीत चैतन्य सितारे हैं जिनमें 16 कला सतयुगी कृष्णचन्द्र जैसे 4.5 लाख रात्रि के मातृ-भावी भी मिल जाते हैं।}

अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः तं आहुः परमां गतिं। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम।। 8/21

अव्यक्तः अक्षरः इत्युक्तः तं	{उसे} अप्रगट अविनाशी {'लिंगरूप परमब्रह्मलोक'} - ऐसे कहा जाता है। उसको {विष्णु की}
परमां गतिं आहुः यं प्राप्य न	{वैकुण्ठलोकीय} परमगति कहते हैं। जिसको पाकर {बीजरूप• रुद्रगण इस दुखधाम में} नहीं
निवर्तन्ते तत् मम परमं धाम	वापस आते, वह {1 पितृ-प्रधान लिंग भी} मेरा •परमधाम है।

•{सृष्टिवृक्ष के सभी धर्मों से नं. वार चुने हुए श्रेष्ठतम सूर्यवंशी श्रेणी के रुद्राक्षरूप सितारे हैं, जो हीरे जैसे, नं.वार देवेतर, ऑलराउंडर & प्रायः पुरुषभावी ही रहते हैं, जिन्हें मानवीय प्राणियों का पितरगण कहा जाता है}

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया। यस्य अन्तःस्थानि भूतानि येन सर्वं इदं ततं।।8/22

पार्थ स परः पुरुषः त्वनन्यया	हे कुन्तीपुत्र! वह {बेहद सृष्टि रंगमंच का} हीरो परमब्रह्म •परमात्मा तो अव्यभिचारी
भक्त्या लभ्यः यस्य भूतानि	भावना की याद द्वारा प्राप्य है। जिस {जगत्पिता} में {सभी बीज जैसे रुद्राक्षगण रूप} प्राणी
अन्तःस्थानि येनेदं सर्वं ततं	स्थित हैं {और} जिस {सृष्टिवृक्ष के बीज मानवीय 1 बाप} से यह सारा {सृष्टिवृक्ष} विस्तृत है।

{मैं परमपिता+परमात्मा सदाशिव सृष्टिवृक्ष के 7 अरब पत्तों में व्यापक नहीं। "न चाहं तेषु अवस्थित" (गीता 9/4)}

•{वह एक ही आत्मा सो परमपार्टधारी हीरो मूर्तिमान महादेव है, जिसे गीता में बार-2 परम+आत्मा कहा है। (गीताः 6-7; 13-22,31; 15-17)} इसीलिए एकमात्र 'शंकर' नाम ही शिव से जुड़ा है।

[23-28 शुक्ल और कृष्णमार्ग का विषय]

यत्र काले तु अनावृत्तिं आवृत्तिं च एव योगिनः। प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।। 8/23

भरतर्षभ यत्र काले प्रयाताः	हे {विष्णु रूप} भरतवंश में श्रेष्ठ! जिस {पंचमुखी ब्रह्मा के आदि उत्तरायण} काल में प्रकृष्ट यात्री
योगिनोऽनावृत्तिं चावृत्तिं	योगीजन {दुखधाम} नहीं आते अथवा {जो भी अद्वैतवादी देवगण द्वापर से} आते {भी}
यान्ति तं कालं वक्ष्यामि	हैं, {तो भी} उस {पु. संगमयुगी 60 वर्षीय विशेष शूटिंग} काल को {भी आगे} बताऊँगा।

अग्निः ज्योतिः अहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणं। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।8/24

अग्निः ज्योतिरहः शुक्लः	अग्नि {लिंगरूप प्रातः सूर्य} का यह प्रकाशमान दिन={स्वर्णिम स्वर्गीय पु. संगम} शुक्ल पक्ष,
उत्तरायणं षण्मासाः तत्र	उत्तरायण के छः माह, वहाँ के {सूर्यवंशी सन् 1977-78 से 2037-38 तक की रूहानी दौड़ के}
प्रयाताः ब्रह्मविदः	प्रकृष्ट देवयात्री, परमब्रह्म {+परमात्मा} के जानकार {एडवांस गीता ज्ञान के रूहानी ब्राह्मण}
जनाः ब्रह्म गच्छन्ति	लोग {संसार के बीजरूप रुद्रगणों के} परमब्रह्मलोक {ही} जाते हैं। {ऑलराउंडर पार्टधारी हैं ना!}

धूमो रात्रिः तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनं। तत्र चान्द्रमसं ज्योतिः योगी प्राप्य निवर्तते।। 8/25

तथा धूमः रात्रिः कृष्णः षण्मासाः	तथा धूमिल रात्रि {=कलाओं में बंधायमान} कृष्णपक्ष {जो सूर्यवंशी रामपक्ष नहीं है} 6 माह
दक्षिणायनं तत्र	{हिंसक मुस्लिमादि आसुरी धर्मों का} दक्षिणायन मार्ग {अधोमुखी चौमुखी ब्रह्मा का} है। वहाँ {बरबस मृत्यु प्राप्त}
योगी चांद्रमसं	{अर्ध} योगी {अनेकों से सुनी सुनाई बातों के कारण से कलाबद्ध} ज्ञानचन्द्र ब्रह्मा के {धूमिल}
ज्योतिः प्राप्य निवर्तते	प्रकाश को प्राप्त करके, {इसी भटकाने वाले द्वैतवादी नरक में भूतादि बनकर} लौटता है।•

•{जैसे चतुर्मुखी ब्रह्मा के पक्षपाती बी.के. प्रकाशमणि, बी.के. जगदीश, बी.के रमेश आदि सारे ही नीची कुरी के ब्राह्मण सूक्ष्म देह ले रहे हैं, जो पु. संगमी शूटिंग प्रमाण द्वापुर से ही भूत-प्रेत भी बनते रहते हैं।}

शुक्लकृष्णे गती हि एते जगतः शाश्वते मते। एकया याति अनावृत्तिं अन्यया आवर्तते पुनः।। 8/26

जगतः शुक्लकृष्णे एते गती	{2½+2½ हज़ार वर्षीय} जगत की शुक्ल और कृष्ण, ये दोनों गतियाँ {शूटिंग में भी}
हि शाश्वते मते एकया	{& चतुर्युगी में भी} निश्चय ही शाश्वत मान्य हैं। एक से {सीधे ढाई हज़ार वर्ष नरक में}
अनावृत्तिं अन्यया पुनरावर्तते	नहीं आते, दूसरी {कृष्णगति} से पुनः {इन्हीं हिंसक विधर्मियों के नरक में भी} लौटते हैं।

न एते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन। तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भव अर्जुन।।8/27

पार्थ एते सृती जानन् कश्चन योगी	हे पृथ्वीराज! इन दोनों मार्गों को जानने वाला कोई योगी {कृष्णचन्द्र की कृष्णगति के}
मुह्यति न तस्मात् अर्जुन सर्वेषु	मोहान्धकार को नहीं पाता। इस कारण हे अर्जुन! सभी {युगों की स्वर्ग या नरक की शूटिंग}
कालेषु योगयुक्तः भव	कालों में {अर्जुन/आदम में आए सभी रूहों के सुप्रीम बाप शिवज्योति से} योग लगा।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टं। अत्येति तत् सर्वं इदं विदित्वा योगी परं स्थानं उपैति च आद्यं।। 8/28

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु च दानेषु	{नरनिर्मित} वेदों में,{भौतिक} यज्ञों में,{दैहिक} तप में और {सांसारिक पदार्थों के} दान में
एव यत् पुण्यफलं प्रदिष्टं योगी	भी जो {अल्पकालीन} पुण्यफल बताया गया है, राजयोगी {पुरुषोत्तम संगमयुग में ही}
इदं विदित्वा तत् सर्वं अत्येति	यह {एडवांस गीता-ज्ञान} जानकर, उस सारे {मानवीय कर्मकांड} के पार चला जाता है
च आद्यं परं स्थानं उपैति	और {सतयुगी स्वर्गीय} आदिकालीन {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ के कलातीत} परमपद को पाता है।

अध्याय-9

राजविद्याराजगुह्ययोग-नामक 9वाँ अ0।।

[1-6 प्रभावसहित ज्ञान का विषय]

श्रीभगवानुवाचः-इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्यामि अनसूयवे। ज्ञानं विज्ञानसहितं यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्।। 9/1

अनसूयवे ते विज्ञानसहितं	{दैवीगुणों में} दोष न देखने वाले तुझको योग रूपी विशेषज्ञान=विज्ञान सहित,
गुह्यतमं इदं ज्ञानं प्रवक्ष्यामि तु	{बी.के. के बेसिक ज्ञान से भी} अत्यन्त गुप्त इस {एडवांस गीता-} ज्ञान को बताऊँगा कि
यत् ज्ञात्वा अशुभात् मोक्ष्यसे	जिसको जानकर पाप/दुःख से {ढाई हज़ार वर्ष के स्वर्ग में} मुक्त हो जाएगा।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रं इदं उत्तमं। प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुं अव्ययं।। 9/2

इदं राजविद्या राजगुह्यं	यह {एडवांस गीताज्ञान} राजाओं की राजविद्या है, उत्तम राजाई का रहस्य है, {अत्यंत}
पवित्रं उत्तमं	पवित्र है, {विधर्मियों वा विदेशियों की अपेक्षा} सर्वोत्तम {ज्ञान} है, {सिर्फ इस पु. संगम में}
प्रत्यक्षावगमं कर्तुं	{आए साक्षात् ईश्वर से प्रश्नोत्तरपूर्वक} प्रत्यक्ष जाना जाता है, {सहज पालन} करने के लिए
सुसुखं अव्ययं धर्म्यं	अत्यंत सुखदायी है, {सूर्यवंशियों में} अविनाशी है {और देव-आत्माओं के सत्य-सनातन} धर्मानुकूल {भी} है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्य अस्य परन्तप। अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।। 9/3

परंतप अस्य धर्मस्य अश्रद्दधानाः	हे शत्रुतापी अर्जुन! इस {सच्ची गीतावर्णित} धर्म में अश्रद्धालु {ठठ विधर्मी या विदेशी}
पुरुषा मां अप्राप्य मृत्युसंसार-	लोग मुझ को न पाकर, मृत्युलोकीय {कृष्णगति वाले अज्ञानयुक्त मोह-अंधकार में},
वर्त्मनि निवर्तन्ते	{हिंसक राक्षसों के दक्षिणायन} मार्ग में, {ढाई हज़ार वर्ष के नरकलोक में पुनः } लौट जाते हैं। {गीता 8-25}

मया ततं इदं सर्वं जगत् अव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहं तेषु अवस्थितः।। 9/4

मया अव्यक्तमूर्तिना इदं सर्वं	मेरी अव्यक्त {स्थिति की निराकारी लिंग-} मूर्ति {मान महादेव} द्वारा यह सारा {जड़-जंगम}
जगत् ततं सर्वभूतानि	जगत {मानव-बीज/बाप से वटवृक्ष जैसा} विस्तृत है। {अतः} सभी प्राणी-समुदाय
मत्स्थानि चाहं तेषु नावस्थितः	मेरे {लिंग• बीज} में स्थित हैं; किन्तु मैं {शिव} उन {प्राणियों} में {सर्वव्यापी} नहीं हूँ।

'नाहं तेषु ते •मयि' (गी.7/12) (क्योंकि अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष अनादि है तो अतिदुर्लभ 1 मुखी रुद्राक्ष बीज बाप आदिदेव/आदम• भी अविनाशी है। जैसे देह में अणुरूप आत्मा अविनाशी है वैसे यह विराट पुरुष भी सृष्टि वृक्ष में सदा रहता है)

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगं ऐश्वरं। भूतभृत् न च भूतस्थो मम आत्मा भूतभावनः।। 9/5

मे ऐश्वरं योगं पश्य	मेरे ऐश्वर्यवान् योग {-ऊर्जारूप निराकारी लिंग महादेव} को देख, {जहाँ आकाशादि जड़}
भूतानि च मत्स्थानि न	पंचभूत भी मेरे में स्थित नहीं। {सोमनाथ में शिवसमान आत्मज्योति हीरा/देहस्मृतिहीन}
भूतभावनः	{साकारी देह वाली अव्यक्तमूर्ति, योग की खुराक से साकारी} प्राणियों को पैदा करने वाली, (गी.3-14)
भूतभृत् मम	{सच्चे एडवांस गीता-ज्ञान से} प्राणियों का भरण-पोषणकत्री मेरी {अजन्मा, अगर्भा,अकर्ता ,अभोक्ता}
आत्मा भूतस्थो च न	{सदा निराकारी ज्योतिबिंदु} आत्मा {उन जड़-जंगम योगूर्जा भरे} प्राणियों में स्थित भी नहीं है।

यथा आकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्। तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय।। 9/6

यथा नित्यं सर्वत्रगः महान् वायुः	जिस तरह निरंतर सब ओर जाने वाला {जड़त्वमय अदृश्य} महान {प्राण} वायु {दिवता}
आकाशस्थितः तथा सर्वाणि	{परमब्रह्म} आकाश में स्थित है, वैसे ही सभी {सत-त्रेता के स्वर्गीय+द्वापुर-कलि के नारकीय}

भूतानि मत्स्थानि इत्युपधारय	प्राणी मेरे स्थान {लिंगमूर्ति परमाकाश} में स्थित हैं।←ऐसे {मानव-बीज महादेव में वट-वृक्ष के बीज से सृष्टिवृक्ष का विश्वास} धारण कर ले।

[7-10 जगत् की उत्पत्ति का विषय]

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकां। कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहं।। 9/7

कौन्तेय कल्पक्षये सर्व	हे कुन्ती के पुत्र! कल्पान्तकाल में सभी {दिव-दानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि जड़-जंगम पदार्थ}
भूतानि मामिकां प्रकृतिं	{सहित} प्राणीमात्र मेरी {शिवसमान पराज्योति हीरा+लिंगरूप अपरा प्रकृति की} प्रकृष्ट रचना
यान्ति कल्पादौ	{परमाकाश रूप परंब्रह्म-ज्योति} में समा जाते हैं {और} कल्प के {16 कला सतयुगी} आदिकाल से
अहं तानि पुनः विसृजामि	मैं {शिवबाबा} उन्हें पुनः {अग्रिम कल्प की चतुर्युगी में} सृजन के लिए छोड़ता हूँ।

प्रकृतिं स्वां अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्रामं इमं कृत्स्नं अवशं प्रकृतेः वशात्।। 9/8

स्वां प्रकृतिं अवष्टभ्य	मैं अपने {मूर्तिमंत महादेव के लिंग/देहरूप अपरा} प्रकृति को {अपने} वश में रखकर {इस}
प्रकृतेः वशात् अवशं इमं कृत्स्नं	{पतनोन्मुखी} प्रकृति की आधीनता से पराधीन इस {संसार के} सम्पूर्ण {जड़-चेतन}
भूतग्रामं पुनः-2 विसृजामि	प्राणियों को हर कल्प में {परंब्रह्मा रूप परमाकाश द्वारा सृजनार्थ} छोड़ता हूँ।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय। उदासीनवत् आसीनं असक्तं तेषु कर्मसु।। 9/9

च धनंजय तानि कर्माणि मां	और हे ज्ञानधनजयी अर्जुन! वे कर्म मुझ {सदाशिव आत्मज्योति रूप में स्थिर अकर्ता} को,
उदासीनवत् आसीनं न	उदासीन समान {अभोक्ता} रहने वाले को {पतिततम कामी काँटा रूप तन में भी} नहीं
निबध्नन्ति तेषु कर्मसु असक्तं	बाँधते; {क्योंकि मैं} उन कर्मों में {सदा देहभान रहित विदेही, निराकारी होने से} अनासक्त हूँ।

मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं। हेतुना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।। 9/10

कौन्तेय मयाध्यक्षेण	हे कुन्ती-पुत्र! {कल्पादिकाल की शूटिंग में} मेरी अध्यक्षता द्वारा {अर्जुन/आदम/शंकर की},
प्रकृतिः सचराचरं	{मुझ शिवसमान हीरा जैसी बनी उसकी आत्मज्योति+लिंग/देह}=प्रकृति जड़-चेतन सहित
सूयते अनेन हेतुना	{बीजरूप रुद्राक्ष गणों को} पैदा करती है; इस कारण से {अधोमुखी मानवीय सृष्टिवृक्ष पीपल का}
जगत् विपरिवर्तते	जगत् विपरीति• गति में {ऊर्ध्वमुखी परमात्म रूप हीरो पार्टधारी के योगबल द्वारा} परिवर्तित होता है।

•{अभी सबको नं. वार योगबल से 84 के चक्र में उल्टी सीढ़ी चढ़नी ही पड़ेगी; क्योंकि सभी भोगी देव+असुरों ने अपनी-अपनी ज्योतिबिंदु आत्मा को भोगी जन्मों में दैहिक इन्द्रियों से सुख भोगते-2 उत्तरोतर तीव्र दुःख की अधोगति में डाला है। अतः अभोक्ता सदाशिव ज्योतिबिंदु को आदम में पहचान कर याद करना ही है}

[11-15 भगवान का तिरस्कार करने वाले आसुरी प्रकृति वालों की निन्दा और दैवी प्रकृति वालों के भगवद्भजन का प्रकार]

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुं आश्रितं। परं भावं अजानन्तो मम भूतमहेश्वरं।। 9/11

मूढा मानुषीं तनुं आश्रितं	मूर्ख लोग अर्जुन/आदम के {साधारण मानवीय और मुकर्रर} शरीर का आधार लेने वाले
मां भूतमहेश्वरं अवजानन्ति	मुझ प्राणियों के महेश्वर {शिवबाप के व्यक्त स्वरूप आदम} की अवज्ञा करते हैं,
मम परं भावं अजानन्तः	{आदित्यों की यादगार में} मेरे श्रेष्ठतम {ज्योतिर्लिंग} परमात्मभाव को {भी पूरी तरह} नहीं जानते।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीं आसुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।। 9/12

मोघाशा मोघकर्माणः मोघज्ञाना	{फोकट का रिश्वती धन मिलने से} व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म {और} व्यर्थ ज्ञान वाले,

विचेतसः राक्षसीमासुरीञ्च मोहिनीं	{रावण संप्रदाय जैसी} विपरीत• बुद्धि वाले लोग,राक्षसी, आसुरी और मोहित करने वाली
प्रकृतिमेव श्रिताः	{तामसी} प्रकृति {के स्वभाव} को ही धारण करते हैं, {शिवसमान बने परमात्मा को पूरा भूल जाते हैं।}

•{दिल्ली- जैसी विश्वप्रसिद्ध राजधानी की बड़ी-2 आलीशान बहुमंजिला, सच्ची गीता के इसी धार्मिक-आध्यात्मिक कार्यों में लगाई गई बीसियों वर्ष पुरानी इमारतों को खण्डहर बनाने के बाद, उसी पर लाखों का प्रॉपर्टी टैक्स डकारने के इच्छुक और पचासियों बालिग कन्याओं को रातोंरात रिस्क्यू कराने के बहाने 4-4 माह तक बंधक बनाने और उन्हों के मना करने पर भी कुमारीत्व के परीक्षण का जीजान से प्रयास करने के व्यर्थ कर्मी बन जाते हैं। धर्मराज के दिल्ली दरबार में इनका क्या हाल होगा?}

महात्मानः तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिं आश्रिताः। भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिं अव्ययं।। 9/13

तु पार्थ दैवीं प्रकृतिं आश्रिताः	किंतु हे पृथ्वीराज! दैवी परा प्रकृति के आश्रित {उत्तुङ्ग कैलाशवासी}
महात्मानः भूतादिं अव्ययं मां	{रुद्रगण रूप} महात्माएँ, प्राणियों के आद्यविनाशी मुझ {शिवबाबा} को {अच्छी तरह}
ज्ञात्वा अनन्यमनसो भजन्ति	{पु.संगम में} पहचानकर अव्यभिचारी मन से {निश्चिन्त होकर} याद करते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।। 9/14

सततं मां भक्त्या कीर्तयन्तः च	{वे} निरंतर मेरा श्रद्धाभक्तिपूर्वक {अविचल} गुणगान करते हुए और {यतेन्द्रिय बन}
यतन्तः दृढव्रताः च नमस्यन्तः	यत्नपूर्वक {ब्रह्मचर्य में} दृढ़व्रत रहने वाले तथा विनम्र रहते हुए {ऐसे निर्मानचित्त}
नित्ययुक्ता मां उपासते	सदायोगीजन मुझ {महाकाल} को {कल्याणकारी ड्रामा समझ लगन से} उपासना करते हैं।

ज्ञानयज्ञेन च अपि अन्ये यजन्तो मां उपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखं।। 9/15

अन्ये अपि एकत्वेन च पृथक्त्वेन	दूसरे {सामान्य भक्त लोग} भी अद्वैत भाव से अथवा द्वैत भाव से {भी इस अविनाशी}

ज्ञानयज्ञेन विश्वतोमुखं	{अश्वमेध रुद्र} ज्ञानयज्ञ से विश्व {मान्य पंच} मुखी {ब्रह्मा सो विष्णु/पंचमुखी• महादेव समझकर}
यजन्तः मां बहुधा उपासते	यज्ञसेवा करते हुए मेरी {ही} अनेक तरह से {जीसिस-सिद्धार्थादि मूर्तियों में} उपासना करते हैं।

{•पंचानन ब्रह्मा सो पंचमुखी महादेव सो चतुर्भुजी विष्णु। विष्णु की 4 सहयोगी आत्माएँ ही जड़ भुजारूप में दिखाई हैं; किंतु 5वाँ मुख रूप चतुर्भुजी ब्रह्मा का चालक आदिदेव-आत्मा भृकुटि में दिखाई नहीं देती। बाकी अभोक्ता शिव निराकार ज्योति तो पुरुषोत्तम संगमयुग में सदा पंचानन महादेव के तीसरे शिवनेत्र से विराजमान है ही।}

[16-19 सर्वात्मरूप से प्रभावसहित भगवान के स्वरूप का वर्णन]

अहं क्रतुः अहं यज्ञः स्वधा अहं अहं औषधं। मन्त्रः अहं अहं एव आज्यं अहं अग्निः अहं हुतं।। 9/16

अहं क्रतुः अहं यज्ञः अहं	मैं यज्ञराज हूँ। मैं {मन-वचनादि का} ज्ञानयज्ञ हूँ। {परमात्मस्मृति रूप} मैं {शिव+बाबा}
स्वधा अहं औषधं	{ही आत्मा की शक्तिदाई} हवि हूँ। मैं {रोगी/विकारी आत्माओं की ज्ञान-योगरूप} औषधि हूँ।
अहं मंत्रः अहं आज्यं	मैं {मन्मनाभव का} महामंत्र हूँ। मैं {श्रेष्ठतम अव्यभिचारी मनसा द्वारा स्मृति रूप} घृत हूँ।
अहं अग्निः अहं एव हुतं	मैं ज्ञान-योगाग्नि हूँ। मैं ही {तन-मन-धन-समय-सम्बंध-सम्पर्क की त्यागरूप} आहुति हूँ।•

•{आदिदेव बना आदम ही सारी जड़-चेतन सृष्टि का बीज है, जिसमें सारा ही विराटपुरुष या सृष्टिवृक्ष समाया हुआ है।}

पिता अहं अस्य जगतो माता धाता पितामहः। वेद्यं पवित्रं ओङ्कारः ऋक् साम यजुः एव च।। 9/17

अस्य जगतः पिता	इस जगत् का {1 मात्र बीजरूप आदम/अर्जुन के तन द्वारा} जगत्पिता {शिवबाबा+सच्चीगीता ज्ञानामृत से}
माता धाता	{विष्णु की वामांगी भुजा लक्ष्मी रूपा पालनकर्त्री/परब्रह्मा रूपा} माता, {कर्मफल} विधाता {युधिष्ठिर रूप चौमुखी ब्रह्मा धर्मराज},
पितामहः	{वैसे ही बुद्ध- क्राइस्टादि धर्मपिताओं जैसे} बापों का बाप/बाबा {आदम द्वारा सारे मनुष्यमात्र का बीज हूँ।}
वेद्यं पवित्रं ओंकारः च	जानने योग्य पवित्र ऊँकार-{त्रिमूर्ति शिवबाबा} और {परमप्रसिद्ध वैदिक धर्मग्रंथों में}

ऋक् साम यजुः अहं एव	ऋक्-साम-यजुर्वेद {का मान्य 'ज्ञान-भंडार' निराकार सो साकार शिवबाबा} मैं ही हूँ।

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्। प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजं अव्ययं।। 9/18

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः	{मैं शिवबाबा ही} गति {मुक्ति या सद्गति}, पति/स्वामी, साक्षी, {परम} आश्रय,
शरणं सुहृत् प्रभवः प्रलयः स्थानं	शरणागतवत्सल, मित्र, उत्पत्ति, विनाश, स्थिति हूँ। {त्रिमूर्ति शिवबाबा निर्मित}
निधानं अव्ययं• बीजं	{समूची जड़-चेतन सृष्टि का साकार} गोदाम = अविनाशी {मानवीय अश्वत्थवृक्ष का} बीज {हूँ}।

•{इस सृष्टि में (शिव+बाबा सिवा) सदाकायम कोई चीज़ है नहीं। (मु.ता.2/1/75 पृ.3 अंत) महाविनाश में निराकार सदाशिव ज्योति समान अव्यक्तमूर्त महादेव हीरो ही चतुर्युगी में सदाकायम है जिसे कोई नहीं पहचान पाता। मैं शिवज्योति+साकार महादेव का मेल=ज्योति+लिंग ही मनुष्य-सृष्टि रूपी अश्वत्थ वृक्ष का अविनाशी बीज-रूप बाप हूँ।}

तपामि अहं अहं वर्षं निगृह्णामि उत्सृजामि च। अमृतं चैव मृत्युश्च सत् असत् च अहम् अर्जुन।। 9/19

अहं तपामि अहं	मैं {शिव प्रकाश भंडार ज्ञानसूर्य ही विवस्वत बन संगम में} तप रहा हूँ। मैं {ज्ञानजल की}
वर्षमुत्सृजामि च निगृह्णामि	बरसात छोड़ता हूँ और {1 मात्र मैं कपिल/अग्नि ही मंथन करके ज्ञान-} वर्षा खींचता हूँ।
चैव अमृतञ्च मृत्युश्च	और मैं ही {सागर-मंथन का ज्ञान-} अमृत हूँ और मृत्यु {रूप विष} भी हूँ। {हे ज्ञानार्जनकर्ता}
अर्जुन सत् असत् अहं	अर्जुन! सदा सत्य, {और 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'-अनुसार} असत्य {भी} मैं {शिव+बाबा ही हूँ।}

{(दुनियाँ की) कोई ऐसी बात नहीं जो तेरे (जगत्पिता/आदम) पर लागू न हो।(मु.ता.14-4-68; 5.5.69 पृ.3 अंत)}

[20-25 सकाम और निष्काम उपासना का फल]

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैः इष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। ते पुण्यं आसाद्य सुरेन्द्रलोकं अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।। 9/20

त्रैविद्या	{पुरुषोत्तम संगमयुग के जो ब्रह्मावत्स ब्राह्मण-देवता-क्षत्रिय} तीन धर्मों की {स्थापना वाली} विद्याओं के जानकार
सोमपाः	{ज्ञानचन्द्रमा रूप संगठित चतुर्मुखी ब्रह्मा से शिवप्रदत्त} सोमरस पीते हैं, {उसी मीठे-2 ज्ञान के मंथन से}
पूतपापा यज्ञैः मां इष्ट्वा	पापमुक्त {ब्राह्मण} यज्ञ-सेवाओं से मुझ {शिवबाबा} को प्रसन्न करके {सतयुग-त्रेता में आधाकल्प}
स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ते दिवि	स्वर्गीय श्रेष्ठ गति {पाने} की प्रार्थना करते हैं, वे दिव्य लोकों में {21 पीढ़ी के जन्मों तक}
पुण्यं सुरेन्द्रलोक मासाद्य	{भी} पवित्र सुरेन्द्रलोक को पाकर {सुखधाम में लेशमात्र भी दुःख-अशान्ति न भोगते हुए}
दिव्यान् देवभोगानश्नन्ति	{सूर्यवंशी कलातीत विष्णुरूप &16 कलाबद्ध कृष्णचन्द्र के स्वर्ग में} देवों के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्मं अनुप्रपन्नाः गतागतं कामकामा लभन्ते।। 9/21

ते तं विशालं स्वर्गलोकं	वे {त्रैविद्या•-ज्ञाता ब्रह्मावत्स} उस {2500 वर्षीय} विशाल {उत्तरायणी} स्वर्गलोक को
भुक्त्वा पुण्ये क्षीणे	भोगकर, {पु. संगमी शूटिंगकृत यज्ञसेवा के} पुण्य क्षीण होने पर {2500 वर्ष के दीर्घतम}
मर्त्यलोकं विशन्ति	{द्वैतवादी द्वापर-कलियुगी नर निर्मित नारकीय} मृत्युलोक में {अपने दुष्कर्मों से ही} प्रवेश पाते हैं।
एवं त्रयीधर्मं अनुप्रपन्नाः	ऐसे {•ब्राह्मण सो.-देवता और-क्षत्रिय, इन} 3 धर्मों की {विधाओं के} अनुकरणकर्ता, {पु. संगमयुग में}
गतागतं कामकामा लभन्ते	भूत-भविष्य {संबन्धी} काम्य कामनाओं का लाभ {सत्य सनातन धर्म में ही} पाते हैं।

अनन्याः चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहामि अहं।। 9/22

ये अनन्याः जनाः मां चिन्तयन्तो	जो अव्यभिचारी लोग मेरी {ज्योतिस्वरूप+लिंगरूप की प्रवृत्ति में} ध्यानमग्न हुए,
पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां	सर्वसमर्पित उपासक हैं, {बेहद ड्रामा के नियमप्रमाण} उन निरन्तर सम्पूर्ण योगियों के
योगक्षेमं अहं वहामि	अप्राप्त {दुर्लभ वस्तुओं} की प्राप्ति और उनकी रक्षा का भार मैं {कल्पान्त के •महाविनाश में} वहन करता हूँ।

•{"बाबा की सर्विस में लग जाने से तुम कब (अकाल, दुकाल आदि में भी) भूख नहीं मरेंगे।"(मु.ता.16.10.77 पृ.3 मध्य)}{'कयामत में खुदा के बंदे मौज में रहेंगे'। (कुरान)} (परमपिता+परम आत्मा को पहचानेंगे तब ही ऐसा होगा।)

ये अपि अन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धया अन्विताः। ते अपि मां एव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकं।। 9/23

कौन्तेय ये	हे {देहभान नाशिनी 'कुंतयति दारयति देहं' ऐसी} कुन्ती के पुत्र! जो {शिवबाबा के अलावा कोई}
अन्यदेवता भक्ता अपि श्रद्धया	अन्य {ब्रह्मा-विष्णु-कलाबद्ध लक्ष्मी-ना. आदि देवी-} देवताओं के भक्त भी श्रद्धा से
अन्विताः यजन्ते ते अविधिपूर्वकं	भरकर यज्ञसेवा करते हैं, वे {एडवांस सच्ची} गीता-विधिविधान रहित {रुद्रयज्ञसेवी}
अपि मां एव यजन्ति	{मंदभक्त} भी {अव्यक्तमूर्त बने विदेहीरूप} मेरे {ज्योतिर्लिंग की} ही यज्ञसेवा करते हैं।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुः एव च। न तु मां अभिजानन्ति तत्त्वेन अतः च्यवन्ति ते।। 9/24

हि अहं एव सर्वयज्ञानां	क्योंकि मैं {शिव} ही {नीची 7 कुरियों के ब्राह्मण सो अर्धदेवों की} सभी यज्ञ-सेवाओं का
प्रभुः च भोक्ता तु च ते	{अविनाशी महादेव-मूर्ति द्वारा} स्वामी और उपभोग करने वाला हूँ, तो भी वे {अधूरे ब्रह्मावत्स}
मां तत्त्वेन न	{कर्मेन्द्रियों की भागदौड़ के यज्ञसेवी} मुझ {साधारण आदम तनधारी शिवबाबा} को वास्तविक रूप से नहीं
अभिजानन्ति अतश्च्यवन्ति	पहचान पाते; अतः {द्वापर से द्वैतवादी स्लामी-बौद्धी आदि विधर्मियों में} पतित हो जाते हैं।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनः अपि मां।। 9/25

देवव्रता देवान् यान्ति पितृव्रताः	{कलाबद्ध} देवों के भक्त देवात्माओं को पाते हैं। {बेहद पिता सिवा अन्य के} पितृभक्त
पितॄन्यान्ति भूतेज्या भूतानि यान्ति	{अपने} पितरों को पाते हैं। भूत-प्रेतों के पुजारी भूत-प्रेत योनियों को पाते हैं।
मद्याजिनः मामपि यान्ति	मेरे प्रति {ज्ञान-यज्ञ की} सेवा करने वाले मेरे {जैसे स्वाधीन• राजाई भाव} को ही पाते हैं।

{•एकमात्र शिवबाबा के सिवा सभी पराधीन बनाते हैं। "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं। करि विचार देखहु मन माहीं।।"}

[26-34 निष्काम भगवद्भक्ति की महिमा]

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तत् अहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः।। 9/26

यः पत्रं पुष्पं फलं तोयं	जो {निर्धन या कोई भी} व्यक्ति पत्ते, पुष्प, फल, जल {अथवा कोई भी प्रकार की यज्ञउपयोगी}
मे भक्त्या प्रयच्छति	{या मानवीय कम उपयोगी सामान्य चीज़ को भी} मुझे दिली भावना से प्रदान करता है {←ऐसे}
प्रयतात्मनः भक्त्युपहृतं	{उस श्रद्धा भरे} प्रयत्नवान की भावनापूर्वक लाई गई {मेरे ग्रहण करने योग्य भीलनी जैसी}
तदहं अश्नामि	उस {झूठी झाठी श्रद्धाभरी भेंट} को मैं {बेहद विषपायी शिवबाबा प्रसन्नता से समयानुसार} ग्रहण कर लेता हूँ।

यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणं।। 9/27

कौन्तेय यत्करोषि यदश्नासि	हे कुन्ती-पुत्र! जो {कर्म तू} करता है, जो {तू} खाता है, {पीता है या अपने उमंग- उत्साह से}
यत् जुहोषि यत् ददासि यत्	जो {ज्ञान-} यज्ञसेवा करता है, जो देता है {वा} जो {आत्मस्टार की स्मृति का सर्वोच्च}
तपस्यसि तत् मदर्पणं कुरुष्व	{रूहानी} तप करता है, वह {सब} मुझ {एकमात्र अव्यक्तमूर्ति शिवबाबा} को अर्पण कर।

शुभाशुभफलैः एवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः। सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मां उपैष्यसि।। 9/28

एवं शुभाशुभफलैः कर्मबंधनैः	इस प्रकार शुभ और अशुभ फल वाले कर्मों के बंधनों से {स्वर्ग में आधाकल्प के लिए}
मोक्ष्यसे विमुक्तः संन्यास-	मुक्त हो जाएगा। {उनसे} पूरा ही छूटा हुआ {यथायोग्य} समुचित त्यागी {और मेरे}
योगयुक्तात्मा मामुपैष्यसि	{से} योगयुक्त आत्मा मुझ {ईश्वर के श्रेष्ठ, स्वाधीन राजाईभाव} को {ही} प्राप्त करेगा।

{राजयोग से बने राजा स्वाधीन होते हैं; किसी के आधीन नहीं रहते। नं.वार नरक बनाने वाले नर आधीन ही बनावेंगे! स्व माने ही अपनी आत्मा और आत्मा का बाप परमपिता+परमात्मा राजयोगेश्वर}

समः अहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यः अस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु च अपि अहं।। 9/29

अहं सर्वभूतेषु समः मे न	मैं, {श्रेष्ठ हों या निष्कृष्ट} सब प्राणियों में समान आत्मभाव वाला हूँ। मेरे लिए न {कोई राक्षसी भाव वाला}
द्वेष्यः न प्रियोऽस्ति तु ये मां भक्त्या	द्वेष योग्य है, न {दैवी भावना वाला} प्यारा है; किंतु जो मुझको {श्रद्धा} भक्तिभाव से
भजन्ति ते मयि च तेषु अहं अपि	याद करते हैं, वे मुझमें हैं और उनमें {उन्हीं के भाव वा स्मृतिपूर्वक} मैं भी हूँ।

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मां अनन्यभाक्। साधुः एव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितः हि सः।। 9/30

चेत् सुदुराचारो अपि अनन्यभाक्	यदि {कोई अजामिल जैसा} अत्यन्त दुराचारी भी अव्यभिचारी भाव से {श्रद्धापूर्वक}
मां भजते स साधुः एव मन्तव्यः	मुझे याद करता है, {तो} वह {भी एक निष्ठ होने से} सत्पुरुष ही मानने योग्य है;
हि सः सम्यक् व्यवसितः	क्योंकि वह {शिवबाबा में} समुचित निश्चयवान् है। {बाकी अनिश्चयी देह से नष्ट हो जावेंगे।}

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। 9/31

क्षिप्रं धर्मात्मा भवति शश्वत्	{दृढनिश्चयी} जल्दी ही धर्मात्मा बन जाता है, {सम्पूर्ण चतुर्युगी में भी} शाश्वत
शांतिं निगच्छति कौन्तेय प्रति	शान्ति {नं. वार } पा {ही} लेता है। हे कुंती-पुत्र! {ऐसा अव्यभिचारी योगी,} निश्चय {ही}
जानीहि मे भक्तः न प्रणश्यति	जानो {वह} मेरा भक्त {नारकीय द्वापुर-कलियुग में भी धर्मभ्रष्ट}/नष्ट नहीं होता।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये अपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः ते अपि यान्ति परां गतिं।। 9/32

हि पार्थ ये अपि स्त्रियः वैश्याः	क्योंकि हे पृथ्वीपति! {इस दुःखी दुनियाँ में} जो भी {पूर्वजन्मकृतानुसार} स्त्री, वैश्या

तथा शूद्राः पापयोनयः स्युः तेऽपि	तथा शूद्र {जैसी} पापयोनियाँ {भी} हों, वे भी {पूर्वजन्मकृत कोई श्रेष्ठ कर्मों से}
मां व्यपाश्रित्य परां गतिं यान्ति	मेरा आश्रय लेकर {इसी जन्म में विष्णुरूप वैकुण्ठ की} परमगति को पाते हैं।

किं पुनः ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयः तथा। अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व मां।। 9/33

पुनः पुण्या ब्राह्मणाः तथा भक्ता	फिर पुण्यशील {सूर्यवंशी} ब्राह्मण-देवों का तथा भक्त {प्रवरक्षत्रिय जनों अथवा}
राजर्षयः किं इमं अनित्यं असुखं	राजर्षियों का क्या {कहना! इसीलिए} इस क्षणभंगुर {और} दुःखी {नारकीय},
लोकं प्राप्य मां भजस्व	{राक्षसी-हिंसक} लोक को पाकर, मुझ {एकमात्र सदासुखदायी अव्यक्तमूर्ति शिवबाबा} को याद कर।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मां एव एष्यसि युक्त्वा एवं आत्मानं मत्परायणः।। 9/34

मन्मना मद्याजी मद्भक्तः भव मां	{तू} मेरे में मन लगा, मेरी यज्ञसेवा कर, मेरा भक्त बन जा। मुझ {शिवबाबा} को
नमस्कुरु एवं आत्मानं युक्त्वा	श्रद्धा से झुक जा! इस प्रकार {अव्यभिचारी मन-बुद्धि रूप} आत्मा का लगाव लगाय
मत्परायणः मां	मेरी {अव्यक्तमूर्ति के} आश्रित हुआ मुझ {स्वाधीन, सर्वोत्तम शासक से राजयोग द्वारा राजाई भाव} को
एव एष्यसि	ही पाएगा, {पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग में भी किसी व्यक्ति के आधीन नहीं बनेगा।}

अध्याय-10

विभूतियोग-नामक 10वाँ अ0।।

[1-7 भगवान की विभूति और योगशक्ति का कथन तथा उनके जानने का फल]

श्रीभगवानुवाचः-भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः। यत् ते अहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।। 10/1

महाबाहो भूय एव परमं मे	हे {सहयोगियों रूपी} दीर्घबाहु! पुनः {धर्मपिताओं वा ऋषि मुनियों से} भी सर्वोत्तम मेरी
वचः शृणु यदहं प्रीयमाणाय	वाणी सुनो। जिसे मैं {सुनने-समझने और समझाने में ज्ञानियों में भी सर्वोत्तम} प्रीतिमान हुए
ते हितकाम्यया वक्ष्यामि	तेरी हित-कामना से कहूँगा। {क्योंकि सारे ही सृष्टिवृक्ष की भलाई तेरे बीजरूप से है।}

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। अहं आदिः हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।। 10/2

मे प्रभवं न सुरगणाः	मेरे {दिव्य प्रवेश योग्य} प्रकृष्ट जन्म को (गीता11-54 के अनुसार) न देवगण {और}
न महर्षयः विदु हि देवानां च	न {द्वापरयुगी मुनियों या} महर्षियों ने जाना है; क्योंकि देवताओं, {दिवर्षियों, ब्रह्मऋषियों}, और
महर्षीणां सर्वशः आदिः अहं	महर्षियों का सब प्रकार से {महादेव द्वारा} आदि {कालीन आदीश्वर} मैं हूँ।

यो मां अजं अनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरं। असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। 10/3

यः मां अजं अनादिं च	जो मुझ {शिवबाबा} को अजन्मा, {अगर्भा,} अनादि और {सुख, दुःख व शांतिधाम-}
लोकमहेश्वरं वेत्ति स मर्त्येषु	त्रिलोकी का महान शासक {सर्वशक्तिमान अव्यक्तमूर्ति रूप} जानता है, वह मनुष्यों में
असम्मूढः सर्वपापैः प्रमुच्यते	{सम्पूर्ण} मोहरहित हुआ, सब पापों से भली-भाँति {आधाकल्प सम्पूर्ण दुखों से} मुक्त हो जाता है।

बुद्धिः ज्ञानं असम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः। सुखं दुःखं भवः अभावः भयं च अभयं एव च।। 10/4

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा	{बुद्धिरूपा} निर्णयशक्ति, सारा सृष्टिज्ञान, {मेरे सिवा और सभी में} निर्मोही, क्षमाभाव,
सत्यं दमः शमः सुखं दुःखं	सत्य, {इन्द्रिय-} दमन, शान्ति, {नई-पुरानी दुनियाँ की शूटिंग के भी} सुख-दुःख,
भवोऽभावो भयं चाभयमेव च	{और भी अनेक सांसारिक} उत्पत्ति, अभाव, {कोई से भी} भय और अभय भी तथा

अहिंसा समता तुष्टिः तपः दानं यशः अयशः। भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।। 10/5

अहिंसा समता तुष्टिः	{म.व.कर्म से} किसी को दुःखी न करना, समान भाव, {अनायास जो मिले उसी में} संतोष,
तपः दानं यशः अयशः भूतानां	{आत्मस्टार की स्मृतिरूप} तपस्या, दान, यश, अपयश {आदि}, प्राणियों के
पृथग्विधाः भावा मत्त एव भवन्ति	अनेक प्रकार के {अच्छे-बुरे} भाव {मूलतः} मेरे {सृष्टि-बीज महादेव} से ही होते हैं।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवः तथा। मद्भावा मानसा जाता येषां लोके इमाः प्रजाः।। 10/6

पूर्वे चत्वारः मनवस्तथा सप्त महर्षयः	पूर्वकालीन चार मानस पुत्र {सनकादिक बीज} तथा सात महर्षिगण-{ये सब}
मद्भावा मानसा जाता येषां	मेरे आत्मभाव हैं, ब्रह्मा की मानसी पैदाइश हैं। जिनकी {स्वर्ग और नरक के}
लोके इमाः प्रजाः	संसार में यह {दिवता-स्लाम-बुद्धादि सारे मठ-पंथ सहित धर्म इन 11 रुद्रगणों की वैराइटी} प्रजा है।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः। सः अविकम्पेन योगेन युज्यते न अत्र संशयः।। 10/7

यः ममेतां विभूतिं च योगं	जो मेरी इस {विशेष रचना} विभूतियों को तथा {महादेव रूप मेरी} योगऊर्जा को
तत्त्वतः वेत्ति सः अविकम्पेन योगेन	{सभी 23} तत्त्वपूर्वक {गहराई से} जानता है, वह अविचलित रूप से योग-ऊर्जा द्वारा
युज्यते अत्र संशयः न	{अणुरूप रूहों के बाप सदा शिवज्योति से नं. वार शंकर की तरह} •जुड़ जाता है। इस {बात} में संशय नहीं है।

{•सारे संसार में ऐसे तो एकमात्र शंकर महादेव का नाम ही शिव से जोड़ा जाता है, और किसी देव, दानव, मानव या फरिश्ता का नहीं जोड़ा जाता; इसीलिए भारत में बाप के साथ बच्चों का नाम जोड़ने की सामाजिक परंपरा आज भी चालू है। सारी अच्छी विश्वकल्याणी परम्पराएँ सुप्रीम सोल से ही आती हैं।}

[8-11 फल और प्रभावसहित भक्तियोग का कथन]

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। 10/8

अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः	मैं {शिव+बाबा} सारे {साकार जगत} का आदि उत्पादक हूँ। मेरे {ही पवित्रभावों} से {अच्छा-बुरा}
सर्वं प्रवर्तते इति मत्वा	सारा {सृष्टिगत कार्य} चलता है। ऐसा {पु.संगमयुग के ब्राह्मण-जीवन में सदा जान&} मानकर
भावसमन्विताः बुधां मां भजन्ते	{हृदय से} भावविभोर हुए बुद्धिमान• लोग मुझको {पु. संगम में निरंतर} याद करते हैं।

•{अन्यथा बुद्धू लोग तो नीची कुरी के अन्यान्य देव-देवियों, धर्मपिताओं, फरिश्तों या भूत-प्रेतों आदि को ही याद करते हैं।}

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परं। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।। 10/9

मच्चित्ता नित्यं मद्गतप्राणा	मेरे में मन-बुद्धि लगाने वाले, सदा मेरे {नाम-रूपादि} में ही जिनके प्राण लगे हुए हैं, {वे}
परस्परं बोधयन्तः च मां च	परस्पर एक-दूसरे को समझाते हुए और मेरे {क्रियाकलापों/जीवन-कथा के} विषय में ही
कथयन्तः तुष्यन्ति च रमन्ति	वार्तालाप करते हुए, सन्तोष पाते हैं और {सदा अतीन्द्रिय सुख में} रमण करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकं। ददामि बुद्धियोगं तं येन मां उपयान्ति ते।। 10/10

प्रीतिपूर्वकं भजतां तेषां सततयुक्तानां तं	प्रीतिपूर्वक याद वाले उन निरन्तर योगियों को वह {एकाग्र & अव्यभिचारी}
बुद्धियोगं ददामि येन ते मां उपयान्ति	बुद्धि योग देता हूँ, जिससे वे {यहीं} मेरे {प्रतिरूप} को पहुँच जाते हैं।

तेषां एव अनुकम्पार्थं अहं अज्ञानजं तमः। नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।। 10/11

तेषां अनुकम्पार्थमेवाहं	उन पर {सृष्टिगत दीर्घकालीन} दया करने के लिए ही मैं {आत्माओं का बाप सदाशिव ज्योति}
आत्मभावस्थः भास्वता	{पुरुषोत्तम संगमयुग में सदाकाल} आत्मस्टार भाव से स्थित {उस} चमकते हुए {ध्रुवतारा मानिंद}
ज्ञानदीपेन अज्ञानजं	{त्रिनेत्री बने} ज्ञान-दीपक द्वारा, {मैं शिव ही माया-रावण की} अज्ञानता• से {द्वापुर-कलि में} उत्पन्न
तमः नाशयामि	अज्ञानान्धकार को {संगमी ब्राह्मणों में} नष्ट कर देता हूँ। {तभी कहा 'ऋते •ज्ञानान्न मुक्तिः'}

•{बुद्धिमानों की बुद्धि सदाशिव ज्योति ही मूर्तिमान (शंकर) जगत्पिता को सबसे पहले अनवरत ज्ञान-मार्ग में ले आता है। द्वैतवादी द्वापर से, 2.5 हज़ार साल में विधर्मियों के अज्ञान से ही भारतीयों की अंधश्रद्धायुक्त भक्तिमार्ग में दुर्गति हुई है। इस दुर्गति से सर्वप्रथम साकार सृष्टि के बीज/जगत्पिता बाप को ही निकालता है}

[12-18 अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति तथा विभूति और योगशक्ति को कहने के लिए प्रार्थना]

अर्जुन उवाचः-परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। पुरुषं शाश्वतं दिव्यं आदिदेवं अजं विभुं।। 10/12

भवान् परं ब्रह्म परं धाम परमं पवित्रं	आप {शिवबाबा ही} परंब्रह्म हैं, श्रेष्ठतम धाम/परमधाम हैं, परमपवित्र हैं,
शाश्वतं दिव्यं पुरुषं विभुं	{कभी लोप न होने वाले} शाश्वत दिव्य पुरुष हैं {और बहुरूपिया के} विशेष रूपों में व्यक्त होते हैं।
अजं आदिदेवं	{आप त्रिकालज्ञ के दिव्य प्रवेश के कारण, मुझ अर्जुन में} अगर्भजन्मा {होने से} आदि {अनादि} देव हैं।

आहुः त्वां ऋषयः सर्वे देवर्षिः नारदः तथा। असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।। 10/13

त्वां सर्वे ऋषयः देवर्षिः नारदः	आप शिवबाबा के विषय में {ऐसा} सब ऋषियों {त्रिलोक-भ्रमणशील} देवर्षि नारद ने,
असितः देवलः तथा व्यासः आहुः	असित ने, देवल ने और {जगप्रसिद्ध कपिलमुनि=वेद-} व्यास ने कहा है
च स्वयं एव मे ब्रवीषि	और आप स्वयं ही मुझे बताते हैं {कि आप समूचे संसार की सर्वोपरि सत्ता हैं।}

सर्वं एतत् ऋतं मन्ये यत् मां वदसि केशव। न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुः देवाः न दानवाः।। 10/14

केशव यन्मां वदसि एतत्सर्वं ऋतं	हे ब्रह्मा {और विष्णु} के शासक {शिवबाबा}! जो मुझे कहते हो, यह सब {कुछ} सत्य
मन्ये हि भगवन् ते	मानता हूँ; क्योंकि हे भगवन्! आपके {हर चतुर्युगी के आदि में हीरोपार्टधारी बने}
व्यक्तिं न देवाः न दानवाः विदुः	व्यक्त {और अव्यक्तमूर्ति महादेव} भाव को न देवताएँ और न दानव जानते हैं।

स्वयं एव आत्मना आत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम। भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।। 10/15

पुरुषोत्तम भूतभावन	रूहों में सर्वोत्तम {शिवबाबा!} हे भूतों के {सूक्ष्म शरीरी पार्ट के} जन्मदाता
भूतेश देवदेव जगत्पते त्वं स्वयं	भूतेश्वर! हे देवाधिदेव जगत्-पति! आप •स्वयं {प्रवेशनीय •अजन्मा-अगर्भा होने कारण}
एव आत्मना आत्मानं वेत्थ	ही अपने {मुकर्रर अर्जुन सो आदम-रथ} द्वारा अपनी आत्मा के स्वरूप को जानते हो।

•{वह सद्गुरु स्वयं ही आकर अपना परिचय देते हैं। (मु.ता.8.10.68 पृ.2 मध्य) बाप के सिवा बाप का परिचय कोई दे न सके।} •क्योंकि बाकी सभी देव-दानव-ऋषिमुनि जन्म-मरण चक्र में आने से पूर्वजन्मों को भूल जाते हैं। तुलसीदास ने भी रामायण में यही कहा है- 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ हुइ जाई।।' (अयोध्या कांड) {आदम&खुदा ←इन दोनों बेहद के बापों की बात है।}

वक्तुं अर्हसि अशेषेण दिव्या हि आत्मविभूतयः। याभिः विभूतिभिः लोकान् इमान् त्वं व्याप्य तिष्ठसि।। 10/16

याभिः विभूतिभिः इमान्	{गीता 10-6 में पूर्ववर्णित} जिन {रूद्र सहित 11} विभूतियों द्वारा इन {स्वर्ग-नरकादि}
लोकान् व्याप्य त्वं तिष्ठसि हि अशेषेण	{तीनों} लोकों को फैलाकर आप {अव्यक्त होकर शांतिधाम में} बैठ जाते हो क्योंकि {वे} सारी
दिव्या आत्मविभूतयः वक्तुं अर्हसि	{श्रेष्ठ} दैवी जीवात्मरूप विभूतियाँ बताने में {आप त्रिकालज्ञ आदीश्वर ही} समर्थ हो।

कथं विद्यां अहं योगिन् त्वां सदा परिचिन्तयन्। केषु केषु च भावेषु चिन्त्यः असि भगवन् मया।। 10/17

योगिन् अहं कथं सदा परिचिन्तयन्	हे योगीश्वर! {आपके सहयोग बिना} मैं कैसे निरंतर विचार-मंथन करता हुआ

त्वां विद्यां च भगवन् केषु-2	आप {अचिन्त्य-अदृश्य रूप} को {पूरी रीति} जान सकता हूँ और हे भगवन्! किन-2 {श्रेष्ठ}
भावेषु मया चिन्त्यः असि	भावों में मेरे {जैसे डल/पत्थर बुद्धि} द्वारा {आप निरंतर} चिन्तन करने योग्य हो?

विस्तरेण आत्मनः योगं विभूतिं च जनार्दन। भूयः कथय तृप्तिः हि शृण्वतो न अस्ति मे अमृतं।। 10/18

जनार्दन आत्मनः योगं च	हे अवढरदानी शिवबाबा! अपनी {इस} योग-{ऊर्जा की} शक्ति और {अपनी इस}
विभूतिं भूयः विस्तरेण कथय हि मे	•विभूति को दुबारा विस्तार से कहिए; क्योंकि मुझे {इस अखूट-अनंत}
अमृतं शृण्वतः तृप्तिः न अस्ति	{भंडारयुक्त/सम्पूर्ण व्याख्यायुक्त} ज्ञानामृत {सांख्ययोग} को सुनते हुए तृप्ति नहीं होती।

•{गीता 10-6 में वर्णित विभूतियों में परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है, उस सदाशिव ज्योति परमपिता समान बने महादेव/आदम की यौगिक ऊर्जा ही उनमें नं. वार व्यापक है। जगत के सारे प्राणी छोटी-बड़ी बैटरीज़ हैं, जो कल्पांत की पु. संगमयुगी शूटिंग में परमात्म-पावरहाउस जगत्पिता द्वारा क्रमशः यथायोग्य पुरुषार्थ-अनुसार योगशक्ति ग्रहण करते हैं।} (**'परमात्मा'पावरहाउस देखें, गीता 15-17; 6-7; 13-22, 31**)इसी ऊँची योगावस्था की यादगार काशीकैलाशीवासी योगीश्वर महादेव की नग्न लिंगमूर्ति बताई गई है जो सारे संसार की सार्वभौम सत्ता बनी है।

[19-42 भगवान द्वारा अपनी विभूतियों और योगशक्ति का कथन]

श्रीभगवानुवाचः-हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या हि आत्मविभूतयः। प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ न अस्ति अन्तः विस्तरस्य मे।। 10/19

कुरुश्रेष्ठ प्राधान्यतः दिव्या	{हे मेरे मुकर्रर रथी} कुरुश्रेष्ठ! {पहले किसी को न बताई गई ये} खास-2 दिव्य
आत्मविभूतयः ते हन्त कथयिष्यामि	अपनी विभूतियाँ {गहराई से ज्ञानार्जन-अर्थ उत्कंठित} तुझे अनुकंपार्थ कहूँगा;
हि मे विस्तरस्य अन्तः न अस्ति	क्योंकि {वटवृक्ष के बीजरूप} मेरे विस्तार वाले {महादेव/आदम} का अन्त नहीं है।

अहं आत्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहं आदिश्च मध्यं च भूतानां अन्तः एव च।। 10/20

गुडाकेश अहं आत्मा	हे निद्राजीत अर्जुन! मैं आत्मा {जड़ सूर्य मानिंद प्रकाशित चेतन ज्ञान प्रकाश भंडारी शिवज्योति}
सर्वभूताशयस्थितः च भूतानां	सब प्राणियों के आधार {योगीश्वर महादेव की योग-ऊर्जा} द्वारा स्थित हूँ और प्राणियों की
आदिः मध्यं च अन्तः अहमेव	{मूर्तियों का} आदि, मध्य और {हर बार कल्पान्तकालीन महाविनाश में} अन्तकर्ता मैं ही हूँ।

आदित्यानां अहं विष्णुः ज्योतिषां रविः अंशुमान्। मरीचिः मरुतां अस्मि नक्षत्राणां अहं शशी।। 10/21

ज्योतिषां अंशुमान् रविः अहं	ज्योतिमान् पदार्थों में {आत्मज्योति स्वरूप} किरणों वाला {चैतन्य ज्ञान-} सूर्य हूँ।
आदित्यानां विष्णुः मरुतां	{12 सूर्यवंशी} आदित्यों में विष्णु हूँ। {7 विधर्मियों के 7X7=49} मरुतों में
मरीचिः अस्मि नक्षत्राणामहं शशी	मैं {सूर्य की ज्योतिकिरण} मरीचि हूँ। {ज्ञान-योग से भासित} नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ।

वेदानां सामवेदः अस्मि देवानां अस्मि वासवः। इन्द्रियाणां मनश्च अस्मि भूतानां अस्मि चेतना।। 10/22

वेदानां सामवेदः अस्मि देवानां	{चारों} वेदों में सामवेद {रूप सौम्य गीताज्ञान} हूँ। वसुदेवों में {प्रधान वसु=शिव का पुत्र}
वासवः अस्मि इन्द्रियाणां मनः	वासव/•वासुदेव {महेंद्र} हूँ। {11 प्रबल रुद्ररूप} इन्द्रियों में मन {रूपी चंचल कपिध्वज}
अस्मि च भूतानां चेतना अस्मि	{हनुमान} हूँ और {भिन्न-2 समुदाय के} प्राणियों में {योग-ऊर्जारूप} चेतनाशक्ति {मैं ही} हूँ।

{•अजन्मा होने से अखूट ज्ञानधन भंडारी सदा शिवज्योति ही वसु है, जिसका बड़ा बच्चा इन्द्रदेव ही वासव है।}

रुद्राणां शङ्करश्च अस्मि वित्तेशो यक्षरक्षसां। वसूनां पावकश्च अस्मि मेरुः शिखरिणां अहं।। 10/23

अहं रुद्राणां शंकरः च यक्षरक्षसां	मैं {शिवज्योति ही 11} रुद्रगणों में महारुद्र शंकर हूँ और यक्ष-राक्षसों में {उत्तर दिशा का}
वित्तेश अस्मि वसूनां पावकः	{प्रैक्टिकल ज्ञान-} धनकुबेर हूँ, 8 वसुओं में {ज्ञान-योग से प्रायः पवित्रकर्ता} पावक अग्नि
च शिखरिणाम् मेरुः अस्मि	और शिखरों में {प्रतीक} एवरेस्ट• चोटी {रूपी उच्चतम ब्राह्मण -चोटी शंकर महादेव} हूँ।

{•कल्पान्तकालीन प्रलय की जलमई में अविनाशी मूर्तिमंत शंकर की यादगार एवरेस्ट चोटी बचेगी "हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह। एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रबल प्रवाह।"} - (जयशंकर प्रसाद)

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिं। सेनानीनां अहं स्कन्दः सरसां अस्मि सागरः।। 10/24

पार्थ पुरोधसां मुख्यं बृहस्पतिं	पृथ्वीश्वर! पुरोहितों में सबका मुखिया {पतियों का पति सद्गुरु} बृहस्पति देव
मां विद्धि अहं सेनानीनां	मुझे जान। मैं {ज्ञानशस्त्रों से सज्जित} सेनापतियों में {छः सप्तर्षियों की कृत्तिकाओं से पोषित}
स्कन्दः च सरसां सागरः अस्मि	कार्तिकेय और सरोवरों में {धरणीपतिरूप ज्ञान-जल का विशालतम} सागर हूँ।

महर्षीणां भृगुः अहं गिरां अस्मि एकं अक्षरं। यज्ञानां जपयज्ञः अस्मि स्थावराणां हिमालयः।। 10/25

अहं महर्षीणां भृगुः गिरामेकमक्षरं	मैं महर्षियों में भृगु,वाणियों में {अ+उ+म=त्रिदेवों का मेल} एकाक्षर 'ऊँ'
अस्मि यज्ञानां जपयज्ञः	मैं हूँ। {कपोलकल्पित} यज्ञों में {बिंदुरूप आत्म-स्मृति की असली एकाग्रता का मानसिक} जपयज्ञ हूँ
स्थावराणां हिमालयः अस्मि	{और बुलंद ऊंचाई के} स्थिरियम पर्वतों में {युधि+स्थिर रूप} हिमालयराज/हिमवान् हूँ।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।। 10/26

सर्ववृक्षाणां अश्वत्थः देवर्षीणां	सब वृक्षों में {विशालकाय} अश्वत्थ {रूप सृष्टिवृक्ष}, देवर्षियों में {परमप्रसिद्ध भक्त प्रवर},
नारदः गन्धर्वाणां चित्ररथः च	{किन्तु सदा अस्थिर} नार+द, {अर्धदेव गायक} गन्धर्वों में चित्ररथ और {सर्वसमृद्धिप्राप्त}
सिद्धानां कपिलो मुनिः	{मननचिन्तनशील} सिद्धों में {कपिल के ही बसाए कांपिल्यनगर का सांख्यवेत्ता} कपिल मुनि हूँ।

उच्चैःश्रवसं अश्वानां विद्धि मां अमृतोद्भवं। ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपं।। 10/27

मां अश्वानां अमृत-	मुझे {मनरूप} अश्वों में {योग से एकाग्र, रुद्रयज्ञ में देहभान से भस्म हुआ व ज्ञान-} अमृत मंथन से

उद्भवमुच्चैःश्रवसं गजेन्द्राणां	पैदा उच्चैः श्रवा, {देहभानी} हाथियों {रूपी वरुण के गजगोर वाले साथी महारथियों} में {इरावान-पुत्र}
ऐरावतं च नराणां नराधिपं विद्धि	ऐरावत और मनुष्यों में राजाधिराज {काशी विश्वनाथ/विश्व महाराजन नारा0} जान।

आयुधानां अहं वज्रं धेनूनां अस्मि कामधुक्। प्रजनश्च अस्मि कन्दर्पः सर्पाणां अस्मि वासुकिः।। 10/28

अहं आयुधानां वज्रं धेनूनां	मैं आयुधों में {अटूट पुरुषार्थी} वज्र हूँ, गायों में {कामनापूर्तिकारी धरणी रूपा}
कामधुक् अस्मि च प्रजनः कन्दर्पः	{श्वेत-काली} कामधेनु गाय हूँ और प्रकृष्ट सन्तान-उत्पादकों में {वृषरूप स्वयं ही नंदी} कामदेव
अस्मि सर्पाणां वासुकिः अस्मि	हूँ {और उरगतिशील} सर्पों में {महाव्यभिचारी विषपायी} वासुकि {नाग} हूँ।

अनन्तश्च अस्मि नागानां वरुणो यादसां अहं। पितॄणां अर्यमा च अस्मि यमः संयमतां अहं।। 10/29

अहं नागानां अनन्तः च	मैं नागों में {शिवबाबा के गले पड़ा अन्तहीन विध्वंशक} अनंतनाग और {विशाल}
यादसां वरुणोऽस्मि अहं पितॄणां	जलजन्तुओं में {पश्चिमेश} वरुणदेव हूँ। मैं {8 धर्मों के बीज अष्टदेव} पितरों में {विवस्वत/
अर्यमा च संयमतां यमोऽस्मि	ज्ञानसूर्य} अर्यमा और सम्पूर्ण यम-नियमकर्ताओं में {धर्म का राजा युधिष्ठिर} यमराज हूँ।

प्रह्लादश्च अस्मि दैत्यानां कालः कलयतां अहं। मृगाणां च मृगेन्द्रः अहं वैनतेयश्च पक्षिणां।। 10/30

अहं दैत्यानां प्रह्लादः च कलयतां	मैं {द्वैतवादी युग के विधर्मी} दैत्यों में प्र+आह्लाद {दाता} और कालगणना कर्ताओं में
कालोऽस्मि च मृगाणां	{कालों का} महाकाल हूँ। तथा {कँटीले संसार रूपी जंगल के जानवरबुद्धि} पशुतुल्यों में
मृगेन्द्रः च पक्षिणां वैनतेयः अहं	सिंह और {देहभान की पूँछ से नृत्यकर्ता} पक्षियों में {सुपर्ण/नागाशन} मयूर हूँ।

पवनः पवतां अस्मि रामः शस्त्रभृतां अहं। झषाणां मकरश्च अस्मि स्रोतसां अस्मि जाह्नवी।। 10/31

पवतां पवनः अस्मि शस्त्र-	पावनकर्ताओं में {पतितपावन सीताराम-जैसा अग्निदेवसखा} पवनदेव हूँ, {ज्ञान-} शस्त्र

भृतां रामोऽहं झषाणां मकरः	धारणकर्ताओं में {कार्तिकेय-रूप} राम {ही} हूँ। मछलियों में {मत्स्यावतार} मगरमच्छ
अस्मि च स्रोतसामस्मि जाह्नवी	हूँ और {विश्वभर की देशी-विदेशी} नदियों में {मैं ही पतित-पावनी} गंगा {कावेरी भी} हूँ।

सर्गाणां आदिः अन्तश्च मध्यं चैव अहं अर्जुन। अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतां अहं।। 10/32

अर्जुन सर्गाणामादिः मध्यश्च	हे अर्जुन! {सारी} सृष्टियों का आदि {आदिदेव}, मध्य {स्लामियों का आदम} और
अन्तः अहं एव विद्यानां अध्यात्म-	अंत {महाकाल} मैं ही हूँ। विद्याओं में आध्यात्मिक {विश्वविद्यालय की सर्वोच्च}
विद्या च प्रवदतां वादः अहं	{राजयोग} विद्या हूँ और {सत्य-असत्य के} वाद-विवाद कर्ताओं का {सत्य} वाद {भी} हूँ।

अक्षराणां अकारः अस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च। अहं एव अक्षयः कालो धाता अहं विश्वतोमुखः।। 10/33

अक्षराणामकारः च सामासिकस्य	अ+क्षरों में {अहं+दा+बादी} अकार और समासों में {महाविरोधी कौरव+पांडवों के}
द्वन्द्वः अस्मि अक्षयः कालः	द्वन्द्व {युद्ध का} समास हूँ। अविनाशी {कालचक्र में सदा हाजिर कालों का काल} महाकाल
अहं विश्वतोमुखः धाता अहमेव	हूँ, {दसों} दिशाओं में {ऊर्ध्वमुखी/पंचमुखी} परंब्रह्मा {महादेव भी} मैं ही {हूँ}।

मृत्युः सर्वहरश्च अहं उद्भवश्च भविष्यतां। कीर्तिः श्रीः वाक् च नारीणां स्मृतिः मेधा धृतिः क्षमा।। 10/34

सर्वहरः मृत्युरहं च भविष्यतां	सारे {संसार} का लोपकर्ता {प्रलयकर्ता} महामृत्यु हूँ और {निकट} भविष्यगत {जड़-जंगम}
उद्भवः च नारीणां	{रूप में पैदा होने वालों का} उद्गम हूँ और {अर्धनारीश्वर/ज्योति+लिंग में} नारियों की
कीर्तिः श्रीः वाक् स्मृतिः	{लक्ष्मी रूपा} कीर्ति, श्री वाक्देवी {बुद्धिरूपा सरस्वती, त्रिनेत्री शंकर की} आत्म-स्मृति
मेधा धृतिश्च क्षमा	{शिव-नेत्र के रूप में} समझशक्ति, {धर्मराज युधिष्ठिर का} धैर्य और {मैं सदाशिवज्योति ही} क्षमा हूँ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसां अहं। मासानां मार्गशीर्षः अहं ऋतूनां कुसुमाकरः।। 10/35

तथा साम्नां बृहत्साम छन्दसां	उसी तरह {विवस्वत सूर्योत्पन्न मीठे} सामवेद में बृहत्साम हूँ। छन्दों में {त्रिदेवियों का}

गायत्री अहं मासानां मार्गशीर्षः	गायत्री मंत्र मैं हूँ। महीनों में {सिर-जैसी सर्वोत्तम मार्गदर्शी पूर्णमासी का} मार्गशीर्ष,
ऋतूनां कुसुमाकरः अहं	ऋतुओं में {सदाबहारी हीरोपार्टधारी शिवबाबा रूपी सदासमान सुखदाई} बसन्त ऋतु हूँ।

द्यूतं छलयतां अस्मि तेजः तेजस्विनां अहं। जयः अस्मि व्यवसायः अस्मि सत्त्वं सत्त्ववतां अहं।। 10/36

अहं छलयतां द्यूतं तेजस्विनां तेजः	मैं {बहुरूपिया} छलियों का जुआ हूँ, {विवस्वत जैसे} तेजस्वियों का {ज्ञानसूर्य रूप} तेज
अस्मि जयोऽस्मि व्यवसायः	हूँ, {एकमात्र सदा विजयी ना0 की} जय हूँ, {विश्वनवनिर्माणार्थ} दृढ़निश्चयी {हूँ}
सत्त्ववतां सत्त्वं अहं अस्मि	{16 कला सतयुग के भी आदिकालीन} सात्विक पुरुषों {में आत्मा} की सात्विकता मैं हूँ।

वृष्णीनां वासुदेवः अस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः। मुनीनां अपि अहं व्यासः कवीनां उशना कविः।। 10/37

वृष्णीनां	{ज्ञानवर्षाकर्ता किंतु धारणकर्ता नहीं, ऐसे} वृष्णिवंशी {यूरोपवासी यादवों} में {ज्ञानधन दाता वसुदेव शिव का पुत्र}
वासुदेवोऽस्मि पांडवानां	वासुदेव={यादवों का भी बाप बंबं महादेव,} हूँ। {ब्रह्मलोकीय मार्गदर्शी} पण्डा रूप पाण्डु का पुत्र
धनंजयः मुनीनामहं व्यासः	ज्ञानधनजेता अर्जुन हूँ {द्वापुर के मननशील} मुनियों में मैं {कपिल की आत्मा} व्यास हूँ {और}
कवीनां उशना कविः अपि	कवियों में {शुक्राणुविद्या का आचार्य & हिंसायुक्त कामी असुरों का गुरु} उशना कवि भी {हूँ}

दण्डो दमयतां अस्मि नीतिः अस्मि जिगीषतां। मौनं चैव अस्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतां अहं।। 10/38

दमयतां दंडः अस्मि जिगीषतां	दमनकर्ताओं का {यम/धर्मराज रूप} दंडाधिकार हूँ, {आदिनारायण जैसे} विजयेच्छुकों की
नीतिरस्मि गुह्यानां मौनमस्मि	राजनीति हूँ, {गुप्त संबंध जोड़ने वाले} गोप-गोपियों का {स्वाभिमान-रक्षक} मौन हूँ
च ज्ञानवतां ज्ञानं अहमेव	& {पृथिव्यादि के तत्वदर्शी कपिल मुनि जैसे} ज्ञानवानों का तत्वज्ञानी मैं {शिवबाबा} ही {हूँ}।

यत् च अपि सर्वभूतानां बीजं तत् अहं अर्जुन। न तत् अस्ति विना यत् स्यात् मया भूतं चराचरं।। 10/39

चार्जुन सर्वभूतानां यदपि	और हे अर्जुन! {84 लाख योनियों में} सब प्राणीमात्र का जो {कुछ} भी {अनादि पितारूप}

बीजं तत् अहं तत् चराचरं भूतं	बीज है, वह {शिवसमान ज्योतिर्लिंग रूप} मैं हूँ। वैसा {एक भी} चराचर प्राणी {संसार में}
नास्ति यन्मया विना स्यात्	नहीं है जो मेरे {मानव-बीज योगीश्वर सनत्कुमार/जगन्नाथ/विश्वनाथ} से रहित हो।

{दुनियाँ की ऐसी कोई चीज़ नहीं जो (बीजरूप) तेरे पर लागू न हो। (मु.ता.11/4/74 पृ.3 अंत)}

{जैसे बिजली की पावर जड़ यंत्रों को चलाती है, वैसे ही योगीश्वर के योग की पावर पुरुषोत्तम संगमयुग की मानसी शूटिंग में प्राप्त नं. वार पुरुषार्थानुसार प्राणियों की जड़ देहरूप यंत्रों को चलाती है।}

न अन्तः अस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप। एष तु उद्देशतः प्रोक्तो विभूतेः विस्तरो मया।। 10/40

परंतप मम दिव्यानां विभूतीनामन्तः नास्ति	हे {कामादिक} शत्रुतापक! मेरी {नं.वार} दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है।
एष विभूतेः विस्तरः तु मया उद्देशतः प्रोक्तः	यह {ऊपर की बताई गई} विभूतियों का विस्तार तो मैंने संक्षेप में कहा है।

यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमत् ऊर्जितं एव वा। तत् तत् एव अवगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवं।। 10/41

वा यद्यदेव सत्त्वं विभूतिमत् श्रीमदूर्जितं	अथवा जो-2 {भी} प्राणी ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठबुद्धियुक्त, ऊर्जावान् {विशेषता सम्पन्न} है,
तत्तत्त्वं ममैव तेजोंऽश सम्भवमवगच्छ	उसे तू मेरे ही {पुरुषोत्तम संगमयुगी} तेज/योगऊर्जा के अंश से उत्पन्न हुआ जान।

{संगमयुगी शूटिंग में आत्म-बिंदुरूप बैटरीज़ को योगीश्वर की योग युक्त वृत्ति से पुरुषार्थ-अनुरूप योगऊर्जा मिलती है।}

अथवा बहुना एतेन किं ज्ञातेन तव अर्जुन। विष्टभ्य अहं इदं कृत्स्नं एकांशेन स्थितो जगत्।। 10/42

अथवा अर्जुन तव एतेन बहुना	अथवा हे अर्जुन! तुझे इतने {सागर समान विशाल ज्ञान जल-भंडार से} बहुत {विस्तार में}
ज्ञातेन किं अहं इदं कृत्स्नं जगत्	जानने से क्या {प्रयोजन है}? मैं {सदाशिवज्योति} इस सम्पूर्ण जगत को {अपने योग-ऊर्जा
एकांशेन विष्टभ्य स्थितः	भंडारी महादेव के} 1 अंशमात्र से टिकाकर {पुरु.संगम में भी} स्थित हूँ!

(150)

अध्याय-11

विश्वरूपदर्शनयोग-नामक 11वाँ अ0।।

[1-4 विश्वरूप के दर्शन-हेतु अर्जुन की प्रार्थना।]

अर्जुन उवाचः-मदनुग्रहाय परमं गुह्यं अध्यात्मसञ्ज्ञितं। यत् त्वया उक्तं वचः तेन मोहः अयं विगतो मम।। 11/1

त्वया मदनुग्रहाय यदध्यात्मसंज्ञितं परमं	आप {दयानिधान} ने मेरे ऊपर दया करके जो अध्यात्म नाम का परमश्रेष्ठ
गुह्यं वचः उक्तं तेन मम अयं मोहः विगतः	रहस्य कहा है, उससे मेरा यह {देह के सम्बन्धियों का} मोह दूर हो गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया। त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यं अपि च अव्ययं।। 11/2

हि कमलपत्राक्ष मया भूतानां	क्योंकि हे कमललोचन {शिवबाबा}! मैंने {इस पुरुषोत्तम संगमयुग में} प्राणियों की
भवाप्ययौ त्वत्तः विस्तरशः श्रुतौ	उत्पत्ति और विनाश को {चतुर्मुखी ब्रह्मा की वेदवाणी द्वारा} आपसे विस्तारपूर्वक सुना
च अव्ययं माहात्म्यं अपि	और {फिर मुकर्रर रथ में प्रश्नोत्तर पूर्वक आपका} अविनाशी महात्म्य भी {सुना}।

एवं एतत् यथा आत्थ त्वं आत्मानं परमेश्वर। द्रष्टुं इच्छामि ते रूपं ऐश्वरं पुरुषोत्तम।। 11/3

परमेश्वर त्वमात्मानं यथात्थ	हे परमेश्वर! आपने अपने {नं.वार योग-ऊर्जा युक्त विभूति वाला} जैसा {विस्तार} बताया है,
एतत् एवं पुरुषोत्तम	{यदि} यह ऐसा है {तो} हे {चतुर्युगी के बेहद रंगमंच के M.D./} आत्माओं में उत्तम {शिवबाबा!}
ते ऐश्वरं रूपं द्रष्टुं इच्छामि	आपके ऐश्वर्यवान् {विराट} रूप {महादेव} को {बुद्धि के ज्ञाननेत्र द्वारा} देखना चाहता हूँ।

मन्यसे यदि तत् शक्यं मया द्रष्टुं इति प्रभो। योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शय आत्मानं अव्ययं।। 11/4

प्रभो यदि इति मन्यसे मया तत् द्रष्टुं शक्यं ततः	हे प्रभु! यदि ऐसा मानते हो {कि} मैं उस {चमत्कार} को देख सकता हूँ, तो
योगेश्वर त्वं आत्मानं अव्ययं मे दर्शय	हे योगेश्वर! आप अपना अविनाशी {विभूति} रूप मुझे दिखाइए।

[5-8 भगवान द्वारा अपने विश्वरूप का वर्णन]

श्रीभगवानुवाचः-पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशः अथ सहस्रशः। नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।। 11/5

पार्थ नानाविधानि च नानावर्णाकृतीनि	हे पृथ्वीराज! अनेक प्रकार की {योनियों वाले} और अनेक वर्ण और आकार वाले
शतशः अथ सहस्रशः मे दिव्यानि रूपाणि पश्य	सैकड़ों और हज़ारों मेरे {पुत्ररूप रुद्राक्ष गणों के} दिव्य रूपों को देख।

पश्य आदित्यान् वसून् रुद्रान् अश्विनौ मरुतः तथा। बहूनि अदृष्टपूर्वाणि पश्य आश्चर्याणि भारत।। 11/6

भारत आदित्यान् वसून् रुद्रान्	हे भरतवंशी! {जिन चेतन रुद्राक्ष मणकों में} 12 सूर्यरूप चक्रवर्तियों, 8 वसुदेवों, 11 रुद्रों,
अश्विनौ मरुतः पश्य तथा	2 {जुड़वा} अश्विनी कुमारों, {49 सूक्ष्म देहधारी} मरुतों को देख। उसी प्रकार {चतुर्युगी में}
अदृष्टपूर्वाणि बहूनि आश्चर्याणि पश्य	पहले {पूर्वजन्मों में भी कभी} न देखे हुए बहुत-से {सांसारिक} आश्चर्यों को देख।

इह एकस्थं जगत् कृत्स्नं पश्य अद्य सचराचरं। मम देहे गुडाकेश यत् च अन्यत् द्रष्टुं इच्छसि।। 11/7

गुडाकेश अद्य मम इह देहे	हे निद्राजीत अर्जुन! आज मेरे इस {मानवीय बीजरूप बाप महादेव/आदम की} देह में
सचराचरं कृत्स्नं जगत् एकस्थं	जड़ और चेतन सहित सम्पूर्ण जगत् को {प्रतीकात्मक वटवृक्ष में} एक ही जगह में स्थित
पश्य च यत् अन्यत् द्रष्टुं इच्छसि	देख लो और जो अन्य कुछ भी देखना चाहते हो, {तीसरे ज्ञाननेत्र से देख लो}

न तु मां शक्यसे द्रष्टुं अनेन एव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगं ऐश्वरं।। 11/8

तु अनेनैव स्वचक्षुषा मां न द्रष्टुं	किंतु इन्हीं अपनी {इन} आँखों से मुझ {इस देह में स्थित विराट रूप} को नहीं देख
शक्यसे ते दिव्यं चक्षुः ददामि	सकेगा। तुझको दिव्य {बुद्धि की एडवांस सच्ची गीता वाला तीसरा ज्ञान-} नेत्र देता हूँ,
मे ऐश्वरं योगं पश्य	{जिससे} मेरे {चौरासी जन्मों के भी} ऐश्वर्यवान यौगिक {ऊर्जा-संपन्न हीरो पार्टधारी} रूप को देख {सकेगा}।

[9-14 संजय द्वारा धृतराष्ट्र के प्रति विश्वरूप का वर्णन]

संजय उवाचः-एवं उक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः। दर्शयामास पार्थाय परमं रूपं ऐश्वरं।। 11/9

ततः राजन् एवमुक्त्वा महायोगेश्वरः हरिः	तब राजन! ऐसा कहकर महान योगेश्वर पापहर्ता शिव {ज्योति भगवान}
पार्थाय परमं ऐश्वरं रूपं दर्शयामास	अर्जुन को परम ऐश्वर्यवान् {नं वार हीरो जैसे} विभूतिरूप दिखाने लगे।

अनेकवक्त्रनयनं अनेकाद्भुतदर्शनं। अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं।। 11/10

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनं। सर्वाश्चर्यमयं देवं अनन्तं विश्वतोमुखं।। 11/11

अनेकवक्त्रनयनं अनेकाद्भुतदर्शनं	{भाँति-2 के} अनेक मुख और नेत्र वाले, अनेक अद्भुत दर्शन वाले,
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं	अनेक {दिव्यगुणों के} आभूषणों वाले, उठाए हुए अनेक दैवीय ज्ञानायुधों वाले,
दिव्यमाल्याम्बरधरं	दिव्य {रूप रुद्राक्ष & विजय} मालाओं व {कंचनकायारूपी} वस्त्र धारणकर्ता, {अलौकिक}
दिव्यगंधानुलेपनं सर्वाश्चर्यमयं	दैवीय {गुणों की} सुगंध से लिम्पायमान, सब {प्रकार के बुलंद} आश्चर्यों से भरे हुए,
विश्वतोमुखं अनन्तं देवं	{पु. संगम में} विश्वधर्मों के {ऑलराउंडर} पंचानन परमब्रह्म के असीम विराट देव को {देखा}।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेत् युगपत् उत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्यात् भासः तस्य महात्मनः।। 11/12

यदि दिवि सूर्यसहस्रस्य भाः युगपत् उत्थिता	यदि आकाश में हज़ारों सूर्यों की कान्ति {1 देह में} एक साथ उदित
भवेत् सा भासः तस्य महात्मनः सदृशी स्यात्	हो {तो} वह कांति उस {विवस्वत} महान आत्मा के समान हो सकती है।

तत्र एकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तं अनेकधा। अपश्यत् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवः तदा।। 11/13

तदा पाण्डवः देवदेवस्य तत्र	तब {पाण्डु नामक} पण्डापुत्र पाण्डव ने {संसार-बीज} देवाधिदेव के उस {विराट}

शरीरे अनेकधा प्रविभक्तं कृत्स्नं	शरीर में अनेक रूपों के {दाईं-बाईं ओर के विधर्मियों+स्वदेशियों में} बँटे हुए सम्पूर्ण
जगत् एकस्थं अपश्यत्	{7 अरब के} जगत {रूपी अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष} को एक {सृष्टि-बीज आदिदेव} में {समूचा} स्थित देखा।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः। प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिः अभाषत।। 11/14

ततः स विस्मयाविष्टः हृष्टरोमा धनंजयः	तब वह आश्चर्य में भरा रोमांचित हुआ {परमपिता शिव-पुत्र} अर्जुन
देवं शिरसा प्रणम्य कृतांजलिः अभाषत	{विश्व} देव को मस्तक द्वारा प्रणाम करके हाथ जोड़ते हुए कहने लगा।

[15-31 अर्जुन द्वारा भगवान के विश्वरूप का देखा जाना और उनकी स्तुति करना]

अर्जुन उवाचः- पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्। ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।। 11/15

देव तव देहे सर्वान् देवान् च	हे देवाधिदेव! {मेरे द्वारा समर्पित अब} आपके {बने} शरीर में सब देवताओं को तथा
भूतविशेषसंघान्	{नं. वार योगऊर्जायुक्त} प्राणियों की विशेष प्रकार की {भिन्न योनि-} समुदायों को {इस वटवृक्ष रूप सृष्टिवृक्षीय}
कमलासनस्थं ब्रह्माणं च	{महादेव के व्यक्तित्व में पु.संगमी अनासक्ति के} कमलासन पर बैठे {सम्पन्न बने} चतुरानन को और
ईशं सर्वान् ऋषीन् तथा	{उसी देह से} श्रेष्ठतम शासक को, {संगठित पंचानन ब्रह्मा की ज्ञानेन्द्रियों में} सब ऋषियों को तथा
दिव्यान् उरगान् पश्यामि	{तीव्रगति से स्थानांतरित/सरकने वाले} दिव्य सर्प {रूप संन्यासियों} को देखता हूँ।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतः अनन्तरूपं। न अन्तं न मध्यं न पुनः तव आदिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।। 11/16

अनेकबाहु	{मनुष्य-सृष्टि के बीजरूप} अनेक {राजयोग-सहयोगी} भुजाओं वाले, {द्वापुर से भ्रष्टेन्द्रियों के कर्महिमायती}
उदरवक्त्रनेत्रं सर्वतः अनन्तरूपं	{कुरुवंशी वैश्यरूप} पेट, देवरूप मुख {और रुद्र+अक्ष रूप} नेत्र वाले, {ऐसे} सब ओर अनंतरूप
त्वां पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप पुनः	आप {विराट वटवृक्ष} को देखता हूँ। हे विश्वेश्वर! हे विश्वरूप! फिर भी {मैं}

तव न अन्तं न मध्यं न आदिं पश्यामि	आपके {लिंगरूप रथ में} न अंत को, न मध्य को, न आदि को {ही} देख पाता हूँ।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तं। पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्तात् दीप्तानलार्कद्युतिं अप्रमेयं।। 11/17

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं	{पवित्रता के} ताजधारी, {दृढ़ता के} गदाधारी, {84 जन्मों वाले} चक्र के धारणकर्ता
च तेजोराशिं सर्वतः दीप्तिमंतं	और {अखूट योग की ऊर्जारूप} तेज के पुंज, सब ओर {ज्ञान से प्रकाशित} दीप्तिवाले
समंतात् दुर्निरीक्ष्यं दीप्तानल	चारों ओर {योग की चकाचौंध में} कठिनाई से देखने योग्य, दीप्तिमान अग्नि {की}
अर्कद्युतिं अप्रमेयं त्वां पश्यामि	{ज्वाजल्यमान साक्षात् अग्निदेव जैसे} सूर्य की प्रभा वाले, उपमाहीन आपको देख रहा हूँ।

त्वं अक्षरं परमं वेदितव्यं त्वं अस्य विश्वस्य परं निधानं। त्वं अव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनः त्वं पुरुषो मतो मे।। 11/18

त्वं अक्षरं परमं वेदितव्यं त्वं अस्य	आप क्षरणरहित {अमोघवीर्य} परमपुरुष {शिवबाबा ही} जानने योग्य हैं। आप इस
विश्वस्य परं निधानं त्वं अव्ययः	विश्व के परम आश्रय हैं। आप {अर्जुन-रथ में} अविनाशी {पार्टधारी} आत्मा हैं।
शाश्वतधर्मगोप्ता मे मतः	शाश्वत {सत्य सनातन} धर्म के रक्षक हैं; {अतः} मेरी मान्यता है {कि सत्य सनातन धर्म के}
त्वं सनातनः पुरुषः	आप सनातन/ {प्राचीनतम धर्मपिता, ब्रह्मा के पुत्र •सनत्कुमार/विवस्वत द्वारा} परमपुरुष हैं।

•{1 धर्मपिता के नाम पर धर्म का नाम होता है; जैसे- बुद्ध से बौद्ध धर्म, क्राइस्ट से क्रिश्चियन, मुहम्मद से मुस्लिम धर्म। ऐसे ही सनत्कुमार से 'सनातन धर्म'। बाकी सिन्धु से बिगड़ते हुए 'हिन्दू' तो पश्चिमी विदेशियों का दिया हुआ नाम है। }

अनादिमध्यान्तं अनन्तवीर्यं अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रं। पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रम् स्वतेजसा विश्वं इदं तपन्तं।। 11/19

अनादिमध्यान्तं अनन्तवीर्यं	आदि, मध्य और अंतरहित {ऑलराउंडर} अमोघवीर्य वाले {आप ही तो विराट रूप में}
अनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं	असंख्य सहयोगी भुजाओं वाले, {दायीं-बायीं ओर से} ज्ञानचंद्रमा+ज्ञानसूर्य {शिव} नेत्र वाले,

दीप्तहुताशवक्त्रम् त्वां स्व-	धधकती हुई {रुद्रज्ञान} अग्निरूप मुख वाले {हे महारुद्र}! आपको अपने {बड़े पुत्र की योग-ऊर्जा के}
तेजसा इदं विश्वं तपन्तं पश्यामि	तेज से इस {महापापी, कलियुगी व नरकीय} संसार को तपाता हुआ देख रहा हूँ।

द्यावापृथिव्योः इदं अन्तरं हि व्याप्तं त्वया एकेन दिशश्च सर्वाः। दृष्ट्वा अद्भुतं रूपं उग्रं तव इदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।। 11/20

द्यावापृथिव्योः इदमन्तरं च सर्वाः	{स्वर्गीय दिन रूप} द्युलोक और {सप्त महाद्वीपा} पृथ्वी का यह अन्तराल और सारी
दिशः एकेन त्वया हि व्याप्तं तव	{ही दसों} दिशाएँ अकेले आप {विशाल बुद्धि} के द्वारा ही विस्तीर्ण हुई हैं। आप {महाकाल} का
इदमद्भुतमुग्रं रूपं दृष्ट्वा	यह अद्भुत भयंकर {कल्पान्तकारी महाविनाशक बम्बों-भूकम्पों की आग बरसाता} रूप देखकर,
महात्मन् लोकत्रयं प्रव्यथितं	हे महात्मन्! {सुख-दुःख-शांतिधाम} तीनों लोकों {कि प्राणी अंतःकरण में भय से} अत्यंत काँप रहे हैं।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति। स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।। 11/21

हि अमी सुरसंघाः त्वां विशन्ति	वास्तव में, ये {9 कुरी के ब्राह्मण सो} देव समूह आप {विराटरूप} में समा जाते हैं। {अतः }
केचित् भीताः प्रांजलयः गृणन्ति	कुछ {भक्त} भयभीत हुए हाथ जोड़कर गुण गाते हैं। {विश्व-कल्याण भाव के}
महर्षिसिद्धसंघाः स्वस्ति इति उक्त्वा	महर्षिगण व सिद्धों के समूह 'कल्याण हो'-2 ← ऐसे बोल कर {शास्त्रसंमत}
त्वां पुष्कलाभिः स्तुतिभिः स्तुवन्ति	आप की अनेक प्रकार से {वेदमंत्रों, कीर्तन आदि द्वारा} स्तुतियाँ करते हैं।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वे अश्विनौ मरुतश्च ऊष्मपाश्च। गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताः चैव सर्वे।। 11/22

ये रुद्रादित्या वसवः	जो 11 रुद्र, 12 सूर्य {जैसे चक्रवर्ती}, अष्टावसु {रूप आप की कुबेर-इन्द्रादि अष्टमूर्तियाँ}
च साध्या विश्वे अश्विनौ	और प्रत्येक देव विश्वदेव, दो {राम+कृष्ण} अश्विनी कुमार, {पुत्ररूप सूक्ष्मशरीरी ब्रह्मा+}
मरुतः च ऊष्मपाः च	49 मरुद्गण और योगूर्जा का तेजपाई {अन्यान्य सनातन कालीन बीजरूप रुद्रगण} हैं और
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः	गन्धर्व, यक्षगण {तथा कलियुगी} राक्षसों वा रिद्धि-सिद्धि {ज्ञाता तांत्रिक} समुदाय,

सर्वे त्वां एव विस्मिताः वीक्षन्ते	सब आप {प्यार के सागर} के {रौद्ररूप को} ही आश्चर्यान्वित हुए {टकटकी बाँधे} देख रहे हैं।

रूपं महत् ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादं। बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिताः तथा अहं।। 11/23

महाबाहो बहुवक्त्रनेत्रं	हे {8 सहयोगियों रूप} विशाल भुजाओं वाले! अनेक {शंख रूप} मुखवाले {& ज्ञान-}नेत्र वाले,
बहुबाहूरुपादं बहूदरं	अनेक {क्षत्रियरूप} भुजाओं, {कलियुग में} विस्तारित {शूद्ररूप} पैरों वाले, अनेकों {वैश्य रूप} पेट
बहुदंष्ट्राकरालं ते महत्	{और} अनेकों {नीचे-ऊपर एटमबंबों की} विकराल दाढ़ों वाले, आपके महान् {भयंकर}
रूपं दृष्ट्वा लोकाः तथाहं प्रव्यथिताः	{रौद्र} रूप को देखकर {संसार के} सब लोग तथा मैं {भी} अत्यंत काँप रहा हूँ।

नभःस्पृशं दीप्तं अनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रं। दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।। 11/24

हि विष्णो नभः स्पृशं अनेकवर्णं दीप्तं	क्योंकि हे प्रवेशनीय• {शिवबाबा! गी.11-54} नभस्पर्शी, अनेक रंगों में प्रदीप्त,
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रं त्वां	{डरावना} मुख फाड़ते हुए, चमकीली बड़ी-2 {क्रोधान्वित लाल-2} आँखों वाले, आपका
दृष्ट्वा प्रव्यथितान्तरात्मा	{रौद्र रूप} देखकर अत्यंत भयभीत अन्तरात्मा वाला {मैं इस तामसी कलियुगी निर्बलहृदय}
धृतिं च शमं न विन्दामि	{की देह में} धीरज और शांति नहीं पाता हूँ। {•Utyub में एडवांस सच्ची गीता से संबंधित सारा ज्ञान दिया है।}

•{विष्णु की व्युत्पत्ति है:- विश् धातो प्रवेशनात्} {'आदीश्वरचरित्र' में देखें पृ. 119 से 152; (U TUBE में; Adhyatmik Vidyalaya)}

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वा एव कालानलसन्निभानि। दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास।। 11/25

देवेश जगन्निवास दंष्ट्राकरालानि	हे देवों के ईश महादेव! हे जगन्नाथ! {नीचे-ऊपर के बंबों रूपी} विकराल दाढ़ों वाले
च कालानलसन्निभानि ते	और {पु. संगमी} प्रलयकालीन आग-जैसी उगलती आपकी {क्रांतिकारी वाणी के}
मुखानि दृष्ट्वा एव दिशः न जाने	मुखों को देखकर ही दिशाएँ {भी} भूल गया हूँ; {फिर उस वाणी का चिंतन करने से तो}
च शर्म न लभे प्रसीद	और चैन नहीं पड़ता। प्रसन्न हो जाइए। {वही चतुर्भुजी विष्णु का सौम्यरूप दिखाइए।}

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सह एव अवनिपालसङ्घैः। भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रः तथा असौ सह अस्मदीयैः अपि योधमुख्यैः।। 11/26

त्वां अस्मदीयैः योधमुख्यैः सह अमी	आपमें हमारे मुख्य योद्धाओं सहित, ये {भारतवासी प्रजा के रक्तपायी पूंजीपति}
धृतराष्ट्रस्य पुत्राः च भीष्मः	धृतराष्ट्र के {कौरव-कांग्रेसी} पुत्र और {सर्वव्यापी के भयंकर विषदाता} संन्यासी भीष्म,
द्रोणः तथा असौ सूतपुत्रःसह	{कलियुगी प्राचार्य} द्रोण तथा यह {सर्वोत्तम सूर्य जैसा सेवक अधिरथ}/सारथी का पुत्र कर्ण सहित
सर्वे एव अवनिपालसंघैःअपि	सारे ही {दुनियाँवी देशी-विदेशी प्रजातंत्र के} पृथ्वीपालों {मंत्री+अधिकारियों} का समूह भी

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि। केचित् विलग्नाः दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैः उत्तमाङ्गैः।। 11/27

ते दंष्ट्राकरालानि भयानकानि	आपके विकराल {एटामिक-मिसाइलिक} दाढ़ों वाले, भयंकर {डरावनी वाणीवक्ता और}
वक्त्राणि त्वरमाणा विशन्ति	{लम्बी जीभ के} मुखों में तीव्रतापूर्वक {सहमत हुए} घुसे जा रहे हैं। {भारतीयों में से ऐसी}
केचित् दशनान्तरेषु	कुछ {सीधी-सादी सामान्य जनजातियाँ} दाँतों के बीच में {झूठी मान्यताओं/परम्पराओं में}
विलग्नाः चूर्णितैः उत्तमांगैः संदृश्यन्ते	फँसे,चूर-2 हुए {बुद्धि रूपी} सिरों के साथ अच्छे से {प्रत्यक्ष} देखे जा रहे हैं।

यथा नदीनां बहवः अम्बुवेगाः समुद्रं एव अभिमुखाः द्रवन्ति। तथा तव अमी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राणि अभिविज्वलन्ति।। 11/28

यथा नदीनां बहवः अम्बुवेगाः समुद्रं एव	जैसे {जड़जल वाली गंगादि} नदियों की अनेक जलधाराएँ समुद्र की ओर ही
अभिमुखाः द्रवन्ति तथामी नरलोकवीराः	मुँह उठाए दौड़ती हैं, वैसे ही ये मनुष्यलोक के {ज्ञानयुद्धकर्ता} वीरपुरुष
तव अभिविज्वलन्ति वक्त्राणि विशन्ति	आप {ज्ञानसूर्य} के चारों ओर से धधकते हुए मुखों में {तेजी से} प्रवेश कर रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः। तथैव नाशाय विशन्ति लोकाः तव अपि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।। 11/29

यथा पतंगाः प्रदीप्तं ज्वलनं नाशाय समृद्धवेगाः	जैसे पतंगे {दहकती हुई} प्रज्वलित अग्नि में मरने के लिए झपटकर
विशन्ति तथा एव लोकाः अपि नाशाय	{खिंचे हुए} जा गिरते हैं, वैसे ही लोग भी {अपने देहभान का} विनाश के लिए

समृद्धवेगाः तव वक्त्राणि विशन्ति	झपटते हुए {सहमत हो} आपके {आग उगलते} मुखों में {प्रभावित हुए} चले जाते हैं।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्तात् लोकान् समग्रान् वदनैः ज्वलद्भिः। तेजोभिः आपूर्य जगत् समग्रं भासः तव उग्राः प्रतपन्ति विष्णो।। 11/30

विष्णो ज्वलद्भिः वदनैः समग्रान् लोकान्	हे प्रवेशनीय {शिवबाबा! क्रोध में} जलते हुए मुखों से {आप} सब लोगों को
समंतात् ग्रसमानः लेलिह्यसे तवोग्राः	चारों ओर से निगलते {समाते} हुए चाट रहे हैं। आपकी {तीखी वाणी की} भयंकर
भासः समग्रं जगत्तेजोभिरापूर्य प्रतपन्ति	ज्वालाएँ सारे संसार को तेज से भरती हुई तीव्रता से जला रही हैं।

आख्याहि मे को भवान् उग्ररूपः नमः अस्तु ते देववर प्रसीद। विज्ञातुं इच्छामि भवन्तं आद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिं।। 11/31

देववर मे आख्याहि उग्ररूपः भवान्	हे देवश्रेष्ठ महादेव! मुझे बताइए {ऐसे महाकाल की तरह} भयंकर रूप वाले आप
कः ते नमः अस्तु प्रसीद भवन्तं	कौन हैं? आपको प्रणाम है। प्रसन्न हो जाइए। आपके {सनातनी व्यक्त+अव्यक्त}
आद्यं विज्ञातुं इच्छामि हि	आदिकालीन {ज्योतिर्लिंग रूप} को जानना चाहता हूँ; क्योंकि {हे रहस्यमय शिवबाबा!}
तव प्रवृत्तिं न प्रजानामि	आपके {आश्चर्यजनक, विस्मयभरे & बहुरूपी} क्रियाकलाप को {मैं} बिल्कुल नहीं जानता हूँ।

[32-34 भगवान द्वारा अपने प्रभाव का वर्णन और अर्जुन को युद्ध के लिए उत्साहित करना]

श्रीभगवानुवाचः- कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः। ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।। 11/32

लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः कालः अस्मि	संसार का महाविनाशकर्ता {कल्पान्तकालीन} विकराल काल मैं हूँ {और सब धर्मों में से}
इह लोकान् समाहर्तुं प्रवृत्तः	यहाँ {शतवर्षीय पु. संगमयुगी शूटिंग में विष्णुलोकीय वैकुण्ठ के श्रेष्ठ} लोगों के संगठनार्थ लगा हूँ।
प्रत्यनीकेषु ये योधाः अवस्थिताः	विरोधी {धर्मों की} सेनाओं में जो योद्धा {बड़े ज्ञानी बने} खड़े हैं,
सर्वे त्वां ऋतेऽपि न भविष्यन्ति	{वे} सब तेरे {धर्मयुद्ध में} न होने पर भी नहीं बचेंगे; {अवश्य अनिश्चय की मौत मरेंगे।}

तस्मात् त्वं उत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धं। मया एव एते निहताः पूर्वं एव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। 11/33

तस्मात् त्वं उत्तिष्ठ यशः लभस्व	इसलिए तू उठ खड़ा हो। कीर्ति प्राप्त कर। {अपने अंदर के देहभान से पैदा कामादिक}
शत्रून् जित्वा समृद्धं राज्यं भुङ्क्ष्व	शत्रुओं को जीतकर वैभव संपन्न {जगतजीत बन सारे संसार के} राज्य का भोगकर।
एते पूर्वं एव मया	ये {कामादि के साकार रूप दुर्योधन-दुःशासनादि} पूर्व {कल्प} में भी मेरे {मूर्तरूप} द्वारा
निहताः सव्यसाचिन्	{देहभान से} मारे गए थे; {अतः अब भी} हे वामांगी {शिखंडी रूपा जगदंबा द्वारा} शरसंधानक!
एव निमित्तमात्रं भव	{हिम्मत करके} केवल निमित्तमात्र बन जा। {कल्प•-2 की हूबहू विश्वविजय जैसे हुई पड़ी है।}

•{कल्प-2 लगि प्रभु-अवतारा। (तुलसी. कृत रामायण) कहते भी हैं-'हिस्ट्री रिपीट्स इट सैल्फ'।}

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा अन्यान् अपि योधवीरान्। मया हतान् त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।। 11/34

द्रोणं च भीष्मं	{शास्त्रीय बुद्धिरूप कलश वाले} द्रोण और {काम-इन्द्रिय के युद्ध से दूरबाज़-खुशबाज़} संन्यासी भीष्म
च जयद्रथं	{जैसे स्वर्ग-सुखत्यागी} तथा {अरबियन यवनों के विशाल शरीर वाले देहाकार से दूसरे धर्मों के ऊपर विजयी} जयद्रथ
च कर्णं तथा मया	और {उत्तम सारथी अधिरथ बने ज्ञानसूर्य-पुत्र} कर्ण को, वैसे ही मेरे {पुत्र मूर्तिमान महादेव} द्वारा
हतान् अन्यान् अपि	{कल्पपूर्व-शूटिंग में 5000 वर्ष पूर्व} मारे गए दूसरे भी {द्वैतवादी द्वापुर से आए विदेशी-}
योधवीरान् त्वं जहि मा	{विधर्मी} वीर योद्धाओं {की वृद्धि} को तू नष्ट कर दे {नारकीय पाप के पक्षपातियों से} ना
व्यथिष्ठा युध्यस्व रणे	डरो। {धर्म-} युद्ध करो; {क्योंकि तुम्हीं सन्नद्ध महाभारी महाभारत के} धर्मयुद्ध में {देहभान से पैदा}
सपत्नान् जेतासि	{इन आततायी कामी-क्रोधी} शत्रुओं को {ज्ञान-योगबल और गुणराज सहनशक्ति से} जीतने वाले हो।

[35-46 भयभीत हुए अर्जुन द्वारा भगवान की स्तुति और चतुर्भुजरूप का दर्शन कराने के लिए प्रार्थना]

सञ्जय उवाचः- एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी। नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य।। 11/35

केशवस्य एतत् वचनं श्रुत्वा	ब्रह्मा के स्वामी {शिवबाबा} की {अहिंसा परमधर्म की} इस बात को सुनकर

किरीटी वेपमानः कृतांजलिः	{विश्वनिर्माण-जिम्मेवारी के} ताजधारी अर्जुन ने काँपते हुए {बुद्धि रूपी} हाथ जोड़कर
नमस्कृत्वा भूय एव भीतभीतः	झुककर {और} फिर भी {महाभारत के सन्नद्ध खूनीनाहक खेल से} भयभीत हुआ
प्रणम्य सगद्गदं कृष्णमाह	पूरा {नम्रतापूर्वक} झुकते हुए रूँधी वाणी से आकर्षणमूर्त {शिवबाबा} से {ऐसे} कहा।

अर्जुन उवाचः- स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च। रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः।। 11/36

हृषीकेश स्थाने तव प्रकीर्त्या	हे {मेरी चंचल, बेलगाम, अश्वरूप} इन्द्रियों के स्वामी! ठीक है कि आपके उत्तम कीर्तिगान/स्तुति से
जगत् प्रहृष्यति चानुरज्यते	जगत-समुदाय प्रसन्न होता है और {कीर्ति में} अनुरागी है। {यही कारण है कि}
भीतानि रक्षांसि दिशः द्रवन्ति च	डरे हुए {क्रोधादि रूप भयभीत हुए} राक्षस दिशाओं में भाग रहे हैं और {सफलताप्राप्त}
सिद्धसंघाः सर्वे नमस्यन्ति	{पुरुषार्थी} सिद्धों के समूह सब {ही आपको नम्रचित्त से झुककर हाथ जोड़} प्रणाम कर रहे हैं।

कस्मात् च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणः अपि आदिकर्त्रे। अनन्त देवेश जगन्निवास त्वं अक्षरं सत् असत् तत्परं यत्।। 11/37

महात्मन् अनन्त देवेश जगन्निवास	हे महात्मा! अन्तहीन {गुणवाले} देवाधिदेव! हे जगदाधार! {त्रिमूर्ति शिव}
ब्रह्मणः अपि आदिकर्त्रे च गरीयसे ते	ब्रह्मा के भी आदि रचनाकार और सबके जगद्गुरू को वे {विदेशी-विधर्मी और}
कस्मात् न नमेरन् सत् असत्	{शक्तिशाली हिंसक/कुकर्मी} कैसे {बुद्धि से} नमन नहीं करेंगे? सत्य-असत्य
तत्परं यत् अक्षरं त्वं	{देव और दानव} उन दोनों से परे जो {आप एकमात्र सदा} अमोघवीर्य हैं, {वह} आप {शिवबाबा ही} हो।

त्वं आदिदेवः पुरुषः पुराणः त्वं अस्य विश्वस्य परं निधानं। वेत्ता असि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वं अनन्तरूप।। 11/38

त्वं आदिदेवः परं धाम पुराणः पुरुषः	आप आदिदेव हो। परे-ते-परे {परमब्रह्म के} धाम वाले हो। पुरातन पुरुष हो।
त्वं अस्य विश्वस्य परं निधानं च वेत्ता	आप इस विश्व के परम आश्रय हो और {सब-कुछ} जानने वाले {त्रिकालदर्शी} हो
च वेद्यं असि अनन्तरूप	तथा {संगम में सदासर्वदा अखूट ज्ञान-भंडारी रूप में} जानने योग्य हो। हे अनंतगुण रूप {शिवबाबा !}

त्वया विश्वं ततं	{वटबीज रूप से सृष्टिवृक्ष जैसे} आप {के निराकारी-निर्विकारी बने बीजरूप जगत्पिता} से विश्व फैला है।

वायु: यम: अग्नि: वरुण: शशाङ्क: प्रजापति: त्वं प्रपितामहश्च। नम: नम: ते अस्तु सहस्रकृत्व: पुनश्च भूय: अपि नम: नम: ते।। 11/39

वायु: यम: अग्नि: वरुण: शशांक:	वायुदेव, यमदेव, अग्निदेव, वरुणदेव, चंद्रमा/{देवेन्द्र आदि सभी दिग्पालों के भी}
प्रजापति: च	प्रजापति {जो कलियुगांत के पुरुषोत्तम संगमयुग में 7 अरब सर्वधर्मियों का एक ही जगत्पिता है} और
प्रपितामह: त्वं ते सहस्रकृत्व:	{उस जगत्पिता के भी} पितामह/डाडे {शिवसुप्रीम} आप हो; {अत: केवल} आपको सहस्रों बार
नम:-2 अस्तु च पुन: अपि ते नम:-2	नमस्कार! नमस्कार हो! और फिर भी {भूलचूक से भी} आपको बारम्बार नमन है।

नम: पुरस्तात् अथ पृष्ठत: ते: नम: अस्तु ते सर्वत एव सर्व। अनन्तवीर्य अमितविक्रम: त्वं सर्वं समाप्नोषि तत: असि सर्व:।। 11/40

ते पुरस्तात् अथ पृष्ठत: नम:	आपको {सच्चाई से} सन्मुख और पीछे से नमस्कार। {ये मात्र दिखावटी सम्मान नहीं है।}
सर्व सर्वत ते एव नम: अस्तु	हे प्राणीमात्र के सबकुछ! आपको ही {दसों दिशाओं में सब ओर से} नमस्कार हो।
अनन्तवीर्य त्वं अमितविक्रम:	हे अनंतवीर्य! आप अत्यंत पराक्रमी हो। {क्योंकि आप ही सर्वशक्तिमान महादेव की योग-}
सर्वं समाप्नोषि तत: सर्व: असि	{ऊर्जा से नं. वार} सबमें समाए हुए हो। इसलिए {प्राणीमात्र केलिए आप ही} सब-कुछ हो।

सखा इति मत्वा प्रसभं यत् उक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति। अजानता महिमानं तव इदं मया प्रमादात् प्रणयेन वा अपि।। 11/41

हे सखे तव इदं महिमानं अजानता सखा	हे सखे! आपकी इस {अतुलनीय} महिमा को अज्ञानता से {आपको} सखा
इति मत्वा प्रमादात् वा प्रणयेन अपि मया	मानकर प्रमाद से अथवा प्रेम के कारण भी मेरे द्वारा {भूल चूक से भी}
हे कृष्ण हे यादव इति यत् प्रसभं उक्तं	हे आकषणमूर्त हे यदुवंशी बं महादेव! ऐसे जो {कुछ} अनादर से कहा हो,

यत् च अवहासार्थं असत्कृत: असि विहारशय्यासनभोजनेषु। एक: अथवा अपि अच्युत तत्समक्षं तत् क्षामये त्वां अहं अप्रमेयं।। 11/42

च विहारशय्यासनभोजनेषु एक: अथवा	और खेल में, बिस्तर में लेटे या बैठे हुए, भोजन में, अकेले में अथवा

तत्समक्षं अवहासार्थमपि यदसत्कृत: असि	दूसरे के सामने {असम्मानपूर्वक} हँसी-मजाक में भी जो अनादर किया हो,
तत् अच्युत अप्रमेयं त्वां अहं क्षामये	उसके लिए हे अमोघवीर्य! हे उपमाहीन! आपसे मैं {नाचीज़} क्षमा माँगता हूँ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्। न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिक: कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।। 11/43

त्वं अस्य चराचरस्य लोकस्य पिता असि	आप इस {साकार} जड़-चेतन जगत् के {महादेव द्वारा बीजरूप} पिता हो
च पूज्य: गरीयान् गुरु:	और {उसी अविनाशी देह से जगत् के} पूजनीय सर्वोत्तम {साकार में एकमात्र सद्} गुरू {भी} हो।
अप्रतिमप्रभाव लोकत्रये त्वत्सम: अपि	हे अनुपम प्रभाव वाले! तीनों लोकों में आप समान भी {ऐसी कोई आत्मा}
न अस्ति अन्य: अभ्यधिक: कुत:	{त्रिकालज्ञ} नहीं है, तो दूसरा {आपसे} बढ़कर {शक्तिशाली} कहाँ से {होगा}?

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वां अहं ईशं ईड्यं। पिता इव पुत्रस्य सखा इव सख्यु: प्रिय: प्रियाया: अर्हसि देव सोढुं।। 11/44

तस्मात् कायं प्रणिधाय प्रणम्य ईड्यं	अत: शरीर को भली-भाँति {सच्चाई पूर्वक} अर्पण कर, खूब नम्र होकर, गायन योग्य,
त्वां ईशं अहं प्रसादये देव इव	{बहुधा प्रशंसनीय} आप ईश्वर को मैं प्रसन्न करता हूँ। हे देव! जैसे {अजीज सम्बन्धियों में}
पिता पुत्रस्य सखा सख्यु: प्रिय: प्रियाया:	पिता पुत्र के, मित्र मित्र के {और} पति पत्नी के {या कोई भी प्रिय सम्बन्धी के}
इव सोढुं अर्हसि	{अपराध सहन करता है, क्षमा करता है}, वैसे ही {मेरे अपराध} सहन करने, {क्षमा करने में आप} समर्थ हो।

अदृष्टपूर्वं हृषित: अस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे। तत् एव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास।। 11/45

अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा हृषितोऽस्मि च	पहले कभी न देखे {रूप} को {बुद्धि रूपी त्रिनेत्र से} देखकर हर्षित हुआ हूँ, फिर भी
भयेन मे मन: प्रव्यथितं देव	{भयंकर रूप देख} भय से मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हुआ है; {अत:} हे ज्ञान-दाता!
तदेव रूपं मे दर्शय	वही {पहले वाला वैकुण्ठ वासी विष्णु का सौम्य-सुखद} रूप मुझे {बुद्धिगत् तीसरे नेत्र से} दिखाइए।
देवेश जगन्निवास प्रसीद	हे देवों के देव {शिवबाबा}! जगत के {सदा अखूट} आश्रय ! {अभी मैंने जान लिया} प्रसन्न हो जाइए।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तं इच्छामि त्वां द्रष्टुं अहं तथैव। तेन एव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।। 11/46

किरीटिनं गदिनं	{सम्पन्न होने वाले विश्व-नवनिर्माण की ज़िम्मेवारी के} ताजधारी, {संकल्प में दृढ़ता रूपी} गदाधारी,
चक्रहस्तं त्वां तथैव द्रष्टुं	{महादेव द्वारा बुद्धि रूपी} हाथ में {84 जन्मों के} चक्रधारी, आपको उसी रूप में देखने का
अहं इच्छामि विश्वमूर्ते सहस्रबाहो	मैं इच्छुक हूँ। हे विराट्- विश्वमूर्ति! हे {चतुर्मुखी ब्रह्मा की} हज़ार सहयोगी भुजाओं वाले
चतुर्भुजेन तेन एव रूपेण भव	चतुर्भुज रूप से उसी {साकारी सुमधुर विष्णु} रूप में {पूर्व जैसे फिर से} हो जाइए।

[47-50 भगवान द्वारा अपने विश्वरूप के दर्शन की महिमा का कथन तथा चतुर्भुज और सौम्यरूप का दिखाया जाना]

श्रीभगवानुवाचः- मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्। तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।। 11/47

अर्जुन परं तेजोमयं आद्यं अनन्तं	हे अर्जुन! परं तेजोमय {पुरुषोत्तम संगमयुग का} आदिकालीन अनन्त गुण वाला
इदं विश्वं रूपं मया आत्मयोगात्	यह विराट रूप मैंने {तेरे जैसी संतान के लिए कल्प-2 में संचित} अपनी योगूर्जा से
प्रसन्नेन तव दर्शितं यत्	{कार्यसिद्धि में} प्रसन्नतापूर्वक तेरे को {तीसरे बुद्धि-नेत्र से} दिखाया, जो {दुनियाँ में कभी भी}
मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वं	मेरा {यह इस प्रकार विराट रूप} तेरे {वर्तमान तामसी पतितरूप के} सिवा पहले नहीं देखा गया था।

न वेदयज्ञाध्ययनैः न दानैः न च क्रियाभिः न तपोभिः उग्रैः। एवंरूपः शक्यः अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।। 11/48

कुरुप्रवीर एवंरूपः अहं न	हे {कर्मेन्द्रिय घमंडी} कुरुकुल के {भी हीरो} वीरप्रवर! ऐसे {बुद्धिगम्य अद्भुत} रूप वाला मैं न
वेदयज्ञाध्ययनैः न दानैः न क्रियाभिः	वेद {वाणी}, यज्ञ {और} स्वाध्याय से, न दान से, न {कर्मकाण्डीय} क्रियाओं से
च न उग्रैः तपोभिः त्वदन्येन	और न कठोर {दैहिक यंत्रणादाई} तपस्याओं से तेरे अतिरिक्त कोई दूसरा {5 अरब के}
नृलोके द्रष्टुं शक्यः	मनुष्यलोक में {ज्ञानगम्य बुद्धि से} देखने को समर्थ है। {इसमें अंधश्रद्धा की तो बात ही नहीं।}

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरं ईदृक् मम इदं। व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनः त्वं तत् एव मे रूपं इदं प्रपश्य।। 11/49

मम ईदृक् इदं घोरं रूपं दृष्ट्वा ते मा व्यथा	मेरा ऐसा यह {प्रलयंकारी} भयंकर रूप देखकर तू {मेरा सखा है}, मत घबरा
च मा विमूढभावः व्यपेतभीः	और न {बुद्धू जैसा} किंकर्तव्यविमूढ़ हो। {देहभान-निर्मित} भय त्याग {आत्मस्थ हुआ}
प्रीतमनाः त्वं पुनः मे तत् एव इदं रूपं प्रपश्य	प्रसन्न मन वाला तू फिर से मेरे उस ही इस {सौम्य} रूप को देख।

सञ्जय उवाचः- इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः। आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।। 11/50

इति वासुदेवः अर्जुनं तथा	ऐसे {अखूट ज्ञान धनदाता वसुदेव शिव के पुत्र} वासुदेव ने {धनंजय} अर्जुन को {प्यार से} ऐसे
उक्त्वा भूयः स्वकं रूपं दर्शयामास	कहकर पुनः अपना {शंकर-पार्वती+ब्रह्मा-सरस्वती = चतुर्भुजी विष्णु} रूप दिखाया
च पुनः सौम्यवपुः भूत्वा महात्मा	और फिर शांतरूप होकर महान् आत्मा {परमपिता सदाशिव+महादेव ने}
भीतं एनं आश्वासयामास	{देहभान से} भयभीत इस {अर्जुन} को {पहले की तरह उत्साहित करते हुए} आश्वस्त किया।

[51-55 बिना अनन्यभक्ति के चतुर्भुजरूप के दर्शन की दुर्लभता का और फलसहित अनन्यभक्ति का कथन]

अर्जुन उवाचः-दृष्ट्वा इदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन। इदानीं अस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।। 11/51

जनार्दन तवेदं सौम्यं मानुषं	हे मानव-आर्तनाद-श्रोता {शिवबाबा}! आपका यह {सम्पूर्ण चंद्रमा-जैसा} शांत मानवीय
रूपं दृष्ट्वा इदानीं सचेताः	स्वरूप देखकर अब सचेत हुआ हूँ; {नहीं तो निश्चय ही किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था, अब}
संवृत्तः अस्मि प्रकृतिं गतः	पूरी तरह स्थिर हो गया हूँ। अपनी स्वाभाविक {आत्मिक} स्थिति में आ गया हूँ।

श्रीभगवानुवाचः-सुदुर्दर्शं इदं रूपं दृष्टवान् असि यत् मम। देवा अपि अस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।। 11/52

मम यद्रूपं दृष्टवानसि इदं सुदुर्दर्शं	मेरे जिस रूप को {ज्ञाननेत्र से} देखा है, इसे देखना बहुत कठिन है।

देवापि नित्यमस्य रूपस्य दर्शनकांक्षिणः	{पूजनीय} देवात्माएँ भी सदैव इस रूप के दर्शनाभिलाषी रहते हैं।

न अहं वेदैः न तपसा न दानेन न च इज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवान् असि मां यथा।। 11/53

एवंविधः मां यथा दृष्टवानसि	इस भाँति मुझको जिस रूप में {तूने त्रिनेत्र से} देखा है, {उस रूप में कभी भी}
अहं न वेदैर्न तपसा न दानेन	मुझे न {नर-निर्मित त्रिगुणात्मक} वेदों द्वारा, न {दैहिक} तप द्वारा, •न दान द्वारा
च न इज्यया द्रष्टुं शक्यः	और न {मन की एकाग्रता बिना मात्र स्वाहा-2 वाले} यज्ञ द्वारा {ही} देखा जा सकता है;

{•यज्ञ-तप-दानादि करने से मैं नहीं मिलता हूँ। (मु.ता.8.2.68 पृ.3 मध्यादि)} {शास्त्र लिखने-पढ़ने से भी नहीं मिलता।}

भक्त्या तु अनन्यया शक्य अहं एवंविधः अर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।। 11/54

तु परंतप अर्जुन अनन्यया	किंतु हे {कामादिक} शत्रुतापक अर्जुन! {'मामेकम्' की} अव्यभिचारी {स्मृति से भरपूर}
भक्त्या अहं एवंविधः ज्ञातुं	भक्ति से मैं {एडवांस सच्चीगीता द्वारा} ऐसा विधानरूप जानने-पहचानने, {और ऐसे ही}
तत्त्वेन द्रष्टुञ्च प्रवेष्टुञ्च शक्यः	{मुकर्रर रथ में भली-भाँति} तत्त्वपूर्वक देखने और {उसमें} प्रवेश करने में भी समर्थ हूँ।

मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मां एति पाण्डव।। 11/55

पाण्डव यः मत्कर्मकृत्	हे {पाण्डुनामक परमतीर्थनेता} पण्डा शिव-पुत्र अर्जुन! जो मेरे {यज्ञसेवार्थ} कर्म करता है,
मत्परमः संगवर्जितः मद्भक्तः	मुझे {वैयक्तिक रूप से} परमगति मानता है, अन्य संगरहित हुआ मुझे भजता है,
स सर्वभूतेषु निर्वैरः मां एति	वह सब {श्रेष्ठ या निष्कृष्ट} प्राणियों में वैरहीन हुआ मुझ शिवबाबा को पाता है।

(166)

अध्याय-12

भक्तियोग-नामक 12वाँ अ0।।

[1-12 साकार और निराकार के उपासकों की उत्तमता का निर्णय और भगवत्प्राप्ति के उपाय का विषय]

अर्जुन उवाचः-एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते। ये च अपि अक्षरं अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।। 12/1

सततयुक्ता एवं ये भक्ताः त्वां	सदा योगयुक्त हुए ऐसे जो भक्तजन {साकार सौम्यरूप} आपकी {तन-मन-धन-सबंधादि}
पर्युपासते च ये अक्षरं अव्यक्तं	सब प्रकार से उपासना करते हैं और जो अविनाशी, अदृष्ट {निराकार शिवज्योति} को
अपि तेषां के योगवित्तमाः	भी {सदा याद करते हैं}, उन {सगुण-निर्गुणोपासियों} में कौन योग के मर्म को अधिक जानते हैं?

श्रीभगवानुवाचः-मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः।। 12/2

ये मनः मयि आवेश्य नित्ययुक्ताः	जो {अपने चंचल} मन को {अव्यभिचारी रूप से} मुझमें स्थिर करके सदा योगयुक्त हुए,
परया श्रद्धया उपेताः मां उपासते	परम श्रद्धा से भरकर मुझ {व्यक्तिगत अर्जुन के स्थाई रथ में शिवज्योति} को याद करते हैं,
ते मे युक्ततमा मताः	वे मेरे {सिरचढ़े अष्टमूर्ति पु. संगम में} सब {16108} योगियों में श्रेष्ठतम माने गए हैं;

ये तु अक्षरं अनिर्देश्यं अव्यक्तं पर्युपासते। सर्वत्रगं अचिन्त्यं च कूटस्थं अचलं ध्रुवं।। 12/3

तु ये अक्षरमनिर्देश्यं	किंतु जो {योगी अभोक्ता होने से कभी} पतित न होने वाले, {आत्यंतिक वा समान सूक्ष्म होने से} अनिर्वचनीय,
सर्वत्रगं अचिन्त्यं	{त्रिकालदर्शी होने से} सब जगह पहुँचने वाले, {सर्व साधारण देवों द्वारा} चिंतन न करने योग्य को,
कूटस्थं अचलं ध्रुवं	{पुरुषार्थ में सर्वोच्च ब्राह्मण चोटी/एवरेस्ट} पर्वतशिखरस्थ, अचल-{अडोल-चेतन} ध्रुव तारा को
च अव्यक्तं पर्युपासते	और निराकार {सो सदा अभोक्ता शिवज्योति} को भली-भाँति {वाचारहित मन-बुद्धि से} याद करते हैं,

सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः। ते प्राप्नुवन्ति मां एव सर्वभूतहिते रताः।। 12/4

ते इन्द्रियग्रामं सन्नियम्य	वे {अनंगयोगी} सभी 11 इन्द्रियों को पूरा संयम में रखकर, {स्थिर बनी मन-बुद्धि से}
सर्वत्र समबुद्धयः सर्वभूतहिते	सर्व {स्थानिक परिस्थितियों} में समदर्शी, सब {तुच्छ या श्रेष्ठ} प्राणियों के कल्याण में
रताः मां एव प्राप्नुवन्ति	लगे हुए, {जन्म-जन्मान्तर अद्वैत भाव से} मुझ {एकलिंग भगवान} को ही प्राप्त होते हैं।

क्लेशः अधिकतरः तेषां अव्यक्तासक्तचेतसां। अव्यक्ता हि गतिः दुःखं देहवद्भिः अवाप्यते।। 12/5

अव्यक्तासक्तचेतसां तेषां	अव्यक्त निराकार {सूक्ष्मतमाणु अचिन्त्यरूप} में आसक्त हुए उन {योगियों} को
क्लेशः अधिकतरः हि देहवद्भिः	कठिनाई अधिक है; क्योंकि देहभानी {विधर्मी-विदेशी या अधर्मी सब धर्मपिताओं} द्वारा
अव्यक्ता गतिः दुःखं अवाप्यते	{देहांकार से} निराकारी गति {धर्म के धक्के खाकर बड़े परिश्रम से,} दुःखपूर्वक प्राप्त होती है;

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः। अनन्येन एव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।। 12/6

तु मत्पराः ये सर्वाणि कर्माणि	किंतु मेरे {मूर्तिमंत शंकर के} आश्रित जो {तन धनादि के अफलाकांक्षी योगी} सब कर्मों को
मयि संन्यस्य अनन्येन योगेन	मुझ {योगीश्वर यज्ञ-पिता} में {मन-बुद्धि सहित} संपूर्णतया अर्पित कर अव्यभिचारी याद से
ध्यायन्तः मां एव उपासते	{अव्यक्तमूर्ति में} ध्यानमग्न हुए मेरी ही {प्रवेशनीय मूर्ति होने से अनवरत सहज} उपासना करते हैं,

तेषां अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। भवामि नचिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसां।। 12/7

तेषां मय्यावेशितचेतसां पार्थ	उन मेरे में {ही 'मद्भक्तो...मां नमस्कुरु' (गी.9-34) वाली} मन-बुद्धि वालों का, हे पृथ्वीराज!
अहं नचिरात्• मृत्युसंसार-	मैं {सुखसागर} •अतिशीघ्र {50-60 वर्षों में ही जन्म-जरा} मृत्यु-{दुख वाले} संसार {रूप विषय}

सागरात् समुद्धर्ता भवामि	{विकारों के} सागर से {लेशमात्र दुःखरहित कृतत्रेता के आधाकल्प तक} संपूर्ण उद्धार करने वाला हूँ।

•{'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा'} (गी.9-31) {'क्षिप्रं...सिद्धिर्भवति'} (गी.4-12) {हि.आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते (गी. 2-65)}

मयि एव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मयि एव अत ऊर्ध्वं न संशयः।। 12/8

मयि एव मन आधत्स्व मयि	मुझ {व्यक्त आदम/अर्जुन के तन में आए शिवज्योतिबिंदु} में ही मन लगा। मेरे में {अपनी}
बुद्धिं निवेशय अत ऊर्ध्वं मयि	{चंचल बनी मन-} बुद्धि को स्थिर कर। इस प्रकार ऊर्ध्वमुखी {हुए पंचानन परमब्रह्मरूप} मुझमें
एव निवसिष्यसि न संशयः	ही {लगावपूर्वक हृदय से जन्म-जन्मान्तर भी} निवास करेगा, {इसमें} संदेह नहीं है।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरं। अभ्यासयोगेन ततो मां इच्छ आप्तुं धनञ्जय।। 12/9

धनंजय अथ मयि चित्तं स्थिरं	हे ज्ञानधनजेता! यदि मेरे {सूक्ष्माणुरूप अव्यक्त रूप} में चित्त को {निरंतर} स्थिरता पूर्वक
समाधातुं शक्नोषि न ततः	{सदाकाल} लगाने में समर्थ नहीं है, तो {सन्नद्ध एटामिक महाविनाश के वैरागसहित बारम्बार स्मृति के}
अभ्यासयोगेन मां आप्तुं इच्छ	योगाभ्यास द्वारा {मुकर्रर रथ में} मुझ {अव्यक्त शिवज्योति} को पाने की {सहज-2} इच्छा कर।

अभ्यासे अपि असमर्थः असि मत्कर्मपरमो भव। मदर्थं अपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिं अवाप्स्यसि।। 12/10

अभ्यासे अपि असमर्थः असि	{ऐसे योग-} अभ्यास में भी समर्थ न हो {तो जोड़ी बने रुद्रयज्ञ-अधिपति+देवदेव महारुद्र रूप}
मत्कर्मपरमः भव मदर्थं कर्माणि	मुझ {परमपिता+परमात्मा} प्रति कर्म करने वाला हो। मेरे {व्यक्तरूप के} लिए कर्मों को
कुर्वन् अपि सिद्धिं अवाप्स्यसि	करता हुआ भी {वैकुण्ठ के अतीन्द्रिय सुख की विष्णुलोकीय} सिद्धि को प्राप्त करेगा।

अथ एतत् अपि अशक्तः असि कर्तुं मद्योगं आश्रितः। सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।। 12/11

अथ एतदपि कर्तुमशक्तः	{वैकुण्ठ-सिद्धि हेतु} यदि इतना भी करने में {हीनभाव के कारण दुर्बल हृदय होने से} अशक्त

असि ततः मद्योगं आश्रितः	हो, तो मुझसे जुड़े {पिता-पुत्र-पत्नी आदि सर्वसम्बंधों की} शरण ले, {विनाशी दुनियाँ से}
यतात्मवान् सर्वकर्मफलत्यागं कुरु	अपने {चित्त} को वश करते हुए सब कर्मफलों {की इच्छा} का त्याग कर दे।

श्रेयो हि ज्ञानं अभ्यासात् ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात् कर्मफलत्यागः त्यागात् शान्तिः अनन्तरं।। 12/12

अभ्यासात् ज्ञानं श्रेयो	{अज्ञानियों के ज्ञानरहित योग के} अभ्यास से {चतुर्मुखी ब्रह्मा से आया बेसिक ब्राह्मणों का गीता-} ज्ञान श्रेष्ठ है।
ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते	{बेसिक} ज्ञान {के सुनने-पढ़ने से चैतन्य ज्ञानसागर के एडवांस गीताज्ञान का} मंथन विशेष है।
ध्यानात् कर्मफलत्यागः	मनन-चिंतन से {हुई ब्राह्मण जन्म में यज्ञसेवा के} कर्मफल का {सम्पूर्ण अलौकिक} त्याग {श्रेष्ठ है};
हि त्यागात् अनंतरं शांतिः	क्योंकि त्याग के तुरंत बाद {आत्मस्थिति में भविष्यपद की निश्चयात्मक} शांति मिल जाती है।

[13-20 भगवत्-प्राप्त पुरुषों के लक्षण]

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।। 12/13

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः। मयि अर्पितमनोबुद्धिः यः मद्भक्तः स मे प्रियः।। 12/14

यः सर्वभूतानां अद्वेष्टा मैत्रः च	जो {क्रोधी,हिंसक,अहिंसक या भोले} सब प्राणियों में द्वेषभाव रहित है। मित्रता और
करुण एव निर्ममः निरहंकारः	करुणाभाव वाला है {तथा दैहिक सम्बन्धियों,पदार्थों आदि में} निर्मोही है, निरहंकारी है,
समदुःखसुखः क्षमी सन्तुष्टः	दुःख-सुख में समान, {सबके लिए} क्षमावान {सहनशील} है, {थोड़े में भी} संतोषी,
सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः	निरंतर योगी, चित्त का वशकर्ता, {मेरे में, परिवार में & मेरी मत में} दृढ़निश्चयी है,
मय्यर्पितमनोबुद्धिः मद्भक्तः स मे प्रियः	मेरे में मन-बुद्धि से अर्पणमय है- {ऐसा} वह मेरी श्रद्धा-भक्ति वाला मुझे प्रिय है।

यस्मात् न उद्विजते लोको लोकात् न उद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः यः स च मे प्रियः।। 12/15

यस्मात् लोकः उद्विजते न च	जिससे लोग {महाविनाशकाल में भी} परेशान नहीं होते और {ऐसे ही सारी वसुधा में कुटुंब
यः लोकात् उद्विजते न च यः	वत् ऐसा मातृवत} जो लोगों से परेशान नहीं होता और जो {सदाकाल 'इच्छामात्रम अविद्या'}
हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः स मे प्रियः	{होकर} आनन्द, क्रोध, भय {व} उत्तेजना से मुक्त है- वह मुझ {शिवस्वरूप} को प्रिय है।

अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनो गतव्यथः। सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। 12/16

यः अनपेक्षः शुचिः दक्षः	जो {मेरे व्यक्तित्व सिवाय और कोई की} अपेक्षा न करे। {तन-मन & धन से} पवित्र, कुशल है,
उदासीनः गतव्यथः	{अपने-पराये,प्रिय-अप्रिय में} पक्षपातहीन, {अपने तन-मनादि की} व्यथाओं से रहित है,
सर्वारम्भपरित्यागी स मद्भक्तः मे प्रियः	सब {सांसारिक} कार्यों का भली-भाँति त्यागी वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति। शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।। 12/17

यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति	जो {प्रिय से} न प्रसन्न होता है, न {अप्रिय में} द्वेषी है, न {कोई बात का} शोक करता है,
न कांक्षति यः शुभाशुभपरि-	न {किसी व्यक्ति या वस्तु की} इच्छा करता है {और} जो शुभ-अशुभ का भली-भाँति {सदा}
त्यागी भक्तिमान् स मे प्रियः	{काल} त्यागी है- {ऐसा मेरे से 'योगक्षेमं' (गी.,9-22) में अटल} श्रद्धा-भक्ति वाला वह मुझे प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः। शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।। 12/18

तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्। अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः।। 12/19

शत्रौ च मित्रे तथा मानापमानयोः समः	{अप्रिय} शत्रु में और {प्यार भरे} मित्र में, उसी तरह {कैसे भी हुए} मान-अपमान में समान,

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः च संगविवर्जितः	सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख {आदि द्वंद्वों} में समान और आसक्ति से सर्वथा रहित,
तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी येन	{शत्रु से} निंदा,{चापलूसों की} स्तुति में समान, {मन से भी} अंतर्मुखी, जो {अनायास सुखपूर्वक}
केनचित् संतुष्टः अनिकेतः	{अपने ही कर्मानुसार} कुछ {मिले या न मिले उस} में संतुष्ट, घरबार से रहित {पूरा बेघर/बैगर},
स्थिरमतिर्भक्तिमान्नरः मे प्रियः	{चंचल मन से फ्री} स्थिरबुद्धि, {ऐसा अटल} भक्तिभाव वाला मनुष्य मुझे {सदा} प्रिय है;

ये तु धर्म्यामृतं इदं यथा उक्तं पर्युपासते। श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः।। 12/20

तु ये मत्परमा श्रद्दधानाः यथा उक्तं	परंतु जो {एकमात्र} मेरे परम {ब्रह्मामुख के} आश्रित हुए श्रद्धावान्, ऊपर कहे गए
इदं धर्म्यामृतं पर्युपासते	इस धारणामृत का {कि 'तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं'-ऐसे} भलीभाँति उपासक हैं,
ते भक्ताः मे अतीव प्रियाः	वे भक्त {पिता के लिए अपने औरस, आज्ञाकारी & ईमानदार पुत्रवत्} मुझे अति प्यारे हैं।

(172)

अध्याय-13

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग-नामक 13वाँ अ0।।

[1-18 ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विषय]

श्रीभगवानुवाचः-इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रं इति अभिधीयते। एतत् यः वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। 13/1

कौन्तेय इदं शरीरं क्षेत्रं इति	हे अर्जुन! यह {तेरा मुकर्रर} शरीर {रूपी रथ ही महाभारत का धर्मयुद्ध} 'क्षेत्र' ← इस नाम से
अभिधीयते एतत् यः वेत्ति	{धर्म & कर्मभूमि} कहा जाता है। इस {कलि-अंत+कृतयुगादि के एक्स्ट्राऑर्डीनरी रथ} को जो जानता है
तं तद्विदः क्षेत्रज्ञ इति प्राहुः	उसको वह {द्वापर के ऋषि-मुनि} विद्वान {शरीर रूपी} 'क्षेत्र का ज्ञाता' ऐसे कहते हैं।

क्षेत्रज्ञं च अपि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत् तत् ज्ञानं मतं मम।। 13/2

भारत सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञं अपि	हे भरतवंशी! {ऐसे तो यथार्थ में} सारे {प्राणियों के} शरीररूप में क्षेत्रों का ज्ञानी भी
मां विद्धि च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः	{इस पु. संगम में} मुझ {शिव+बाबा} को जान और {इस} देह व देह के ज्ञाता {शिवज्योति} का
यत् ज्ञानं तत् ज्ञानं मम मतं	जो ज्ञान है, वो {ही इस दुनियाँ में रथी & सारथी का सच्चा} ज्ञान है← {ऐसा} मेरा मत है।

तत् क्षेत्रं यत् च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्। स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे शृणु।। 13/3

तत् क्षेत्रं यत् यादृक् च	वह {अर्जुन की} क्षेत्र रूपी देह जो जैसी {अति की पतित-व्यभिचारी} है और {महाविकारियों में}
यद्विकारि च	जैसा {कामुक महानतम} विकारी है {'मैं पतितन को राजा'=तुलसीदास} और {अपने-2 शास्त्रों में स्वकथा}
यत् यतः	{लिखी भी है,} जो {बालोंरहित बच्चों-जैसी लचीली देह का} है, जहाँ {अहं+द+गंद गाँव• (कायमगंद तालुका)} से है,
च स यः च	और वह {जन्म से देहांकारी ब्रह्मापुत्र} जो {अहं+दा•+बाद का ही} है, और {बदला लेने वाले नाग-}
च यत्प्रभावः	{स्वभावी धृष्टद्युम्न जैसा ढीठ, निर्लज्ज मार्शल है} और जिस {हिसाब-किताब चुक्तू के} प्रभाव वाला है-

तत् समासेन मे शृणु	वह सब संक्षेप में मुझ {बहुरूपिया शिवबाबा से सम्मुख} सुन। {बाप का परिचय बाप ही दे सकता है}

{मुरली के प्रूफ→ गांवड़े का छोरा-"जो (जब) गोरा है तो ताज होना चाहिए। साँवरा है तो ताज कहाँ से आवेगा? ..... गाँव का छोरा तो गरीब होगा ना।" (मु.ता.8.2.70 पृ.2 मध्य) गंदा गाँव-"इतना ऊँच-ते-ऊँच बाप कैसे छी-2 गाँव {अहं+द+गंद} में आते हैं।" (मु.ता.6.7.84 पृ.2 मध्य) ✕ फर्रुखाबादी-"बाप को मालिक कहा जाता है। फर्रुखाबाद में {कायम+गंद तरफ} मालिक को मानते हैं। (क्योंकि) घर का मालिक तो बाप ही होता है। बच्चों को बच्चे ही कहेंगे। जब वह भी बड़े (समझदार) होते हैं, (अलौकिक) बच्चे पैदा करते हैं तब फिर मालिक बनते हैं। यह सभी राज़ समझने की हैं।" (मु.ता.11.4.68 पृ.3 अंत)

सर्व सेण्टर्स का बीज •अहंदाबादी -"अहमदाबाद को सभी से ज्यादा सर्विस करनी है; क्योंकि अहमदाबाद (लाखों तादाद के) सभी सेंटर्स का बीजरूप है।" (अ.वा.24.1.70 पृ.190 मध्य)।

शरीर की 20-25 की आयु-"आगे (ॐ मंडली में अव्वल नं. वाले) जो (1942-47) में मरे थे, फिर भी बड़े हो कोई 20-25 के ही हुए होंगे। ज्ञान भी ले सकते हैं।" (मु.ता.16.2.67 पृ.1 अंत) यहाँ दिए गए महाभारत के 2 श्लोक भी बेहद बाप के 'प्रत्यक्षता वर्ष 1976' में दैहिक आयु 32 वर्ष से सम्बंधित हैं।

•**'द्वात्रिंशद्वर्षवयसि भौतिकशरीरं परित्यज्य परब्रह्मणि लीनमासीत्'** (अमरकोश में कल्पद्रुम, 'शङ्कर' शब्द)

'द्वात्रिंशदस्योज्वलकीर्तिराशेः समाव्यतीयुः किल शङ्करस्य'(महाभा./3-22 8-6)(मंगलकारके त्रिकाण्डशेष)

इसके अलावा 'U TUBE, ADHYATMIK VIDYALAYA' के एडवांस कोर्स में भी ढेर सारे पक्के प्रमाण भी मिलेंगे।

ऋषिभिः बहुधा गीतं छन्दोभिः विविधैः पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैश्च एव हेतुमद्भिः विनिश्चितैः।। 13/4

ऋषिभिः बहुधा	{शास्त्रों में} ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से {'एको सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' ऋग्वेद 1-164-46 में भी बोला है}
विविधैः	{कि} नाना प्रकार की {स्तुतियों, आरतियों, सहस्रनामों, चालीसा आदि वा सभी वेदों-ग्रंथों के}

छन्दोभिः पृथक् च	वेदमंत्रों से पृथक्-2 अथवा {आरण्यक-ब्राह्मण-स्मृतियों-सूत्रग्रंथों उपनिषदों आदि के या}
हेतुमद्भिः विनिश्चितैः	{महाभारतादि पुराणों के} प्रमाण सहित सुनिश्चित {सुभाषितों,कवित्तों या ग्रामीण गीतों} द्वारा,
ब्रह्मसूत्रपदैः एव गीतं	ब्रह्मसूत्रपदों द्वारा {वा देशी-विदेशी भविष्यवेत्ताओं द्वारा} भी {शिवबाबा का ही} वर्णन है-

महाभूतानि अहङ्कारो बुद्धिः अव्यक्तं एव च। इन्द्रियाणि दश एकं च पञ्च च इन्द्रियगोचराः।। 13/5

महाभूतान्यहंकारः बुद्धिः च एव	{पृथ्वी-जलादि 5 जड़} महाभूत,{देह का} अहंकार, बुद्धि ऐसे ही {अति प्रबल}
एक मव्यक्तं दश इन्द्रियाणि	{संकल्प-विकल्प कर्ता} एक अव्यक्त मन {सहित नेत्रादि 5 ज्ञान+ हाथ-पाँवादि 5 कर्म}-इन्द्रियाँ
च पंच इन्द्रियगोचराः च	&5 {ही स्वर्ग में संभोग-मीडिया} ज्ञानेन्द्रियों के {शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध} विषय-भोग और

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातः चेतना धृतिः। एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारं उदाहृतं।। 13/6

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं चेतना धृतिः	इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना, धारणाशक्ति {और उपरिवर्णित कुल 23 तत्त्व}
संघातः एतत् समासेन	{में से सभी का सदा अविनाशी} समुदाय {रूप अर्जुन की पुरुषोत्तम संगमयुगी देह}, यह संक्षेप में
सविकारं क्षेत्रं उदाहृतं	{काम-क्रोध-लोभादि विश्व के तीव्रतम आवेगी} विकार सहित क्षेत्र {रूपी शरीर} कहा गया है।

अमानित्वं अदम्भित्वं अहिंसा क्षान्तिः आर्जवं। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः।। 13/7

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा	निर्मानभाव, पाखंडहीनता, {सांसारिक तुच्छ-श्रेष्ठ कोई भी} प्राणीमात्र को दुःख न देना,
क्षांतिः आर्जवं आचार्योपासनं	क्षमाभाव, सरलता, {आत्म-स्मृतिपूर्वक साकारी सो निराकारी} शिवाचार्य की उप+आसना,
शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः	{म.व.कर्म की} शुद्धता, {मन की} स्थिरता {और मन-बुद्धिरूप} चित्त का विशेष संयम;

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहङ्कार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं।। 13/8

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहंकार:	{ज्ञानमयी} इन्द्रियों के {शब्द-स्पर्श-रूप-रसादि} विषयों में वैराग्य, निरहंकारी विदेहीभाव,
च एव जन्ममृत्युजराव्याधि-	और इसी प्रकार जन्म-मृत्यु और बुढ़ापा {आदि दु:ख,तन-मनादि की कोई भी} बीमारी
दु:खदोषानुदर्शनं	{आदि कल्पांत/महाविनाश के अंतिम जन्म के समझे हुए इन पराये} दु:खों के दोष अपना जैसा अच्छे से देखना;

असक्ति: अनभिष्वङ्ग: पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्वं इष्टानिष्टोपपत्तिषु।। 13/9

पुत्रदारगृहादिषु असक्ति: अनभिष्वंग: च	पुत्र, स्त्री, घर आदि {दैहिक संबंधों} में अनासक्ति, मोहरहित होना और
इष्टानिष्ट उपपत्तिषु नित्यं समचित्तत्वं	चाही-अनचाही {रोज़मर्रे की अनेक छोटी-बड़ी} घटनाओं में सदा एकरस रहना,

मयि च अनन्ययोगेन भक्ति: अव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वं अरति: जनसंसदि।। 13/10

अनन्ययोगेन मयि अव्यभिचारिणी	अनन्य सम्बंध से {एकमात्र} मेरे में {लगाव पूर्वक सदाकालीन} अव्यभिचारी {श्रद्धा-}
भक्ति: विविक्तदेशसेवित्वं	भक्ति-भावना, {सन्नद्ध विनाशी दुनिया से दूर मन-बुद्धि से} एकांतदेश {परब्रह्म लोक} में रहना
च जनसंसदि अरति:	और {प्रिय-अप्रिय वा समीपी हो, न हो कोई भी प्रकार के} मनुष्यों की भीड़भाड़ में अरूचि;

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं। एतत् ज्ञानं इति प्रोक्तं अज्ञानं यत् अत: अन्यथा।। 13/11

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं	अध्यात्मचिंतन में सदा लगे रहना, पंचतत्वों को {ईश्वरीय} ज्ञानार्थसहित पहचानना-
एतत् ज्ञानं• इति प्रोक्तं	{संक्षेप में} इतना •ज्ञान है' ← ऐसा {कपिल जैसे पु. संगमी पुराने-2 सत्वप्रधान विद्वानों द्वारा} कहा गया है।
अत: अन्यथा यत् अज्ञानं	इसके अलावा जो {भी मनुष्य-गुरुओं या देशी-विदेशी धर्मपिताओं का ज्ञान है}, सारा अज्ञान है।

•{यहाँ गीता के श्लोक 1 से 11 तक निराकार शिव ने अर्जुन/आदम के शरीर रूपी रथ/क्षेत्र और उसके आत्मिक गुणों-अवगुणों, शक्तियों & संस्कारों की सृष्टि के आदिकाल से लेकर कल्पान्तकाल तक के सारे विस्तार की संक्षेप में पहचान बताई है।}

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते। अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तत् न असत् उच्यते।। 13/12

यत् ज्ञेयं यत् ज्ञात्वा अमृतं	जो {परमपिता शिव ज्योति+परमात्मा} जानने योग्य है, जिसे जानकर {सदा} अमरता का
अश्नुते तत्प्रवक्ष्यामि तदनादिमत्	अनुभव करता है, उसे {मैं} कहता हूँ। वह आदिरहित {सुप्रीमात्मा+आदम दोनों}
परं ब्रह्म न सत् नासदुच्यते	{मिलकर} परब्रह्म परमेश्वर {कालक्रमानुसार संसार में} सत्, न असत् कहा जाता है।

सर्वत:पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं। सर्वत:श्रुतिमत् लोके सर्वं आवृत्य तिष्ठति।। 13/13

तत् सर्वत:पाणिपादं सर्वत:	वह सब ओर {बुद्धिरूपी} हाथ-पैर वाला, सब ओर {पुरुषोत्तम संगम में भी अपनी शक्तिमत्ता से}
अक्षिशिरोमुखं सर्वत: श्रुतिमत्	{त्रिनेत्री} आँख, {एकाग्र मन रूप} मस्तक, मुख वाला, सब ओर कान-{नाकादि ज्ञानेन्द्रियों} वाला
लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति	{शिव समान शंकर} संसार में सबको {योगऊर्जा से} घेरकर {हीरो रूप में ही स्थिरियम} रहता है।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं। असक्तं सर्वभृत् चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। 13/14

सर्वेन्द्रियगुणाभासं	{अर्जुन के रथ में} सब इन्द्रिय-गुणों का आभास होता है। {फिर भी मन-बुद्धि से जैसे भूली हुई}
सर्वेन्द्रियविवर्जितं असक्तं चैव	सब इन्द्रियविहीन {की सदाकाल निराकारी स्टेज वाला, कोई में भी} अनासक्त होते भी
सर्वभृत् च निर्गुणं गुणभोक्तृ	सब {प्राणीमात्र} का पोषणकर्ता है और {वह} निर्गुण है {तो भी मुकर्रर रथ से} गुणों का भोक्ता है,

बहि: अन्तश्च भूतानां अचरं चरं एव च। सूक्ष्मत्वात् तत् अविज्ञेयं दूरस्थं च अन्तिके च तत्।। 13/15

तत् भूतानां बहि: चान्त:	वह {करैंट जैसी योगऊर्जा से ही} प्राणियों के बाहर और अंदर है {मन-बुद्धि से सदा}
अचरं चरं एव सूक्ष्मत्वात्तत्	अचल है। {जड़ देह से} चलायमान भी है, अतिसूक्ष्म होने से वह {अज्ञानियों द्वारा}
अविज्ञेयं च तत् दूरस्थं	{दिखा या} जाना नहीं जाता और वह {देह-दुनियाँ से} दूर {आत्मलोक/अर्श} में स्थित है
च तदन्तिके	फिर भी वह {खोपड़ी रूपा सहस्त्रासार/परम्ब्रह्म• लोक में रहते भी नं. वार स्मृति द्वारा ज्ञानियों के} निकट है।

•{पंचमुखी ब्रह्मा का ऊर्ध्वमुखी मुख ही परम्ब्रह्म है जो पु. संगम में भी सदा उपराम है; क्योंकि महादेव-पार्ट भी शिव का है।}

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तं इव च स्थितं। भूतभर्तृ च तत् ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।। 13/16

तत् अविभक्तं च भूतेषु	वह {परब्रह्म योगबल से} अविभाज्य है और {विभिन्न प्रकार के सभी} प्राणियों में
विभक्तमिव स्थितं च भूतभर्तृ	विभक्त हुआ सा रहता है और {वैकुण्ठ में भी} प्राणियों का भरण-पोषणकर्ता विष्णु है
च ग्रसिष्णु च प्रभविष्णु ज्ञेयं	{पु.संगमयुग में} तथा संहारकर्ता महारुद्र है और {शास्त्रों में} उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा ज्ञातव्य है।

{इसीलिए सदाशिव ज्योति समान बने शंकर का काशीकैलाशीवासी मूर्तिरूप सारी चतुर्युगी रूप संसार में सदा गुप्त है ही है।}

ज्योतिषां अपि तत् ज्योतिः तमसः परं उच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितं।। 13/17

तज्ज्योतिषामपि ज्योतिः	वह ज्योतिमान् {धरती के चेतन मानवीय} नक्षत्रों की भी ज्योति है, {इसीलिए ज्ञानसूर्य है,}
तमसः परं उच्यते ज्ञानं	{अज्ञान के} अंधकार से परे कहा जाता है। {वह अजन्मा होने से अखूट} ज्ञान {का भंडार} है,
ज्ञेयं ज्ञानगम्यं	{'गुह्यात गुह्यतरं' होने पर भी} जानने योग्य है, ज्ञान से पाने योग्य है {और पुरु. संगम में सदा}
सर्वस्य हृदि विष्ठितं	{स्मृति द्वारा} सबके हृदय में {संगमयुगी शूटिंग-प्रमाण प्राप्त योगबल की ऊर्जा से} विराजमान है।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं च उक्तं समासतः। मद्भक्त एतत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते।। 13/18

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं च	ऐसे {अर्जुन के साकार शरीर रूपी} क्षेत्र तथा {साक्षात् अगाध ईश्वरीय} ज्ञान और
ज्ञेयं समासतः उक्तं मद्भक्तः	{संगम में} जानने योग्य {शिवबाबा} को संक्षेप में कहा है। मेरा {श्रद्धावान भावना भरा} भक्त
एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते	इस {क्षेत्र, क्षेत्री-क्षेत्रज्ञ} को जानकर मेरे {ईश्वरीय/ऐश्वर्यवान राजाई} भाव को पाता है।

[19-34 ज्ञानसहित प्रकृति-पुरुष का विषय]

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धि अनादी उभौ अपि। विकारान् च गुणान् चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। 13/19

प्रकृतिं च पुरुषं	{अर्जुन की देह में महाकाल रूपा अपरा} प्रकृति को और आत्मा {रूपा परा प्रकृति} को-
उभावपि अनादी एव	दोनों {बीजरूप परम आत्मा+ देहरूप बर्फीले लिंग} को भी अनादि,{अक्षय, ऑलराउंडर} ही
विद्धि च विकारान् च गुणान् एव	जानो और विकारों और {अनादिनिर्मित सत-रजादि घटने-बढ़ने वाले इन} 3 गुणों को भी
प्रकृतिसम्भवान् विद्धि	{दैहिक महाभूतादि 23 तत्वों वाली लिङ्गरूपा अनादि-अविनाशी} प्रकृति से उत्पन्न हुआ जानो।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते।। 13/20

प्रकृतिः कार्यकरणकर्तृत्वे	{इस बीजरूपा} प्रकृति को देहरूप कार्य में, {ज्ञान+कर्म}-इन्द्रियों के साधनरूप रचना में {रचता आदम द्वारा}
हेतुः उच्यते पुरुषः सुखदुःखानां	कारण रूप कहा जाता है। आत्मा को {युगानुरूप प्राणियों के प्रयास अनुसार} सुख-दुःखों के
भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते	भोक्तापने में {संगमी शूटिंग-प्रमाण अपने ही कर्मों के अविनाशी रिकॉर्ड को} कारण कहा जाता है;

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्। कारणं गुणसङ्गः अस्य सदसद्योनिजन्मसु।। 13/21

हि पुरुषः प्रकृतिस्थः प्रकृतिजान्	क्योंकि {चेतन} आत्मा {देहरूप अपरा} प्रकृति में स्थित प्रकृति से पैदा हुए
गुणान् भुंक्ते गुणसंगः	{क्रमशः सत्त्वादि} 3 गुणों को भोगता है। {सृष्टि के इन्हीं सत्वादि} गुणों में आसक्ति/लगाव
अस्य सदसद्योनिजन्मसु कारणं	इस {आत्मा} के सत्-असत् {देव-दानव असुरादि} योनियों में जन्म का {एकमात्र} कारण है।

उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः। परमात्मा इति च अपि उक्तः देहे अस्मिन् पुरुषः परः।। 13/22

अस्मिन् देहे परः पुरुषः उपद्रष्टा च	इस {अर्जुन की तामसी} देह में परमपुरुष {सदाशिवज्योति भृकुटि मध्य में} समीपदृष्टा और
अनुमन्ता भर्ता भोक्ता च	{श्रेष्ठ} कार्यों की अनुमतिदाता, {महाविष्णु रूप से प्राणियों का} भरण-पोषणकर्ता, भोक्ता और
महेश्वरः परमात्मा इति अपि उक्तः	महान् ईश्वर 'शिव'+'परमात्मा' इस तरह {महेश्वर} भी कहा जाता है।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह। सर्वथा वर्तमानः अपि न स भूयः अभिजायते।। 13/23

य एवं पुरुषं च प्रकृतिं गुणैः सह	जो इस प्रकार {हीरो} पुरुष और {स्त्री रूपा} प्रकृति को {उन सत्वादि 3} गुणों के साथ
वेत्ति स सर्वथा वर्तमानः अपि	{विष्णु रूप से} जान लेता है, वह सब प्रकार से {आत्मस्थिति में} आचरण करता हुआ भी
भूयः न अभिजायते	पुनः {द्वैतवादी हिंसक दैत्यों के दुःखी संसार में लौटकर अगला} जन्म नहीं लेता।

ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति केचित् आत्मानं आत्मना। अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन च अपरे।। 13/24

केचित् ध्यानेन अन्ये सांख्येन	कुछ लोग {सृष्टि के आदि म. अंत के} चिंतन द्वारा, दूसरे सम्पूर्ण {ज्ञान की} व्याख्या से
योगेन च अपरे कर्मयोगेन	{अनन्य} योग द्वारा और अन्य {यज्ञ सेवा-} कार्य करते-{शिवबाबा की} स्मृति पूर्वक
आत्मनात्मानमात्मनि पश्यन्ति	अपनी मन-बुद्धि से {ज्योतिबिंदु} आत्मा को अपने {भरीपूरी भृकुटि} में देखते हैं।

अन्ये तु एवं अजानन्तः श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते। ते अपि च अतितरन्ति एव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।। 13/25

तु अन्ये एवं अजानन्तः अन्येभ्यः	किंतु कुछ अन्य ऐसा न जानते हुए, {शिवबाबा से सन्मुख न सुन,} दूसरों द्वारा
श्रुत्वा उपासते च ते श्रुतिपरायणाः	सुनकर {मानसिक स्मृतिपूर्वक} उपासना करते हैं और वे सुनाने वालों के आश्रित/आधीन
अपि मृत्युं अतितरन्ति एव	{बातों में फर्क होने पर} भी मृत्युलोक को पार कर {स्वर्ग में चले} ही जाते हैं।

यावत् सञ्जायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमं। क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तत् विद्धि भरतर्षभ।। 13/26

भरतर्षभ यावत् किंचित् स्थावरजंगमं	हे भरतवंश में श्रेष्ठ! जो कुछ जड़-चेतन {रूप परा-अपरा प्रकृति के}
सत्त्वं संजायते तत्	पदार्थ {संसार में} उत्पन्न होते हैं, वह {सब पु.संगम की मानसी शूटिंग में अनासक्त ज्ञानसूर्य},
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् विद्धि	लिंग+आत्मज्योतिशिव {रूप जगत्पिता} के संयोग से {अंतिम जन्म में उत्पन्न} जान।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं। विनश्यत्सु अविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27

यः विनश्यत्सु सर्वेषु भूतेषु	जो {कल्पान्त कालीन} महामृत्यु पाते हुए सब {विभिन्न आकृति के श्रेष्ठ या निष्कृष्ट} प्राणियों में
समं तिष्ठन्तं अविनश्यन्तं	समान भाव से {समूची चतुर्युगी की रिहर्सल में योग-ऊर्जा द्वारा} बैठने वाले अविनाशी
परमेश्वरं पश्यति स पश्यति	परम+ईश्वर/{शिवज्योति+अव्यक्तमूर्ति} को देखता है, वही {ठीक} देखता है;

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं। न हिनस्ति आत्मना आत्मानं ततो याति परां गतिं।। 13/28

हि सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं समं	क्योंकि सर्वत्र {पुरुषार्थ-अनुसार} समान {योगऊर्जा से} उपस्थित ईश्वर को समान
पश्यन् आत्मना आत्मानं हिनस्ति	{भाव से} देखता हुआ {पुरुषार्थी} अपने मन से {पाप करते हुए} आत्मा का घात/पतन
न ततः परां गतिं याति	नहीं करता (गीता 6-5), तब {कलातीत, परमपदी विष्णु के वैकुण्ठ की} परमगति को पाता है

प्रकृत्या एव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः। यः पश्यति तथा आत्मानं अकर्तारं स पश्यति।। 13/29

च यः कर्माणि सर्वशः प्रकृत्यैव	और जो कर्मों को सब प्रकार से {संगमी शूटिंग में अपने-2 प्रकृतिगत} स्वभाव से ही
क्रियमाणानि पश्यति तथात्मानं	किया हुआ देखता है {और} उसी तरह अपने को {शिव परमपिता+परम आत्मा समान}
अकर्तारं स पश्यति	अकर्ता {मानता है}, वह {ठीक} देखता है। {बाकी सदाशिवोऽहं या ब्रह्माऽस्मि यहाँ कोई नहीं होता।}

यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं अनुपश्यति। तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। 13/30

यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं	जब प्राणियों की {आकृति में} भिन्नता को {सृष्टि के} एक {बीज आदम} में उपस्थित
अनुपश्यति च तत् एव विस्तारं	{विराट पुरुष को} देखता है और उससे ही {सृष्टि के अनेक धर्मों के} विस्तार को {जानता है},
तदा ब्रह्म सम्पद्यते	तब {उसे समूचे विश्व की हर प्रकार से समर्पित ऊर्ध्वमुखी साक्षात्} परम्ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्मा अयं अव्ययः। शरीरस्थः अपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।। 13/31

कौन्तेय अयं परमात्मा	हे {देहभाननाशिनी} कुंती के पुत्र! यह {तुरीया तत्व परमब्रह्म सहित हीरोपार्टधारी} परमात्मा
अनादित्वात् निर्गुणत्वात्	अनादि {एवं त्रिगुणातीत सदाशिव की निरंतर याद में टिकने कारण} त्रिगुणरहित होने से
अव्ययःशरीरस्थोऽपि	अमोघवीर्य है, देह में रहते भी {सदाशिव ज्योति समान सम्पूर्ण आत्मस्थ बनने से}
न करोति न लिप्यते	{पुरुषोत्तम संगमयुग की शूटिंग में} न कर्म करता है, न लिप्त होता है। {अकर्ता रहता है}

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यात् आकाशं न उपलिप्यते। सर्वत्र अवस्थितः देहे तथा आत्मा न उपलिप्यते।। 13/32

यथा सर्वगतमाकाशं सौक्ष्म्यात्	जैसे सर्वगामी {महान} आकाश {आत्मवत् 'अणोरणीयांसं' (गीता 8-9) जैसा} सूक्ष्म होने से
न उपलिप्यते तथा देहे सर्वत्र	उपलब्ध नहीं होता, {कुछ भी पकड़ नहीं आता,} उसी तरह शरीर में सब जगह {योग-ऊर्जा से}
अवस्थितः आत्मा नोपलिप्यते	स्थित हुआ {सूक्ष्म ज्योतिबिंदु परम+} आत्मा {रूप परमाकाश} उपलब्ध नहीं होता।

यथा प्रकाशयति एकः कृत्स्नं लोकं इमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।। 13/33

भारत यथैकः रविः इमं	हे ज्ञानाभा में रत! जैसे एक {जड़} सूर्य {एक स्थान से} इस {चाँद-सितारों-नक्षत्रों से भरे}
कृत्स्नं लोकं प्रकाशयति तथा	सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार {चेतन ज्ञान सूर्य बने विवस्वत की}
क्षेत्री कृत्स्नं क्षेत्रं प्रकाशयति	आत्मा {भ्रूमध्य से} सारे {वटवृक्षरूप विराट} शरीर को {संगम में भी} प्रकाशित करती है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः एवं अन्तरं ज्ञानचक्षुषा। भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुः यान्ति ते परं।। 13/34

एवं ये क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः अन्तरं च	ऐसे जो {अर्जुन के} शरीररूप क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ {सदाशिव (गीता 13-2)} के अन्तर को और
भूतप्रकृतिमोक्षं ज्ञानचक्षुषा	प्राणियों की {दैहिक} प्रकृति से मुक्ति को, {सम्पूर्ण बने त्रिनेत्री महादेव के} ज्ञाननेत्र द्वारा
विदुः ते परं यान्ति	{शिव को} जानते हैं, वे {परमपार्ट धारी हीरो रूप के परे-ते-परे} परमब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

अध्याय-14

गुणत्रयविभागयोग-नामक 14वाँ अ0।।

[1-4 ज्ञान की महिमा और प्रकृति-पुरुष से जगत् की उत्पत्ति]

श्रीभगवानुवाचः-परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानं उत्तमं। यत् ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिं इतः गताः।। 14/1

भूयः ज्ञानानां उत्तमं	पुनः {विधर्मी ब्राह्मणों की 7 कुरियों से बने} सब ज्ञानों से परमश्रेष्ठ {पहली ब्राह्मण कुरी का}
परं ज्ञानं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा सर्वे	परंब्रह्म - {परमेश्वरी} ज्ञान बताता हूँ, जिसे जानकर {पूर्वकल्प में भी} सब {मनन चिन्तनशील}
मुनयः इतः परां सिद्धिं गताः	{ऋषि} मुनिजन इस नरक से {जीते जी} परमसिद्धिरूप {विष्णुलोकीय वैकुण्ठधाम} गए थे।

इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यं आगताः। सर्गे अपि न उपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। 14/2

इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यं	इस ज्ञान का आश्रय लेकर मेरे समान {निर्विकारी निरहंकारी परंब्रह्म के} गुणधर्म को
आगताः सर्गे न उपजायन्ते	प्राप्त हुए {सत-त्रेता के स्वर्ग में जाते हैं, इस दुःखी} संसार में उत्पन्न नहीं होते
च प्रलये अपि न व्यथन्ति•	और प्रलयांत {महाविनाश•} में भी व्यथित नहीं होते, {प्रायः जन्मों में सुखी ही रहते।}

•{खुदा के बन्दे कयामत में भी मौज में रहेंगे। (कुरान)} {'योगक्षेमं वहाम्यहम' देखिए गीता 9-22}

मम योनिः महत् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधामि अहं। सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। 14/3

भारत महद्ब्रह्म	हे {सच्चीगीता एडवांस ज्ञान-प्रकाश में सदारत} भारत! {अपरा प्रकृतिरूप अर्जुन-रथ का गर्भ क्षेत्र} महद्ब्रह्म
मम योनिः अहं तस्मिन्	मेरी योनि {रूपा माता भी} है; मैं उस {कल्पांत कालीन अविनाशी देहरूप जड़त्वमयी लिंगमूर्ति} में
गर्भं दधामि	{आत्म-ज्ञान रूपी अणुवत/ज्योतिबिंदु बीज का} गर्भ डालता हूँ {सम्पूर्ण+आख्यारूप सांख्य योग वाले}
ततः	उस {एडवांस ज्ञान-गर्भ} से {जगत्पिता का स्वात्म-चिन्तन बढ़ने से परमपिता शिव से योग-ऊर्जा द्वारा पुरुषोत्तम संगमयुग में}

सर्वभूतानां सम्भवः भवति	सब {रुद्राक्ष/बीजरूप/पितर रूप} प्राणियों की {महत् ब्रह्मा द्वारा •मानसी} उत्पत्ति होती है।

•{'अन्नाद्भवन्ति भूतानि' (पाँच मुखों वाले संगठित) ब्रह्मा के प्यार की खुराक से मानसी सृष्टि के प्राणी होते हैं।} (गीता 3-14)

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः। तासां ब्रह्म महत् योनिः अहं बीजप्रदः पिता।। 14/4

कौन्तेय सर्वयोनिषु याः	हे कुन्ती-पुत्र! {देव-दानवादि मानवमात्र की भिन्न-2 धर्मों की} सब योनियों में जो {प्रकृतिकृत}
मूर्तयः सम्भवन्ति तासां	{दैहिक} मूर्तियाँ पैदा होती हैं, उन सबकी {23 अविनाशी तत्वों से निर्मित जड़ात्मक/दैहिक तत्व} ब्रह्म-
योनिः महत् ब्रह्म	योनि {रूपा मातृ-संस्कारों से अर्जुन-रथ ही} विशाल {पृथ्वी-बीज} महतब्रह्म है। {इस रीति पु.संगम में}
अहं बीजप्रदः पिता	मैं {निराकार ज्ञानसूर्य शिव मूल रूप से जगत्पिता द्वारा} ज्ञानबीज-दाता परमपिता हूँ।

[5-18 सत्, रज, तम-तीनों गुणों का विषय]

सत्त्वं रजः तमः इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनं अव्ययं।। 14/5

महाबाहो सत्त्वं रजः तमः	हे {सहयोगियों रूप} दीर्घबाहु! सत्त्वगुण, रजो {और} तमोगुण, {कालक्रमानुसार ये त्रिगुणात्मक}
इति प्रकृतिसम्भवाः गुणाः	{रहने वाले} ये प्रकृति {रूप भी इसी मूर्तिमंत महादेव के शरीर} से उत्पन्न हुए तीनों गुण,
अव्ययं देहिनं देहे निबध्नन्ति	अविनाशी आत्मा को {तात्त्विक} देह {रूप अविनाशी पिण्ड} में भली-भाँति बाँधते हैं।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकं अनामयं। सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन च अनघ।। 14/6

अनघ	हे निष्पाप! {धवल/श्वेत अर्जुन! भले सारी दुनियाँ कलंक लगाती है या ग्लानि करने में भी चूकती नहीं! }
तत्र निर्मलत्वात्	{फिर भी} वहाँ {पुरुषोत्तम स्वर्णिम संगम में सत्य की प्रत्यक्षता होने पर अपने गुणों से} निर्मल होने से
प्रकाशकं च अनामयं सत्त्वं	ज्ञान-प्रकाशक व रोगरहित सत्वगुण {साकारी सो निराकारी बने परमात्मा} को

ज्ञानसंगेन सुखसंगेन बध्नाति	ज्ञान की आसक्ति द्वारा {सम्पूर्ण सत्वस्थ बने आदिदेव को सर्वोत्तम} सुखासक्ति से बाँधता है।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवं। तत् निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनं।। 14/7

कौन्तेय रागात्मकं रजः	हे कौन्तेय! अनुराग {के दिखावा} रूप रजोगुण को {नरनिर्मित द्वैतवादी दैत्यों के नरक में}
तृष्णासंगसमुद्भवं विद्धि तत्	लोभ {और} आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह {रजोगुण कर्मघमंडी अतिभोगी}
देहिनं कर्मसंगेन निबध्नाति	आत्मा को {हिंसक कर्म इन्द्रियों के} कर्मों से {उत्तरोत्तर} लगाव बढ़ने से अच्छी तरह बाँधता है।

तमः तु अज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनां। प्रमादालस्यनिद्राभिः तत् निबध्नाति भारत।। 14/8

भारत सर्वदेहिनां मोहनं	हे भरत/विष्णु के वंशी! सब देहधारियों को मूढ़ बनाने वाले {पापमय नारकीय कलियुग के}
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि	तमोगुण को तो {कलियुगारम्भकर्ता शंकराचार्यकृत सर्वव्यापी के} अज्ञान से पैदा हुआ जान।
तत् प्रमादालस्य-	वह {तमोगुण अविनाशी ड्रामानुसार राक्षसी कलियुग में दीर्घसूत्री भाव से} लापरवाही, आलस्य
निद्राभिः निबध्नाति	{और} निद्रा द्वारा {अतिभोगी बनी आत्मा को} निःशेष रूप से {रौरव नरक में} बाँध लेता है।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत। ज्ञानं आवृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयति उत।। 14/9

भारत सत्त्वं सुखे रजः कर्मणि	हे भरतवंशी {स्वर्गीय} सत्वगुण सुख में, {द्वापुर से} रजोगुण {भ्रष्ट कर्मेन्द्रियों के} कर्म में
संजयति तु तमः ज्ञानं	{देहाकर्षण द्वारा} लगाता है; किंतु तमोगुण {पृथ्वीराज जैसे कलियुगी राजाओं के} ज्ञान को {भी}
आवृत्य प्रमादे उत संजयति	{तीव्रता से भली-भाँति} ढककर {सदाकालीन कामुकता की आग से} गफलत में भी डाल देता है।

रजः तमश्च अभिभूय सत्त्वं भवति भारत। रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजः तथा।। 14/10

भारत रजः च तमः	हे भारत! {सतयुग-त्रेता के स्वर्ग में सात्विक ज्ञानेन्द्रियों का सुख} रजो और तमोगुण को

अभिभूय सत्त्वं भवति	दबाकर सत्वगुण पैदा करता है। {द्वापर से द्वैतवादी धर्मपिताओं की भ्रष्ट कर्मेन्द्रिय का सुख}
सत्त्वं च तमः रजः तथा	सत्व और तमोगुण को {दबाकर} रजोगुण तथा {पापी कलियुग में तो कामाग्नि की तीव्रता से}
सत्त्वं रजः तमः एव	सत्व और रजो को {दबाकर उत्तेजित मन सर्वेन्द्रियों की क्षीणता के क्षणिक सुख से} तमोगुण ही {बढ़ाता है}।

सर्वद्वारेषु देहे अस्मिन् प्रकाशः उपजायते। ज्ञानं यदा तदा विद्यात् विवृद्धं सत्त्वं इति उत।। 14/11

यदा अस्मिन् देहे सर्वद्वारेषु	जब इस {गंद छोड़ने वाली} देह के सभी {इन्द्रिय-} द्वारों में {एकमात्र सच्चीगीता का एडवांस}
ज्ञानं प्रकाशः उपजायते तदा उत	ज्ञानप्रकाश {मंथन द्वारा} उत्पन्न होता है, तब अवश्य ही {पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग में}
सत्त्वं विवृद्धं इति विद्यात्	{ब्रह्मावत्सों की सतयुगी नई दुनियाँ-अर्थ} सत्वगुण विशेष बढ़ा है, ऐसा {निश्चित} जान ले।

लोभः प्रवृत्तिः आरम्भः कर्मणां अशमः स्पृहा। रजसि एतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।। 14/12

भरतर्षभ रजसि	हे भरतवंश में श्रेष्ठ {हीरो!सतयुग-त्रेता के स्वर्ग में 2500 वर्षीय ज्ञानेन्द्रिय सुखों में धीरे से गिरते-2} रजोगुण के
विवृद्धे कर्मणां लोभः प्रवृत्तिः	विशेष बढ़ने पर {द्वापर-मध्यांत से मुस्लिम दैत्यों के} कर्मों में लोभ की प्रवृत्ति का
आरम्भः स्पृहा अशमः एतानि जायन्ते	आरंभ, लालसा, अशांति- ये सब {भ्रष्टेन्द्रियाचरण की तीव्रता से ही} पैदा होते हैं।

अप्रकाशः अप्रवृत्तिश्च प्रमादः मोह एव च। तमसि एतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।। 14/13

कुरुनन्दन	हे {ऐसे कर्मेन्द्रिय-अभिमानी राजा कुरु के वंशज} कुरुओं के {भी} आह्लाददाता {प्रह्लाद}!
तमसि विवृद्धे प्रमादः	{कलियुग में} तमोगुण विशेष बढ़ने पर {श्रेष्ठ कर्मों में ही} लापरवाही {से जीवनमार्ग में घना}
अप्रकाशः च अप्रवृत्तिश्च	अज्ञानान्धकार तथा {कल्याण-कृत्यों में} अरुचि और {स्वदेह, संबन्धियों और पदार्थों में विशेष}
मोहः एतान्येव जायन्ते	{दैहिक अथवा मानसिक} लगाव- ये सब {अवगुण तामसी-पापी कलियुग में} ही उत्पन्न होते हैं।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्। तदा उत्तमविदां लोकान् अमलान् प्रतिपद्यते।। 14/14

यदा देहभृत् सत्त्वे प्रवृद्धे	{कल्पांत में} जब देहधारी {ब्रह्मावत्स योग द्वारा ब्राह्मणत्व का} सत्वगुण अति बढ़ने पर
प्रलयं याति तदा तु उत्तम-	{महाविनाश की} प्रलयकालीन महामृत्यु पाता है, तब तो {वह पुरुषोत्तम संगम से ही} पुरुषोत्तम को
विदाममलान् लोकान्प्रतिपद्यते	जानने वालों के निर्मल {स्वर्गीय} लोकों की {देवताई पीढ़ियों में जन्म} पाता है।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते। तथा प्रलीनः तमसि मूढयोनिषु जायते।। 14/15

रजसि प्रलयं गत्वा	रजोगुणी स्थिति में प्रलयकालीन महामृत्यु को पाकर, {भ्रष्टकर्मेन्द्रियों की हिंसा से भरपूर द्वैतवादी}
कर्मसंगिषु जायते	{द्वापुरयुगी दैत्य} कर्मों से लगाव वालों में {संगमयुगी शूटिंग के स्वभाव से ही} उत्पन्न होता है,
तथा तमसि प्रलीनः	उसी प्रकार {संगमयुगी शूटिंगकाल में} तमोगुणी {स्वभाव वाले लोगों के बीच} में महामृत्यु प्राप्त हुआ
मूढयोनिषु जायते	{कल्प-2 की हूबहू शूटिंग अनुसार कलहयुगी} मूढ़मति के {व्यभिचारी} राक्षसों में पैदा होता है।

कर्मणः सुकृतस्य आहुः सात्त्विकं निर्मलं फलं। रजसः तु फलं दुःखं अज्ञानं तमसः फलं।। 14/16

सुकृतस्य कर्मणः सात्त्विकं	{रुद्रज्ञान-यज्ञ के श्रेष्ठ सेवाकर्मों के संगमयुगी पुण्यों के फलस्वरूप} अच्छे कर्मों का सात्त्विक
निर्मलं फलमाहुःतु	निर्मल फल {सतयुग का स्वर्गीय सत्त्वप्रधान या सत्व सामान्य त्रेता} कहा जाता है; किंतु
रजसः फलं दुःखं	{द्वापर के द्वैतवादी धर्मावलम्बियों में हिंसक शासन से पैदा} राजसी {कर्मों का} फल दुःख है।
तमसः फलं अज्ञानं	तामसी {& पापी कलियुग के व्यभिचारी कर्मों} का फल {मूढ़भाव वाला घोर} अज्ञान {अन्धकार} है।

सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ तमसो भवतः अज्ञानं एव च।। 14/17

सत्त्वाज्ज्ञानञ्च रजसः लोभ	सत्व से {परखने-निर्णय की} समझशक्ति और रजोगुण से लोभ {लालसा & लोलुपता}
एव संजायते तमसो अज्ञानं	ही उत्पन्न होती है। {कलियुगी व्यभिचार से पैदा} तमोगुण से {भरीपूरी बुद्धि में} बेसमझी
च प्रमादमोहौ एव भवतः	और लापरवाही तथा {'क्रोधाद्भवति सम्मोहः' रूप (गीता 2/63)} मूढ़ता ही उत्पन्न होती है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्य गुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।। 14/18

सत्त्वस्थाः ऊर्ध्वं	{पृथ्वी पर कल्पांत में} सत्वगुण में स्थित {लोग सत-त्रेता के स्वर्गलोक में} ऊपर {ऊँची स्थिति में}
गच्छन्ति राजसाः मध्ये तिष्ठन्ति	जाते हैं, रजोगुणी मध्य {द्वापुरयुग में नर-निर्मित नरकलोक} में स्थित होते हैं।
जघन्य गुणवृत्तिस्थाः	{और} जघन्य {पापियों की हिंसावादी} गुण-वृत्तियों में स्थित {राक्षसी वृत्ति के पशु तुल्य}
तामसाः अधः गच्छन्ति	{जर्जरीभूत} तामसी लोग {कलियुगी} अधोगति को {रौरव नरक की असहनीय यातनाओं में} जाते हैं।

[19-27 भगवत्प्राप्ति का उपाय और गुणातीत पुरुष के लक्षण]

न अन्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टा अनुपश्यति। गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सः अधिगच्छति।। 14/19

यदा द्रष्टा गुणेभ्यः अन्यं	जब देखने वाला {सत्-रजादि प्रकृतिगत} गुणों के अलावा किसी अन्य {श्रेष्ठ या क्षुद्र प्राणी} को
कर्तारं नानुपश्यति च	{भला या बुरा} करने वाला नहीं देखता और {युगानुकूल क्रमशः परिवर्तनशील, जड़त्वमयी प्रकृतिगत}
गुणेभ्यः परं वेत्ति सः	गुण संघात से परे {सृष्टि रंगमंच के शिव समान बने हीरो} परम+आत्मा को जानता है, {तब} वह
मद्भावं अधिगच्छति	मेरे {सदा सत्वस्थ शिवज्योति} भाव को {मात्र स्वर्णिम पुरुषोत्तम संगमयुग में नं. वार ही} पाता है।

गुणान् एतान् अतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्। जन्ममृत्युजरादुःखैः विमुक्तः अमृतं अश्नुते।। 14/20

देही देहसमुद्भवान् एतान् त्रीन्	{पु.संगम में स्टारवत् बिंदु} आत्मा देह से पैदा होने वाले इन तीनों {क्रमिक सत्वादि}
गुणानतीत्य जन्ममृत्युजरादुःखैः	गुणों को {विपरीति गति से} पार करके जन्म-मृत्यु-बुढ़ापा आदि {ढ़ेर सारे} दुःखों से
विमुक्तः अमृतं अश्नुते	अच्छी तरह मुक्त हुआ {देवों की कलातीत 1+कलाबद्ध 20 पीढ़ियों में} अमर पद को भोगता है।

अर्जुन उवाचः-कैः लिङ्गैः त्रीन् गुणान् एतान् अतीतः भवति प्रभो। किमाचारः कथं च एतान् त्रीन् गुणान् अतिवर्तते।। 14/21

प्रभो कैर्लिंगैरेतान्त्रीन्गुणान्	हे प्रभो! किन लक्षणों से {युक्त हुआ पुरुष जड़त्वमयी दैहिक प्रकृति के} इन 3 गुणों से
अतीतः भवति आचारः किं च	पार हो जाता है? {पुरुषोत्तम संगमयुग में उसका} आचरण कैसा होता है और {प्रकृतिगत}
एतान्त्रीन्गुणान् कथमतिवर्तते	इन तीनों गुणों को {1 साथ, इसी संसार में रहते} कैसे {पुरुषार्थ से} पार करता है?

श्रीभगवानुवाचः-प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहं एव च पाण्डव। न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।। 14/22

पाण्डव प्रकाशं च	हे पाण्डु/पण्डा {रूप तीर्थनेता शिव} के पुत्र {अर्जुन}! {सत्वगुणी विवस्वत के सूर्यवंशी आत्म-} प्रकाश और
प्रवृत्तिं च मोहं	{द्वैतवादी द्वापर से विधर्मियों के रजो की कर्मों में} प्रवृत्ति और {कलियुगी तामस से} मूढ़ता
सम्प्रवृत्तानि एव न द्वेष्टि च	पैदा होने पर भी {जो ऐसों से} न द्वेष करता है और {पुरुषोत्तम संगमयुग की शूटिंग में भी कभी}
न निवृत्तानि कांक्षति	ना {इनके संग से} निवृत्त होने पर आकांक्षा करता है {इस तरह 'साक्षी दृष्टा निर्गुणो केवलः' बना}

उदासीनवत् आसीनः गुणैः यः न विचाल्यते। गुणा वर्तन्त इति एव यः अवतिष्ठति न इङ्गते।। 14/23

उदासीनवदासीनः यः	उदासीन की भाँति रहते हुए जो {प्रकृतिगत मर्ज या इमर्ज हुए मायानिर्मित इन रज-तम}
गुणैर्विचाल्यते न गुणैव	गुणों से हिलता नहीं {और मायावी सत्त्व-रजादि क्रमशः 3} गुण ही {सदा चतुर्युगी में}
वर्तन्त इति यः	{भी} आवर्तन करते हैं ← ऐसे {समझकर} जो {कैसी भी परिस्थितिवश अपने पुरुषार्थ में}
इंगते न अवतिष्ठति	{कभी भी} डोलता नहीं; {भली-भाँति हिमवान् युधिष्ठिर-जैसा सात्विक बुद्धि से} स्थिर रहता है

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः। तुल्यप्रियाप्रियो धीरः तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।। 14/24

समदुःखसुखः स्वस्थः	{जो नारकीय संसार के} सुख-दुःख में {ज्योतिबिंदु आत्मा में सदाशिव समान} आत्मस्थ है,
समलोष्टाश्मकांचनः तुल्यप्रियाप्रियः	मिट्टी-पत्थर-सोने {जैसे कोई} में भी समदृष्टि है, प्रिय-अप्रिय में {रागद्वेषहीन1} समान,
धीरः तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः	{आगमापाई सुखदुख में} धैर्यवान है। अपनी निंदा-स्तुति में एक समान रहता है,

मानापमानयोः तुल्यः तुल्यः मित्रारिपक्षयोः। सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। 14/25

मानापमानयोस्तुल्य:मित्रारिपक्षयोः	{जो} मान-अपमान में समान है, {परिवर्तनीय} मित्र-शत्रु दोनों पक्षों में {सदा}
तुल्यः सर्वारम्भपरित्यागी	समान है। {यज्ञ सिवा} सभी {सांसारिक बन्धनों वाले} कर्मों का समुचित त्यागी है।
स गुणातीतः उच्यते	वह गुणसंघात से परे {वैकुण्ठ वासी विष्णु समान} कहा जाता है। {गीता 2-45 & 3-9}

मां च यः अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 14/26

च यः मामव्यभिचारेण भक्ति-	और जो मुझ {रुद्र ज्ञान यज्ञपिता शिवबाबा} की {'मामेकम्' वाली} अव्यभिचारी भावना से
योगेन सेवते सैतान्गुणान्	{सदा ही} योगयुक्त सेवा करता है, वह {प्रकृति के} इन {दुस्तर} गुणों को {श्रीमत से}
समतीत्य ब्रह्मभूयाय कल्पते	{सहज-2} संपूर्ण पार करके {सदा सत्वस्थ, एकमात्र ऊर्ध्वमुखी} परंब्रह्म के लिए योग्य है;

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठा अहं अमृतस्य अव्ययस्य च। शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्य ऐकान्तिकस्य च।। 14/27

हि अहं अव्ययस्य ब्रह्मणः च	क्योंकि मैं {शिव+बाबा ही} अविनाशी परम्ब्रह्म की, {यहाँ पु. संगम} और {स्वर्गीय}
अमृतस्य च शाश्वतस्य धर्मस्य च	अमरलोक की तथा {कलियुग में भी} शाश्वत {सत्य सनातन देवी-देवता} धर्म की और
ऐकान्तिकस्य सुखस्य प्रतिष्ठा	{विष्णु के} आत्यन्तिक {अतीन्द्रिय} सुख की, {84 जन्मों वाली समूची सृष्टि में एकमात्र} आबरू हूँ।

(190)

अध्याय-15

पुरुषोत्तमयोग-नामक 15वाँ अ0।।

[1-6 संसारवृक्ष का कथन और भगवत्प्राप्ति का उपाय]

श्रीभगवानुवाचः-ऊर्ध्वमूलं अधःशाखं अश्वत्थं प्राहुः अव्ययं। छन्दांसि यस्य पर्णानि यः तं वेद स वेदवित्।। 15/1

ऊर्ध्वमूलं	ऊपर {सिद्धार्थ-जीसिस जैसी आधारमूर्त} जड़ों वाले, {दाईं-बाईं ओर विधर्मी-विदेशी धर्मों की}
अधःशाखं छन्दांसि	अधोमुखी शाखाओं वाले, {'तुण्डे-2 मतिर्भिन्ना' संकल्पों के} छन्दों रूपी {अलग-2 प्रकार के},
यस्य पर्णानि	जिसके {सृष्टि-वृक्षीय 7 अरब चेतन} पत्ते हैं, {ऐसे मनन-चिंतनशील आदिमानव आदम के मनरूपी}
अश्वत्थं	{चंचल बने पीपल की, सच्चीगीता ज्ञान-योग से स्थिर बने} अश्वत्थ {वटवृक्ष/बनियन ट्री} को
अव्ययं प्राहुः यः तं	अविनाशी कहा है। जो उस {बंगाली सृष्टिवृक्ष के आदि-मध्य-अंत} को {भली-भाँति गहराई से}
वेद स वेदवित्	जानता है, वह {साक्षात् चौमुखी ब्रह्मामुख से निकले} वेदों का {पुरुषोत्तम संगमयुगी ब्राह्मण ही} ज्ञाता है।

अधश्च ऊर्ध्वं प्रसृताः तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः। अधश्च मूलानि अनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। 15/2

तस्य	{इस अधोमुखी सुख-दुःख के संसार में} उस {मानवीय अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष} की {सत्व-रज-तम, इन तीन प्रकार के}
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः	गुणों से प्रकृष्टतया बढ़ने वाली {द्वापर से विकारी धर्मावलम्बियों के} प्रकृष्ट अंकुरों वाली,
शाखा अधश्च	{देशी-विदेशी} शाखाएँ नीचे {अधोलोकीय नरक में} तथा {देवी-देवता सत्य सनातन धर्म के मूल तना वाली}
ऊर्ध्वं प्रसृताः च	ऊपर {राम-कृष्ण के स्वर्गलोक में मर्ज रूप से ही} फैली हुई हैं और {मंदिरों में पूजित बच्चा बुद्धि कृष्ण की}
कर्मानुबंधीनि	{मिक्स बनी पड़ी गीतामत या मानवमत से प्रभावित स्वर्ग में श्रेष्ठ & नर्क में भ्रष्ट बने} कर्मों को बाँधने वाली,
मूलानि	{पु. संगम में भी शूटिंगकालीन सिद्धार्थ-जीसिस जैसे-आधारमूर्त ब्रह्मावत्सों की बाईप्लाट} जड़ें

अधः मनुष्यलोके	नीचे {की दाई-बाई शाखाओं में चीरफाड़कर्ता हिंसक दैत्यों के द्वैतवादी द्वापुर-कलियुगी नारकीय} मनुष्यलोक में
अनुसंततानि	टोटल फैली हुई हैं। {इसीलिए कलियुगांत में ही सभी विधर्मियों के होने से गीता 18-66 में बोला- "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"सर्व धर्म त्याग मुझ एक की शरण में आ जा।}

न रूपं अस्य इह तथा उपलभ्यते न अन्तः न च आदिः न च सम्प्रतिष्ठा। अश्वत्थं एनं सुविरूढमूलं असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। 15/3

अस्य तथा रूपं इह उपलभ्यते न	इस {अनादि} वृक्ष का वैसा {परं/ब्रह्मलोकीय} रूप यहाँ {पृथ्वी पर} उपलब्ध नहीं है
च न आदिः न सम्प्रतिष्ठा च नांतः	और न {इस वट-बीज आदिदेव का} आदि, न मध्य और न अन्त {ही यथार्थ में देखा जाता} है।
सुविरूढमूलमेनं अश्वत्थं	खूब पक्की {त्रिदेवियों की} जड़ों वाले इस {कामासक्त चंचल} मन रूपी अश्व की स्थिरता {हेतु}
दृढेन असंगशस्त्रेण छित्त्वा	{पु. संगम में} दृढ़ता {की गदा द्वारा अथवा} अनासक्ति के शस्त्र {सुदर्शनचक्र} द्वारा काटकर,

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं यस्मिन् गताः न निवर्तन्ति भूयः। तं एव च आद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। 15/4

ततः तत् पदं	उस {परम कल्याणकारी पुरुषोत्तम संगमयुग} से उस {अतीन्द्रिय सुखदाई, कलातीत} परंपद-{विष्णुलोक} को
परिमार्गितव्यं यस्मिन्गताः	{मूसलों रूपी मिसाइलयुग में अभी ही} खोजना चाहिए, जिस {वैकुण्ठ} में गए हुए
भूयः न निवर्तन्ति	{9 कुरियों में पहले वाले सूर्यवंशी ब्राह्मण} पुनः {यहाँ नर-निर्मित नर+क में} नहीं लौटते।
च तं एव आद्यं पुरुषं प्रपद्ये	निश्चय ही उसी आदि {देव/अर्धनारीश्वर} परमपुरुष {हीरो पार्टधारी} की शरण लेनी चाहिए,
यतः पुराणी प्रवृत्तिः प्रसृता	जिससे पुरानी {सत्य सनातन प्रवृत्तिमार्गी देवी-देवता धर्म की} प्रक्रिया प्रसारित हुई है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। द्वन्द्वैः विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैः गच्छन्ति अमूढाः पदं अव्ययं तत्।। 15/5

निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः	मान और मोहरहित, {आत्माभिमान से देहाभिमानियों के} संगदोष को जीतने वाले,

अध्यात्मनित्याः	{भौतिकवाद को त्यागने वाले परमात्मुपासी जन} नित्य आत्मज्ञान की गहराई में लगे हुए ,
विनिवृत्तकामाः सुखदुःखसंज्ञैः	{सांसारिक} कामनाओं से विशेषतः निवृत्त {और} सुख-दुःख, {सर्दीगर्मी,मानापमानादि} नाम के
द्वन्द्वैः विमुक्ताः अमूढाः	{देह जनित} द्वन्द्वों से विशेष मुक्त, मोहरहित ज्ञानीजन, {रूहानियत भरे, सदानन्दमग्न, शांत}
तदव्ययं पदं गच्छन्ति	{माहौल के} उस अविनाशी परमपद {वाले अतीन्द्रिय सुख के विष्णुपदी परंब्रह्मलोक} में जाते हैं।

न तत् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम।। 15/6

तत् न सूर्यः न शशांकः न पावकः	उस {परंब्रह्म लोक} को न सूर्य, न चन्द्र {और} न {पंचमहाभूतों के बीच सदा दैदीप्यमान} अग्नि
भासयते यत् गत्वा न निवर्तन्ते	भासित होती है, जहाँ {वैकुण्ठ में} जाकर {नरक में 2500 वर्ष तक} नहीं लौटते,
तत् मम परमं धाम	वह {परंब्रह्मलोक} मेरा {परा प्रकृति की योग ऊर्जा-निर्मित परमप्रकाशित} परमधाम है। {मैं सर्वव्यापी नहीं।}

[7-11 जीवात्मा का विषय]

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। 15/7

जीवलोके जीवभूतः मम एव	{नं. वार} प्राणियों वाली सृष्टि में {कल्पपूर्व के पुरुषार्थ निर्मित योगीश्वर का} मेरा ही
सनातनः अंशः प्रकृतिस्थानि	सनातन {बुद्धिरूप शिवनेत्री} अंश, अपरा प्रकृति में स्थित {जड़त्वमयी बुद्धि को},
मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि कर्षति	मन सहित छः ज्ञानेन्द्रियों को {भी, जगत्पिता महादेव द्वारा योगबल से} खींचता है।

शरीरं यत् अवाप्नोति यत् च अपि उत्क्रामति ईश्वरः। गृहीत्वा एतानि संयाति वायुः गन्धान् इव आशयात्।। 15/8

यत् ईश्वरः	जब {पु. संगम में परंब्रह्मा के बुद्धिरूपी पेट में एकत्र अखंड योगऊर्जा का अंश} आत्मा/ईश्वर {या प्राणवायु}
उत्क्रामति च यत् शरीरं अवाप्नोति अपि	ऊपर निकलता है और जब {दूसरी} देह {के निर्जीव गर्भ} को भी धारण करता है,

इव वायुः आशयात् गन्धान्	{तब} जैसे {अदर्शनीय} वायु फूलों से सुगन्धियों को {दूर ले जाती है, वैसे ही प्राणवायु}
एतानि गृहीत्वा संयाति	इन {भिन्न योनिगत प्राणियों की अपरा प्रकृतिगत दैहिक 23• तत्वों} को लेकर जाता है। (•गीता 13/5)

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणं एव च। अधिष्ठाय मनश्च अयं विषयान् उपसेवते।। 15/9

अयं श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं रसनं च	यह {योगेश्वर्यरूप ज्ञान सूर्य की आत्मकिरण परा प्रकृति} कान, आँख, त्वचा, जिह्वा और
घ्राणं च एव मनः अधिष्ठाय	नासिका को, वैसे ही {छठे चंचल} मन {बुद्धि युक्त अव्यक्त त्रिनेत्री} का आधार लेकर,
विषयान् उपसेवते	{पंचमहाभूत-निर्मित जड़ देहरूप यंत्र/कार से} विषय-भोगों का {ज्ञान+कर्मेन्द्रियों द्वारा} सेवन करती है।

उत्क्रामन्तं स्थितं वा अपि भुञ्जानं वा गुणान्वितं। विमूढा न अनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। 15/10

उत्क्रामन्तं वा स्थितं अपि वा भुंजानं	{देह} छोड़ते या धारण करते भी अथवा {विषय-भोग} भोगते हुए {विद्युत करेंट-जैसी}
गुणान्वितं ज्ञानचक्षुषः पश्यन्ति	त्रिगुणयुक्त आत्मा को {एडवांस गीता} ज्ञान नेत्र वाले {परमब्रह्मावत्स ही} देखते हैं,
विमूढा न अनुपश्यन्ति	{दिखावटी टीकाकर्ता} महामूर्ख नहीं देख पाते। {तो द्वापरांत से सर्वव्यापी मान लेते हैं।}

{निराकार अभोक्ता सदा शिवज्योति पु. संगमयुग में सृष्टि के बीज आदिमानव में ही एकव्यापी है, उस की ही सुननी चाहिए।}

यतन्तो योगिनश्च एनं पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितं। यतन्तः अपि अकृतात्मानः न एनं पश्यन्ति अचेतसः।। 15/11

यतन्तः योगिनः एनं	यत्नवान योगी इस {भरीपूरी भृकुटि में योगेश्वर्या से परिपूर्ण •आत्म-किरणज्योति बिंदु} को
आत्मन्यवस्थितं पश्यन्ति	अपने {प्रकृतिकृत देह के •भ्रूमध्य} में {सदा मन बुद्धि से} भली-भाँति स्थित हुआ देखते हैं;
चाकृतात्मानोऽचेतसः यतन्तः	किंतु अपनी इन्द्रियों को वश में न करने वाले {जन्म-2 के हिंसक भोगी} बुद्धू लोग यत्न करते
अपि एनं न पश्यन्ति	भी इस {आत्मा} को {एकाग्र मन से} नहीं देख पाते। {क्योंकि अनास्थावान/नास्तिक बन पड़े हैं।}

•{'अणोरणीयांसमनुस्मेरद्यः' (गीता 8-9) •'भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य' (गी.8-10) 'चक्षुश्चैवान्तरे •भ्रुवोः' (5-27)}

[12-15 प्रभावसहित परमेश्वर के स्वरूप का विषय]

यत् आदित्यगतं तेजो जगत् भासयते अखिलं। यत् चन्द्रमसि यत् च अग्नौ तत् तेजः विद्धि मामकं।। 15/12

यदादित्यगतं तेजः अखिलं	जो {जड़ प्रकाश वाले सूर्य जैसे 1 मात्र चेतन} ज्ञान सूर्य शिवबाबा में स्थित {योग-ऊर्जा का} तेज सम्पूर्ण
जगद्भास्यते चन्द्रमसि चाग्नौ	जगत् को प्रकाशित करता है, {वैसे ही} कृष्णचन्द्र {देव} & अग्नि {देव} में {आभामय}
यत्तेजः तन्मामकं विद्धि	जो तेज है, वह मेरा {प्रतिरूप महादेव को ही} जान। {सभी आत्माएँ एक साकार विवस्वत सूर्य नहीं हैं।}

{सृष्टि में ऑलराउण्ड हीरो पार्टधारी जगत्पिता विवस्वत सूर्य का नं. वार योगबल रूपी तेज या ऊर्जा प्राणीमात्र में व्यापक है। जैसे बिजली-करेंट यंत्रों में जाता है वैसे ही पु. संगम से ही यह तेज प्राणियों में नं. वार पुरुषार्थ अनुसार विभाजित है।}

गां आविश्य च भूतानि धारयामि अहं ओजसा। पुष्णामि च ओषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।। 15/13

चाहं गां आविश्य भूतानि	और मैं {अर्जुन की देहरूपा} पृथ्वी-माता{अपरा-प्रकृति} में प्रवेश करके {पु. संगम में} प्राणियों को
ओजसा धारयामि च रसात्मकः	{जगत्पिता की} योग-ऊर्जा से पालता हूँ और {रामबाप+परंब्रह्म की} ज्ञानरसयुक्त {एडवांस गीताज्ञान से}
सोमः भूत्वा सर्वाः औषधीः पुष्णामि	सोमरस होकर {मन-बुद्धि सहित आत्मा की} सब {ज्ञानघोट} औषधियाँ पुष्ट करता हूँ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहं आश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचामि अन्नं चतुर्विधं।। 15/14

अहं वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनां	मैं विश्व की नररूप {ज्वलनशील योगीश्वर की योगाग्निरूप} जठराग्नि होकर प्राणियों के
देहं आश्रितः चतुर्विधं अन्नं	देहाश्रित हुआ {भक्ष्य-भोज्य-चव्य-चोष्य} 4 प्रकार के {आत्म-प्यार की योगिक} खुराक को
प्राणापानसमायुक्तः पचामि	{सत्संकल्पी} प्राण और {शिवोऽहं या परंब्रह्मास्मि रूप} अपान वायु से मिलाकर पचाता हूँ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिः ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यो वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहं।। 15/15

अहं सर्वस्य हृदि सन्निविष्टः	{कल्पांत में} मैं सबके दिल में {नं. वार स्मृति रूप से आदि, म. या अंत में} निवास करता हूँ
च मत्तः स्मृतिः च ज्ञानं च	और मेरे से परमात्म- स्मृति और अगाध ज्ञान-रत्नों {की उत्पत्ति} तथा {उनका}
अपोहनं अहमेव सर्वैः वेदैः वेद्यः	लोप होता है। मैं ही {संगठित 4 ब्रह्मामुख-निसृत} सब वेदों द्वारा जानने योग्य हूँ,
वेदान्तकृत् च वेदवित् एवाहं	{ज्ञान-अंतकर्ता} वेदान्ती और {द्वापर से} वेद-ज्ञाता भी मैं ही {वेदव्यास/शिवबाबा} हूँ।

[16-20 क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तम का विषय]

द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरश्च अक्षरः एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते।। 15/16

लोके इमौ द्वौ एव पुरुषौ	संसार में ये {सभी प्राणी भोक्ता & एक अभोक्ता, ये} दो• ही प्रकार की {'द्वा• सुपर्णा'...} आत्माएँ हैं-
अक्षरः च	अक्षर {शिव+समान अमोघवीर्य शंकर जो धीमा पतनशील भोगी} और {फिर भी अविनाशी}
सर्वाणि भूतानि क्षरः	{पार्टधारी महादेव-सिवा} सभी {क्षतवीर्य/पतनशील} प्राणी विनाशी हैं, {आज हैं, कल नहीं}
च कूटस्थः	और {परम ब्रह्मलोक वासी, ऊँची मनसा स्थिति से काशी-कैलाशी एवरेस्ट} शिखर पर स्थित {ब्राह्मण चोटी}
अक्षरः उच्यते	{रूप अविनाशी,} /अमोघवीर्य {सदाशिव+दैहिक लिंगरूप=सोमनाथ मंदिर का शिवबाबा} कहा जाता है;

उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः। यो लोकत्रयं आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः।। 15/17

त्वन्यः उत्तमः पुरुषः	किंतु इन दोनों {क्षर-अक्षर} में {प्राणीमात्र क्षर & सदाशिव ज्योति अक्षर} से भिन्न सर्वोत्तम आत्मा
परमात्मेत्युदाहृतः	'परम+आत्मा' ऐसे {तुरीया भोगी हीरो} कहा जाता है, {सभी आत्मा सो परमात्मा नहीं हैं।}
यः अव्ययः ईश्वरः	जो {अक्षर} अमोघवीर्य श्रेष्ठ शासक {मास्टर त्रिलोकीनाथ, सदा शिवज्योति समान शिव+बाबा} है।
लोकत्रयं आविश्य बिभर्ति	{सुख, दुःख और शांतिधाम} तीनों लोकों• को अधिकार में लेकर विशेष पोषण करता है।

•मैं (शिव निराकार ज्योतिबिंदु) तो सिर्फ (अण्डे मिसल सामान्य आत्माओं के) ब्रह्माण्ड का मालिक हूँ (गी.15-06) तुम (एवरेस्ट-जैसी चोटी के ब्राह्मण) तो {सुखदुख-शांतिधाम• तीनों के} त्रिलोकीनाथ बनते हो। (मु.ता.12/5/70 पृ.1 आदि)

यस्मात् क्षरं अतीतः अहं अक्षरात् अपि च उत्तमः। अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। 15/18

यस्मात् अक्षरात् अपि अतीतः च	जिस अक्षर {आदि नारायण/महादेव} से भी {आत्मस्थिति में सदाकाल} अतीत और
उत्तमः अहं अस्मि च	{पुरुष रूप आत्माओं में} उत्तम {सदाशिवज्योति पुरुषोत्तम} आत्मा मैं हूँ, तथापि {मेरी याद से वह मेरे
अतः लोके वेदे क्षरं पुरुषोत्तमः प्रथितः	समान बना है;} इसलिए लोक & वेद में क्षर• को {भी} पुरुषोत्तम कहा है।

{•'आदम को खुदा मत कहो, आदम खुद+आ नहीं; लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।'} ये मुसलमानी फिकरा भी है।

यो मां एवं असम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमं। स सर्ववित् भजति मां सर्वभावेन भारत।। 15/19

भारत योऽसम्मूढः	हे {ज्ञान की रोशनी में सदारत} भारत! जो पूरा मूर्ख नहीं, {थोड़ा भी ज्ञानी है, वह व्यक्ति}
मां एवं पुरुषोत्तमं	मुझ {सदाशिव ज्योति} को, {ऊपर जैसा कहा,} ऐसे ही {पुरु+ष रूप} आत्माओं में सर्वोत्तम
जानाति स सर्ववित्	समझता है, वह {निकट भविष्य में} सब-कुछ जानने वाला {मास्टर त्रिकालदर्शी}
मां सर्वभावेन भजति	मुझे {ही} सर्व {संबंधों के अव्यभिचारी/'मामेकम्'} भाव से {पु. संगमयुग में भी} याद करता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रं इदं उक्तं मया अनघ। एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।। 15/20

अनघ इति इदं गुह्यतमं	हे निष्पाप! {या कलंकीधर?} इस प्रकार यह {PBks में} 'गुह्यात् गुह्यतरं' {एडवांस ज्ञान का}
शास्त्रं मया उक्तं भारत	{सर्वमान्य} गीताशास्त्र मैंने {केवल तुम्हें} बताया है। हे {ज्ञान की रोशनी में सदारत} भारत!
एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान्	इसे {गहराई से} जानकर {मनुष्य शिवसमान त्रिनेत्री महादेव जैसा} समझदार/बुद्धिमान
च कृतकृत्यः स्यात्	और {पु. संगमयुग में ही नं.वार श्रेष्ठ ज्ञान पाने वाला} सफल मनोरथ बन जाता है।

अध्याय-16

दैवासुरसम्पद्विभागयोग-नामक 16वाँ अ0।।

[1-5 फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदा]

श्रीभगवानुवाचः-अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः। दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायः तपः आर्जवं।। 16/1

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोग-	निर्भयता, चित्त की संपूर्ण शुद्धि, {क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ=रथ और रथज्ञ का} ज्ञान और योग में
व्यवस्थितिः च दानं दमः यज्ञः	विशेषतः निरन्तर स्थिरता और दान, मन सहित 10 इन्द्रियों का संयम, यज्ञसेवा,
स्वाध्यायः तप च आर्जवं	{सभी जन्मों का} आत्माध्ययन, {आत्म ज्योतिबिंदु की सहज-सहज स्मृतिरूप} तप और सरलता,

अहिंसा सत्यं अक्रोधः त्यागः शान्तिः अपैशुनं। दया भूतेषु अलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीः अचापलं।। 16/2

अहिंसा सत्यं अक्रोधः त्यागः	{मन-वचन-कर्म से दुःख न देना-ऐसी} अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता, त्याग,
शांतिः अपैशुनं भूतेषु दया	शांति, दूसरों के दोष न देखना, {सभी क्षुद्र} प्राणियों पर {भी} दया {का भाव},
अचापलं ह्रीः मार्दवमलोलुप्त्वं	{तन-मन की} चंचलता न होना, लज्जा, {अपनी वाणी में} मीठापन {और} लोभहीनता,

तेजः क्षमा धृतिः शौचं अद्रोहः नातिमानिता। भवन्ति सम्पदं दैवीं अभिजातस्य भारत।। 16/3

भारत तेजः क्षमा धृतिः	हे भरतवंशी! तेजस्विता, क्षमा, {यथोचित} धैर्य, { मन & तन से अन्दर-बाहर की}
शौचमद्रोहः नातिमानिता	शुद्धता, {किसी से} द्रोह न करना,{देहधारी होते भी} अधिक मान न करना- {ये सभी}
दैवीं सम्पदमभिजातस्य भवन्ति	{गुण सत्य-सनातनी} दैवी सम्पदा सहित जन्म लेने वालों के होते हैं। {असुरों के नहीं}

दम्भो दर्पः अभिमानश्च क्रोधः पारुष्यं एव च। अज्ञानं च अभिजातस्य पार्थ सम्पदं आसुरीं।। 16/4

पार्थ दंभः दर्पोऽभिमानश्च	हे {सारी} पृथ्वी के राजा! {दिखावामात्र} पाखंड, घमंड और {देहगत श्रेष्ठता का} अभिमान तथा
क्रोधः पारुष्यं च एवाज्ञानं	{अंदरूनी-बाहरी} क्रोध, कठोरता और ऐसे ही बेसमझी-{ये अवगुण द्वैतवादी द्वापर से आए विधर्मियों की}
आसुरीं सम्पदं अभिजातस्य	{हिंसावादी} राक्षसी सम्पत्ति से जन्म वालों के हैं, {ये दैवी सनातन धर्म के गुण नहीं हैं।}

दैवी सम्पत् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता। मा शुचः सम्पदं दैवीं अभिजातः असि पाण्डव।। 16/5

दैवी सम्पत् विमोक्षाय आसुरी	दैवी सम्पत्ति दुःखों से मुक्ति के लिए है। {अवगुण रूप} राक्षसी संपदा {नारकीय}
निबन्धाय मता पाण्डव मा शुचः	दुःखों में बंधने लिए मानी गई है। {परन्तु} हे पाण्डव! {तू कभी भी} दुःखी मत हो;
दैवीं सम्पदं अभिजातः असि	{क्योंकि तूने राक्षसों-बीच प्रह्लाद की ही} दैवी सम्पत्ति के साथ जन्म लिया है।

[6-20 आसुरी सम्पदा वालों के लक्षण और उनकी अधोगति का कथन]

द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैव आसुर एव च। दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।। 16/6

पार्थ अस्मिन् लोके भूतसर्गौ	हे पार्थ ! इस {ब्रह्मा के दिन-रात वाली सुख-दुःख की} दुनियाँ में प्राणियों की सृष्टि
द्वौ एव दैव च	{स्वर्ग और नरक} 2 प्रकार की ही है- {ज्ञानसूर्य शिव केदिन में} देवताओं की और {नारकीय रात में लेवताओं-जैसे}
आसुर दैवः विस्तरशः	{दुखदाई} राक्षसों की। दैवी सृष्टि विस्तार से {चौमुखी संगठित ब्रह्मामुख द्वारा पहले ही}
प्रोक्तः आसुरं मे शृणु	बताई गई। {अब उत्तरोत्तर सदा दुःखदायी} आसुरी सृष्टि मेरे {शिव समान जगत्पिता} से सुन।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुः आसुराः। न शौचं न अपि च आचारः न सत्यं तेषु विद्यते।। 16/7

आसुराः जना प्रवृत्तिं च	{द्वापुर से द्वैतवादी} आसुरी गुणों वाले {देहाभिमानी} मनुष्य करने योग्य {सुखदायी} कर्म और
निवृत्तिं च न विदुः तेषु	त्यागने योग्य {दुःखदायी हिंसक} कर्म को भी नहीं जानते। उनमें {नारकीय भ्रष्ट इन्द्रियों की}
न शौचं नाचारः च सत्यं	{तीव्र लोलुपता के कारण से} न {तन-मन-धनादि की} शुद्धता, न सदाचार और सत्यता

अपि न विद्यते	भी {द्वापर-कलियुगी नरक में उतरोत्तर तीव्रतर घटती कलाएँ भी विद्यमान} नहीं होती। {कलियुगांत में कलाहीन}

असत्यं अप्रतिष्ठं ते जगत् आहुः अनीश्वरं। अपरस्परसम्भूतं किं अन्यत् कामहैतुकं।। 16/8

ते जगत् असत्यं अप्रतिष्ठं	वे {विदेशी, प्रायः स्वदेश के भी कन्वर्टिड भारतीय विधर्मी दैत्य} जगत् को मिथ्या, आधारहीन,
अनीश्वरं अपरस्परसम्भूतं	ईश्वरविहीन, {स्त्री-पुरुष के क्षणिक दैहिक सुख में} परस्पर {संभोग के} संयोग से उत्पन्न हुआ,
कामहैतुकं किमाहुः मन्यत्	{जिस मिलन में} कामवासना {ही} कारण है, दूसरा क्या?- {वे राक्षस ऐसे ही} मानते हैं।

एतां दृष्टिं अवष्टभ्य नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः। प्रभवन्ति उग्रकर्माणः क्षयाय जगतः अहिताः।। 16/9

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानः	ऐसे स्वार्थी दृष्टिकोण का आधार लेकर नष्ट हुई आत्मस्थिति {से, देहभान} के भाव वाले
अल्पबुद्धयःउग्रकर्माणः जगतः	अल्पबुद्धि लोग, क्रूर कर्म करने वाले {राक्षस}, जगत का {महाविनाश होने तक सदाकाल}
अहिताः क्षयाय प्रभवन्ति	{महा} बैरी बनने वाले, {अंततः पूरा ही एटामिक} विनाश करने के लिए उत्पन्न होते हैं।

कामं आश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः। मोहात् गृहीत्वा असद्ग्राहान् प्रवर्तन्ते अशुचिव्रताः।। 16/10

दुष्पूरं कामं आश्रित्य दंभमान-	{सदा} अतृप्त कामवासना का आश्रय लेकर, {दिखावामात्र} पाखण्ड, मान {-मर्तबा}
मदान्विताः मोहात् असद्ग्राहान्	{और} मद से भरे हुए, मूर्खता से {भगोड़ों जैसे क्षणिक और} असत्य सिद्धान्तों को
गृहीत्वा अशुचिव्रताः प्रवर्तन्ते	पकड़कर {दिन-रात चोरी-डकैती, रिश्वतखोरी-जैसे असंख्य} अपवित्र कर्म करते हैं।

चिन्तां अपरिमेयां च प्रलयान्तां उपाश्रिताः। कामोपभोगपरमा एतावत् इति निश्चिताः।। 16/11

प्रलयान्तामपरिमेयां चिन्तां	{वे जगत के} प्रलयांत तक अनगिनत {अपूरणीय, क्षणिक आकांक्षाओं वाली} चिन्ताओं के
उपाश्रिताः कामोपभोगपरमा	{सदाकाल} आधीन हुए, {सदा वर्धनीय} कामविकार भोगना ही {सांसारिक} परमप्राप्ति है

च एतावदिति निश्चिताः	और {संसार में} 'यही सब-कुछ है', {यही परमानंद है}- ऐसे {ही भ्रम में दृढ़} निश्चयी हैं।

आशापाशशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः। ईहन्ते कामभोगार्थं अन्यायेन अर्थसञ्चयान्।। 16/12

आशापाशशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः	सैकड़ों आशाओं के फंदों में जकड़े हुए, काम-क्रोध {आदि} के वशीभूत हुए,
कामभोगार्थं अन्यायेन अर्थसंचयान् ईहन्ते	कामविकार भोगार्थ {छल-बल-रिश्वतादि के} अन्याय से धनसंग्रहेच्छुक हैं।

इदं अद्य मया लब्धं इमं प्राप्स्ये मनोरथं। इदं अस्ति इदं अपि मे भविष्यति पुनः धनं।। 16/13

अद्य मया इदं लब्धं इमं मनोरथं प्राप्स्ये	आज मुझे यह {जन-धन-पदार्थादि} मिल गया, {कल} इस मनोरथ को पाऊँगा।
इदमस्ति पुनोऽपि मे इदं धनं भविष्यति	यह {वैभव} है; फिर भी मेरा इतना {भरपूर यानी अथाह} धन हो जावेगा।

असौ मया हतः शत्रुः हनिष्ये च अपरान् अपि। ईश्वरः अहं अहं भोगी सिद्धः अहं बलवान् सुखी।। 16/14

मयासौ शत्रुः हतः च अपरानपि	मैंने इस शत्रु को मार लिया है और {भविष्य में} दूसरे {शत्रुओं} को भी
हनिष्ये अहं ईश्वरः अहं भोगी	मार लूँगा। मैं ऐश्वर्यवान हूँ, मैं {राजाई ठाटबाट वालों जैसा} उपभोगकर्ता हूँ,
अहं सिद्धः बलवान् सुखी	मैं {सारे सांसारिक कामों में} सफल हूँ, {इस गाँव या इलाके में सबसे} बलवान {और} सुखी हूँ।

आढ्यः अभिजनवान् अस्मि कः अन्यः अस्ति सदृशो मया। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इति अज्ञानविमोहिताः।। 16/15

अभिजनवानस्मि मया सदृशः	{मैं} बड़े {सम्मानीय और} ऊँचे लोगों वाला हूँ। मेरे जैसा {इस समूचे इलाके में}
अन्यः आढ्यः कः अस्ति	दूसरा {इतना} धनवान कौन है? {कुबेर तो अंधश्रद्धालुओं की एक कल्पनामात्र है,धनी-मानी मैं हूँ}
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य	यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, {ये करूँगा-वो करूँगा, 5 स्टार होटलों-क्लबों में} आनन्द करूँगा
इति अज्ञानविमोहिताः	ऐसे {निरंतर घोर} अज्ञान {अंधकार} में {भटकते हुए पागलों-जैसे} भलीभांति महामूर्ख बने हुए हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः। प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरके अशुचौ।। 16/16

अनेकचित्तविभ्रान्ताः मोहजाल समावृताः	अनेक विचारों में भटके हुए, {सम्बन्धियों के} मोहजाल में पूरे घिरे हुए {और}
कामभोगेषु प्रसक्ताः अशुचौ नरके पतन्ति	कामभोग में पूरे आसक्त हुए {वेश्यावृत्ति के} गन्दे रौरवनरक में गिरते हैं।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः। यजन्ते नामयज्ञैः ते दम्भेन अविधिपूर्वकं।। 16/17

ते आत्मसंभाविताः धनमानमदान्विताः	वे {चाटुकारों द्वारा} अपनी प्रशंसा में फूले हुए, धन और मान-शान के नशे में चूर,
स्तब्धा नामयज्ञैः दम्भेन	{झूठी परम्पराओं के} हठधर्मी, {स्वाहा-2 के दिखावटी} नाममात्र के यज्ञों से घमण्डपूर्वक {अड़े हैं,}
अविधिपूर्वकं यजन्ते	सच्चीगीता-संविधान के प्रतिकूल {झूठी & अंधश्रद्धायुक्त} यज्ञ-सेवाएँ करते हैं। {जो दिखावटी ही है}

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः। मां आत्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तः अभ्यसूयकाः।। 16/18

अहंकारं बलं दर्पं कामश्च क्रोधं संश्रिताः	{वे जन-धन-धाम के} अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोध के सदा आश्रयी,
आत्मपरदेहेषु मां प्रद्विषन्तः अभ्यसूयकाः	अपनी वा परदेह में मुझ {योग-ऊर्जा} को विद्वेष करते हुए निंदक हैं।

तान् अहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्। क्षिपामि अजस्रं अशुभान् आसुरीषु एव योनिषु।। 16/19

तान् द्विषतः क्रूरान्नराधमान् अशुभानहं	उन द्वेष करने वाले क्रूर मनुष्यों में सबसे नीच {महा} पापियों को मैं
संसारेष्वजस्रं आसुरीषु योनिष्वेव क्षिपामि	संसारचक्र में सदाकाल {भूत-प्रेतादि की} आसुरी योनियों में ही फेंकता हूँ।

आसुरीं योनिं आपन्नाः मूढा जन्मनि जन्मनि। मां अप्राप्य एव कौन्तेय ततो यान्ति अधमां गतिं।। 16/20

कौन्तेय जन्मनि-2 आसुरीं योनिमापन्नाःमूढा	हे कुन्ती-पुत्र! जन्म-2 {नारकीय} आसुरी योनि को प्राप्त हुए मूर्खलोग
मामप्राप्य ततः अधमां गतिमेव यान्ति	मुझको {कभी भी} न पाकर, वहाँ से {अतीव दुखों की} अधम गति ही पाते हैं।

[21-24 शास्त्रविपरीत आचरण को त्यागने और शास्त्रानुकूल आचरण के लिए प्रेरणा।]

त्रिविधं नरकस्य इदं द्वारं नाशनं आत्मनः। कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मात् एतत् त्रयं त्यजेत्।। 16/21

कामः क्रोधस्तथा लोभः इदमात्मनः नाशनं	काम, क्रोध & लोभ- ये आत्मा {के तन-मन-धन और बुद्धि} के नाशक
नरकस्य त्रिविधं द्वारं तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्	नारकीय त्रिविध द्वार हैं; अतः ये तीनों {महाशत्रुओं-मानिंद} त्याज्य हैं।

एतैः विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैः त्रिभिः नरः। आचरति आत्मनः श्रेयः ततः याति परां गतिं।। 16/22

कौन्तेय एतैस्त्रिभिः तमोद्वारै र्विमुक्तः नरः	हे कुन्ती-पुत्र! इन 3 {अज्ञानयुक्त} अन्धकार के द्वारों से विमुक्त नर
आत्मनः श्रेयः आचरति ततः परां गतिं याति	आत्मकल्याणार्थ कर्म करता है, जिससे {वैकुण्ठ की} परमगति पाता है।

यः शास्त्रविधिं उत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिं अवाप्नोति न सुखं न परां गतिं।। 16/23

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य कामकारतः वर्तते स	जो गीताविधान को छोड़ मनमत {या कोई भी मानवमत} प्रमाण चलता है, वह
न सिद्धिं न सुखं न परां गतिमवाप्नोति	न सिद्धि को, न सुख को, न {कलातीत वैकुण्ठ की विष्णुलोकीय} परमगति को पाता है।

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुं इह अर्हसि।। 16/24

तस्मात्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ शास्त्रं प्रमाणं	इससे तुझे कार्याकार्य का फैसला करने में {सच्चीगीता के} शास्त्रीय प्रमाण को
ज्ञात्वा इह शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुं अर्हसि	जानकर यहाँ सर्वशास्त्र-शिरोमणि संविधान में कहा कर्म {ही} करने योग्य है।

अध्याय-17

श्रद्धात्रयविभागयोग-नामक 17वाँ अ0।।

[1-6 श्रद्धा का और शास्त्रविपरीत घोर तप करने वालों का विषय]

अर्जुन उवाचः-ये शास्त्रविधिं उत्सृज्य यजन्ते श्रद्धया अन्विताः। तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वं आहो रजः तमः।। 17/1

कृष्ण तु ये श्रद्धया अन्विताः	हे आकर्षणमूर्त शिवबाबा! किंतु जो श्रद्धा {भक्ति भाव} से भरे {मनमत या परमत पर}
शास्त्रविधिं उत्सृज्य यजन्ते तेषां	सच्चीगीता-संविधान को छोड़कर {बेसमझी पूर्वक स्वाहा-2 की} यज्ञसेवा करते हैं, उनका
निष्ठा सत्त्वमाहो रजः तमः का	श्रद्धाभाव {पुरुषोत्तम संगम में} सात्विक, राजसी या तामसी, कौनसा {शूटिंग का} होता है?

श्रीभगवानुवाचः-त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा। सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च इति तां शृणु।। 17/2

देहिनां स्वभावजा सा श्रद्धा सात्त्विकी राजसी	देहधारियों के स्वभाव से पैदा वह श्रद्धाभावना सात्त्विकी, राजसी
च तामसीति त्रिविधैव भवति तां च शृणु	और तामसी- ऐसे {युगानुकूल क्रम से} 3 प्रकार की ही होती है, उसे और सुन।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत। श्रद्धामयः अयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।। 17/3

भारत सर्वस्य श्रद्धा	हे {विष्णु/} भरतवंशी अर्जुन! सबका श्रद्धा-विश्वास {पु. संगमयुगी शूटिंग से ही}
सत्त्वानुरूपा भवत्ययं पुरुषः यः	प्राणी-{स्वभाव} के अनुरूप होता है। यह पुरुष जो {पूर्व जन्मानुसार भी}
श्रद्धामयः यच्छ्रद्धः स सः एव	{जैसी} श्रद्धायुक्त होता है, जो श्रद्धा{-विश्वास} है, वह वैसा ही {शूटिंग में ही बनता} है।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः। प्रेतान् भूतगणान् च अन्ये यजन्ते तामसा जनाः।। 17/4

सात्त्विकाः देवान् राजसाः	सत्वगुणी लोग {सतयुगी} देवताओं को, {द्वैतवादी द्वापुर से विधर्मी} राजसी लोग

यक्षरक्षांसि अन्ये तामसा जनाः	{त्रेता-द्वापर के} यक्ष-राक्षसों को {और} दूसरे {कलाहीन कलियुगी} तामसी लोग
प्रेताश्च भूतगणान् यजन्ते	{तान्त्रिकों-मांत्रिकों,घोरकर्मियों,सूक्ष्मशरीरी} भूत-प्रेतों के समुदाय को पूजते हैं।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः। दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।। 17/5

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्रामं अचेतसः। मां चैव अन्तःशरीरस्थं तान् विद्धि आसुरनिश्चयान्।। 17/6

ये जनाः अशास्त्रविहितं घोरं	जो लोग सच्ची गीता-शास्त्र {संविधान} रहित {शुक्र जैसा} घोर {शारीरिक कष्टदायी}
तपः तप्यन्ते दंभाहंकारसंयुक्ताः	{असह्य} तप करते हैं, {वे 7 कुल पर्वतों में विंध्यवाली ऊँचाई के} घमण्ड, अहंकारयुक्त,
कामरागबलान्विताः अचेतसः शरीरस्थं	कामना, आसक्ति व बाहुबल से भरे बेसमझ लोग शरीरस्थ {धरणीमाँ-जल-
भूतग्रामं चान्तः शरीरस्थं मामेव	क्षित्यादि} पंचभूत-समूह और अंतर्देह में स्थित मुझ {योगऊर्जा} को भी {बौद्धिक -
कर्शयन्तः तानासुरनिश्चयान् विद्धि	मानसिक} कष्टदाई हैं। {तू }उनको {कलियुगी तामसप्रधान} आसुरी निश्चय वाला समझ।

[7-22 आहार, यज्ञ, तप और दान के पृथक्-पृथक् भेद।]

आहारः तु अपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः। यज्ञः तपः तथा दानं तेषां भेदं इमं शृणु।। 17/7

सर्वस्य प्रियः आहारोऽपि त्रिविधः	सब {मनुष्यों} का प्रिय भोजन भी {सत्व, रज, तामसी} 3 प्रकार का {स्वभाव से}
भवति यज्ञस्तपस्तथा दानं	{निश्चित} होता है। यज्ञ{सेवा, आत्मबिंदु का स्मृतिरूप} तप व {तन, धनादि का} दान
तु तेषां इमं भेदं शृणु	और उन {यज्ञतपादि} के इस {नीचे बताए गए अनेक प्रकार के} भेद को {भी ध्यान से} सुन।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः आहाराः सात्त्विकप्रियाः।। 17/8

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीति-	आयु, बुद्धि, बल, स्वास्थ्य, सुख, {धर्मानुकूल आपसी इन्द्रियों के} प्रेमभाव

विवर्धना: हृद्या: स्निग्धा: रस्या:	{के सुख} विशेष को बढ़ाने वाले, {हृदय को} रुचिकर, {आँतों के रक्षक} चिकने, रसीले,
स्थिरा आहारा: सात्त्विकप्रिया:	{दीर्घ काल} स्थिर रहने वाले भोजन {नं.वार} सात्विक {देव} आत्माओं को {अधिक} प्रिय हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिन:। आहारा राजसस्य इष्टा: दु:खशोकामयप्रदा:।। 17/9

कट्वम्ललवणात्युष्ण विदाहिन:	कड़ुवे, खट्टे, नमकीन, अति गरम, अति दाहयुक्त, {उत्तेजना को बढ़ाने वाले}
तीक्ष्ण रूक्ष आहारा: राजसस्य	तीखे, रूखे आहार {द्वैतवादी द्वापरयुग से वासना-वर्धक} रजोगुणी लोगों के
इष्टा: दु:खशोकामयप्रदा:	प्रिय हैं {और वे सभी आहार द्वापुर से ही} दु:ख, शोक और रोग पैदा करते हैं।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टं अपि च अमेध्यं भोजनं तामसप्रियं।। 17/10

यातयामं गतरसं पर्युषितं अमेध्यं	नष्टकालीन आहार, {खाने में} स्वादहीन, बासी, अपवित्र, {अचार
पूति च उच्छिष्टं भोजनं तामसप्रियं	जैसा} सड़ा हुआ और जूठा भोजन तामसी {वर्णसंकर} लोगों को प्रिय है।

अफलाकाङ्क्षिभि: यज्ञ: विधिदृष्टो य इज्यते। यष्टव्यं एव इति मन: समाधाय स सात्त्विक:।। 17/11

अफलाकांक्षिभि: विधिदृष्ट:	{दुनियावी किसी} फल की कामना-रहित के द्वारा, गीता-विधान द्वारा {अच्छे-से} समझा हुआ
यष्टव्यमेवेति मन: समाधाय	{और अनिवार्यत: } यज्ञसेवा करना ही है- ऐसे मन का {सच्ची गीता-मत से} समाधान करके
य यज्ञ: इज्यते स सात्त्विक:	जो {कल्याणकारी} यज्ञसेवा की जाती है, वह {शिवबाबा की मतप्रमाण} सात्विक सेवा है।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थं अपि चैव यत्। इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसं।। 17/12

तु भरतश्रेष्ठ फलं अभिसंधाय	किन्तु, हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! {इस पुरुषोत्तम संगमयुगी जीवन में ही} फल का लक्ष्य लेकर,
चैव दम्भार्थमपि यत्	ऐसे ही {सांसारिक} अभिमानार्थ भी जो {यज्ञसेवा समाज में अपना बढ़प्पन दिखाने के लिए}

इज्यते तं यज्ञं राजसं विद्धि	की जाती है, उस यज्ञसेवा को {द्वैतवादी दैत्यों की कर्मेन्द्रिय प्रधान} रजोगुणी सेवा जान।

विधिहीनं असृष्टान्नं मन्त्रहीनं अदक्षिणं। श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।। 17/13

विधिहीनं असृष्टान्नं	{एडवांस सच्ची} गीता-संविधानरहित, ब्रह्माभोजन से रहित, {गीता के 9-34 में वर्णित 'मन्मनाभव'}
मन्त्रहीनं अदक्षिणं श्रद्धाविरहितं	मंत्र से रहित, {रुद्रयज्ञ के निमित्तों प्रति} सम्मानहीन {तथा} श्रद्धा {भावना} विहीन
यज्ञं तामसं परिचक्षते	{रुद्रज्ञान} यज्ञ-{सेवाकार्य को खास पापी कलियुग की शूटिंग में} तामसी कहा जाता है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचं आर्जवं। ब्रह्मचर्यं अहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। 17/14

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचं	{पु .संगम के संसार में गुरुता प्राप्त} देव, द्विज, गुरु, विशेष ज्ञानी का पूजन, शुद्धता,
आर्जवं ब्रह्मचर्यं च अहिंसा	सरलता, {मन-वचन & कर्म से भी} ब्रह्मचर्य और {श्रेष्ठ या क्षुद्र प्राणी की भी} हिंसा न करना
शारीरं तप: उच्यते	दैहिक तप कहा जाता है। {मन-बुद्धि से स्टारात्मा की एकाग्रता का तप अलग बात है।}

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। 17/15

अनुद्वेगकरं सत्यं वाक्यं यत् प्रिय	{अपनों-परायों को} उत्तेजित न करने वाली {मिठासभरी} सत्य बात {कहना}, जो प्रिय
च हितं च एव स्वाध्यायाभ्यसनं	और हितकारी हो। ऐसे ही आत्मा {के अपने जन्मों के} अध्ययन का {नित्य} अभ्यास,
वाङ्मयं तप उच्यते	{मन रूप उच्चै:श्रवा और वाग्देवी सरस्वती माता की प्रसन्नता के लिए} वाणी का तप कहा जाता है।

मन:प्रसाद: सौम्यत्वं मौनं आत्मविनिग्रह:। भावसंशुद्धि: इति एतत् तप: मानसं उच्यते।। 17/16

मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनं	मन की प्रसन्नता, {आत्मिक} शांतभाव, {चंचल मन के संकल्पों से भी सदा} मौन,
आत्मविनिग्रह: भावसंशुद्धि:	{ज्योतिबिंदु} आत्मा का विशेष संयम, {ज्ञानयुक्त} मनोभावों={संकल्पों} की विशेष शुद्धि-
इत्येतत् मानसं तप:उच्यते	यह इतना {भ्रूमध्य में स्थित स्टार रूप आत्मा की स्मृति का} मानसिक तप कहा है।

श्रद्धया परया तप्तं तपः तत् त्रिविधं नरैः। अफलाकाङ्क्षिभिः युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।। 17/17

अफलाकांक्षिभिर्युक्तैर्नरैः	{किसी सांसारिक} फल की आकांक्षा से रहित, {शिवबाबा से अव्यभिचारी} योगयुक्त लोगों द्वारा
परया श्रद्धया तप्तं तत्	परमश्रद्धा पूर्वक तपाया गया वह {पुरुषोत्तम संगमयुग में निष्पादित मन-वचन-कर्म से}
त्रिविधं तपः सात्त्विकं परिचक्षते	3 तरह का {अटल सत्य सनातनी देवात्माओं का} तप सात्विक कहलाता है।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्। क्रियते तत् इह प्रोक्तं राजसं चलं अध्रुवं ।। 17/18

सत्कारमानपूजार्थं च एव दंभेन	मान-सम्मान एवं पूजा कराने लिए तथा अभिमान से {समाज में दिखावामात्र}
यत् चलमध्रुवं तपः क्रियते	जो अल्पकालीन, अस्थायी {कर्मेन्द्रियों से भाग-दौड़ादि का कष्टादाई दैहिक} तप किया जाता है,
तत् इह राजसं प्रोक्तं	वह {नरक जैसा} यहाँ {शूटिंगकाल में भी कर्मेन्द्रियों का द्वैतवादी} राजसी कहा गया है।

मूढग्राहेण आत्मनः यत् पीडया क्रियते तपः। परस्य उत्सादनार्थं वा तत् तामसं उदाहृतं।। 17/19

यत्तपः मूढग्राहेण आत्मनः पीडया वा परस्य	जो तप मूर्खता के हठ से अपने को पीड़ा देने लिए अथवा अन्य को
उत्सादनार्थं क्रियते तत्तामसं उदाहृतं	हानि देने लिए किया जाए- वह तामसी {पापी कलियुगी तप} कहा जाता है।

दातव्यं इति यत् दानं दीयते अनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तत् दानं सात्त्विकं स्मृतं।। 17/20

दातव्यं इति यत् दानं	{पुनर्जन्म की सत्य सनातनी मान्यता में} देना ही कर्तव्य है- ऐसा {समझ} जो दान {बदले में}
अनुपकारिणे देशे च काले	{वर्तमान संगमयुगी जन्म में} उपकार करने में असमर्थ, {दुकालग्रस्त} देश और काल में {जरूरतमंद}
पात्रे दीयते तत् दानं सात्त्विकं स्मृतं	सत्पात्र को {पुरुषार्थ में सहयोगार्थ} दिया जाता है, वह दान सात्विक माना गया है;

यत् तु प्रत्युपकारार्थं फलं उद्दिश्य वा पुनः। दीयते च परिक्लिष्टं तत् दानं राजसं स्मृतं।। 17/21

तु प्रत्युपकारार्थं वा	किंतु बदले में उपकार की भावना से {इसी पु. संगमयुगी जन्म में मिले-ऐसे} अथवा
पुनः फलं उद्दिश्य यत् दानं	{उसी जन्म में} फिर से फल की आशा लेकर जो दान {देहभान के दैत्यभाव से या द्वैतभाव से}
परिक्लिष्टं दीयते तत् राजसं स्मृतं	कष्टपूर्वक {परायेपन से} दिया जाता है, वह {स्वार्थभाव का} राजसी माना गया है।

अदेशकाले यत् दानं अपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृतं अवज्ञातं तत् तामसं उदाहृतं।। 17/22

यत् दानं अदेशकाले च अपात्रेभ्यः	जो दान अयोग्य देश-काल में और {नास्तिकों-जैसे} अयोग्य पात्र को
असत्कृतं अवज्ञातं दीयते तत्तामसं उदाहृतं	असम्मानपूर्वक, अवज्ञापूर्वक दिया जाता है, वह तामसी कहा गया है।

[23-28 ॐ तत्सत् के प्रयोग की व्याख्या]

ॐ तत् सत् इति निर्देशो ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः। ब्राह्मणाः तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।। 17/23

ॐ तत्सदिति त्रिविधः ब्रह्मणः निर्देशः	'ॐ तत् सत्'- ऐसे 3 प्रकार का {महत्=परम} ब्रह्मा का उपदेश {अध्यादेश}
स्मृतः तेन पुरा ब्राह्मणाः च	{अंदर से} स्मरण किया जाता है, उससे पूर्वकल्प में {रुद्राक्षरूप पितरगण चोटी के} ब्राह्मणों और
वेदाः च	{नं.वार} वेदों के {ज्ञान की सम्पूर्ण एडवांस व्याख्या} और {'सत्'=सत्कर्मरूप अविनाशी रुद्र की}
यज्ञाः विहिताः	{अलौकिक पुरुषोत्तम संगमयुगी} यज्ञ-सेवाओं {अर्थात् 'ॐ+तत्+सत्'} का ऐसा विधान किया गया था।

तस्मात् ओम् इति उदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनां।। 17/24

तस्मात् विधानोक्ताः ब्रह्म	इसलिए {पुरुषोत्तम संगमयुग में} सच्ची गीता- संविधानोक्त चौमुखी ब्रह्मा के {मुख का}
वादिनां यज्ञदानतपःक्रियाः	{त्रिगुणात्मक} उपदेश बोलने वालों की यज्ञ-दान-तप {सम्बंधी सभी अलौकिक} क्रियाएँ
ॐ इत्युदाहृत्य सततं प्रवर्तन्ते	'ओम्'- ऐसा बोलकर {द्वापुर-कलियुग में भी सदा} सर्वदा आरंभ की जाती हैं।

तत् इति अनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः। दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।। 17/25

तत् इति	{वर्तमान अविनाशी अश्वमेध रुद्र-ज्ञानयज्ञ रूप परमात्मा प्रति} 'तत्' ऐसा {समझ या कभी-2 कोई कहकर}
फलमनभिसंधाय मोक्षकांक्षिभिः	फल को न चाहते हुए मुक्ति-आकांक्षियों द्वारा {पुरुषोत्तम संगम में तो नौ कुरियों की}
विविधाः यज्ञतपःक्रियाः च	{विधिसम्मत/वेद-वर्णित} विविध यज्ञ-सेवाएँ {और आत्मस्मृति के} तप की क्रियाएँ और
दानक्रियाः क्रियन्ते	{तनधनादि} दान-कार्य {एक शिवबाबा की श्रीमत से मौन होकर ही} किए जाते हैं।

सद्भावे साधुभावे च सत् इति एतत् प्रयुज्यते। प्रशस्ते कर्मणि तथा सत् शब्दः पार्थ युज्यते।। 17/26

सद्भावे च साधुभावे सदिति	{कल्याणकारी} सद्भाव और अच्छाई के अर्थ में {परब्रह्मामुख-वंशियों द्वारा} 'सत्' ऐसा
एतत् प्रयुज्यते तथा पार्थ	यह शब्द {स्थिर मनसा द्वारा ही} प्रयोग होता है। ऐसे ही हे पार्थ! {अलौकिक और}
प्रशस्ते कर्मणि सत् शब्दः युज्यते	प्रशंसनीय {यज्ञसेवा} कर्म में 'सत्' शब्द {ही सदा सत्कर्म के आधार से} प्रयोग होता है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सत् इति च उच्यते। कर्म चैव तदर्थीयं सत् इति एव अभिधीयते।। 17/27

च यज्ञे तपसि च दाने स्थितिः	तथा यज्ञसेवा में, आत्मस्मृति के तप में & {ज्ञानादिक} दान में {मन की} स्थिरता
सत् इति उच्यते च एव तदर्थीयं	{सदा} 'सत्' ऐसे कहते हैं। इसी प्रकार {पु. संगम के} उस {यज्ञ की सेवा} के लिए
कर्म एव सत् इति अभिधीयते	कर्म भी 'सदासत्'- ऐसे कहते हैं। {द्वापुर-कलि की नहीं, पु. संगम की ही बात है।}

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपः तप्तं कृतं च यत्। असत् इति उच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह।। 17/28

पार्थ अश्रद्धया हुतं दत्तं तप्तं तपः	हे पृथ्वीराज! अश्रद्धापूर्वक यज्ञसेवा, दान, {देह के कष्टों भरे} तापदाई तप
च यत्कृतं असदिति उच्यते	और जो {अच्छा भी} कर्म किया 'असत्' ऐसे कहा है; {•श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं (गीता 4-39)}
तत् न प्रेत्य च नो इह	{अश्रद्धालु का} वह {तप-दानादि} न मरकर और न इस {असार} संसार में {फलदायी} है।

•{गीता में अश्रद्धाभावना वालों का और भी देखें:-3/31; 6/47; 12/2; 12/20; 17/3; 17/13; 17/17; और 18/71}

अध्याय-18

मोक्षसंन्यासयोग-नामक 18वाँ अ0।।

[1-12 त्याग का विषय।]

अर्जुन उवाचः-सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वं इच्छामि वेदितुं। त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन।। 18/1

महाबाहो हृषीकेश	हे {अष्टमूर्तिरूप} महाबाहु शिवबाबा! हे {मन सहित ज्ञान और कर्म-} इन्द्रियों के स्वामी!
केशिनिषूदन संन्यासस्य च	हे केशिहन्ता! {मनसा संकल्प सहित समुचित कर्मों के} पूरे त्यागरूप संन्यास का और
त्यागस्य तत्त्वं पृथक् वेदितुं इच्छामि	{तन-धन-सम्बंधादि के} त्याग का तत्त्व अलग-2 जानना चाहता हूँ।

श्रीभगवानुवाचः-काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः। सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुः त्यागं विचक्षणाः।। 18/2

कवयः काम्यानां कर्मणां न्यासं	{कुछ} विद्वान {द्वैतवादी द्वापुर से सभी संसारी} कामना वाले कर्मों के त्याग को
संन्यासं विदुः विचक्षणाः	{सम्पूर्ण त्याग रूप} संन्यास समझते हैं, {जबकि पु. संगमी} विशेष दृष्टा {स्वर्गीय संगठन हेतु और}
सर्वकर्मफलत्यागं त्यागं प्राहुः	{अविनाशी रुद्रयज्ञ-अर्थ संसार के} सभी कर्मफलों {की प्राप्ति} के त्याग को त्याग बताते हैं।

त्याज्यं दोषवत् इति एके कर्म प्राहुः मनीषिणः। यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं इति च अपरे।। 18/3

एके मनीषिणः कर्म दोषवत्	कुछेक बुद्धिमान् {द्वापुर से नरनिर्मित कामेन्द्रिय का नारकीय} कर्म {महा} पाप-जैसा
त्याज्यं इति प्राहुः च अपरे	त्यागने योग्य है, ऐसे कहते और दूसरों का मत है {कि अविनाशी अश्वमेध रूद्र ज्ञान-}
यज्ञदानतपःकर्म त्याज्यं न	यज्ञ{सेवा}, दान {वा आत्मस्मृति रूप} तप {पु.संगम में कभी भी} त्यागने योग्य नहीं हैं।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम। त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः।। 18/4

भरतसत्तम तत्र त्यागे मे निश्चयं	हे भरतकुलश्रेष्ठ! उस त्याग के बारे में {विश्व-कल्याणार्थी} मेरा {अटल} निश्चय
शृणु हि पुरुषव्याघ्र त्यागः	सुन; क्योंकि {इस संसार रूपी जंगल में} हे मानवों में {नर} सिंहस्वरूप! {पु. संगम की शूटिंग में} त्याग
त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः	तीन तरह से कहा गया है। {मानवीय सृष्टिवृक्ष के बीज 1 मुखी रुद्राक्ष/महारुद्र की}

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यं एव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणां।। 18/5

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं	{रुद्र ज्ञान} यज्ञसेवा, दान, {आत्मस्मृति का} तप-कर्म {पु.संगम में कभी} त्याज्य नहीं,
तत् कार्यं एव यज्ञः दानञ्च	उसे {अनिवार्यतः} करना ही चाहिए; {क्योंकि अविनाशी} यज्ञसेवा, दान और {मानसिक त्याग में}
तपः एव मनीषिणां पावनानि	{आत्म-स्टार की स्मृति रूप} तपस्या ही बुद्धिमानों को {संसार में सदा} पवित्र बनाती हैं।

एतानि अपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानि इति मे पार्थ निश्चितं मतं उत्तमं।। 18/6

पार्थ त्वेतानि कर्माण्यपि	हे पृथ्वीपति! किंतु इन {तीनों ही पु. संगमयुगी अलौकिक यज्ञ-दान-तपयुक्त} कर्मों को भी
संगं च फलानि त्यक्त्वा	{तन-धन-धामादि की} आसक्ति और {कर्म-} •फलों {की इच्छा} को त्यागकर {विश्व भलाई के अर्पणभाव से}
कर्तव्यानि इति मे निश्चितं उत्तमं मतं	करना चाहिए, ऐसा मेरा {सर्वस्व त्याग रूप संन्यास का} निश्चित, उत्तम मत है।

•(यज्ञ) सर्विस से यहाँ सुख लेंगे तो वहाँ (स्वर्ग) का सुख कम हो जावेगा। {क्योंकि सम्पूर्ण त्याग नहीं किया} (मु.ता.16.1.67 पृ.3 आदि)

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो न उपपद्यते। मोहात् तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः।। 18/7

तु नियतस्य कर्मणः संन्यासः	परंतु नियत हुए {नैसर्गिक खान-पान-उत्सृजनादि अनिवार्य} कर्म का {सर्वथा} परित्याग
नोपपद्यते मोहात्तस्य	अनुचित है। {क्योंकि ऐसी जबरियन की गई} मूर्खता से {हठपूर्वक इन्द्रिय-उत्सादनार्थ} उस {दैहिक आवेगी} के
परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः	{कर्म का} सर्वथा त्याग {देह और आत्मपीड़ादायी कलियुगी} तामसी त्याग कहलाता है।

दुःखं इति एव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्। स कृत्वा राजसं त्यागं न एव त्यागफलं लभेत्।। 18/8

यत् कर्म दुःखं एव इति काय	जो {जनहित का} कर्म दुःख रूप ही है ऐसा समझ शारीरिक, {मानसिक या किसी के मोह में}
क्लेशभयात्त्यजेत् स राजसं	{होने वाले} कष्ट के भय से त्यागता है, वह {स्वार्थ-पूर्ति करने वाली लालसा वाला} राजसी
त्यागं कृत्वा त्यागफलमेव न लभेत्	त्याग करने के बाद, {अनात्मभावी/देहभावी जन} त्याग का फल ही नहीं पाता।

कार्यं इति एव यत् कर्म नियतं क्रियते अर्जुन। सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।। 18/9

अर्जुन कार्यमेव इति यत्कर्म	हे अर्जुन! {विश्व-कल्याणी नवनिर्माण-भाव से} करने योग्य ही है- ऐसे जो कर्म {अपनी}
संगं च फलं त्यक्त्वा नियतं	{देह,किसी व्यक्ति वा वस्तुगत} आसक्ति और फलेच्छा को त्यागकर नियमपूर्वक
क्रियते सैव सात्त्विकस्त्यागः मतः	किया जाता है, वही {अव्वल नं. सतयुगी सुखदायी} सात्विक त्याग माना जाता है।

न द्वेष्टि अकुशलं कर्म कुशले न अनुषज्जते। त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।। 18/10

त्यागी सत्त्वसमाविष्टः मेधावी	{अविनाशी रुद्र की यज्ञसेवार्थ कर्मफल का} त्यागी, सात्त्विक स्वभाव का बुद्धिमान्
छिन्नसंशयः अकुशलं कर्म द्वेष्टि न	{ईश्वर में} संशयहीन {और} कुशलता रहित {अप्रिय और अनिच्छित} कर्म से द्वेषी नहीं
कुशले न अनुषज्जते	{एवं दीर्घकालीन अभ्यासी होने से} कुशलतायुक्त {प्रिय} कर्म में {अनासक्त होने से} अनुराग नहीं रखता;

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माणि अशेषतः। यः तु कर्मफलत्यागी स त्यागी इति अभिधीयते।। 18/11

हि देहभृता कर्माण्यशेषतः त्यक्तुं	क्योंकि {मुझ विदेही शिवज्योति की तरह} देहधारी कर्मों को पूरा त्यागने में
शक्यं न तु यः कर्मफलत्यागी	समर्थ नहीं है; किंतु जो {देहधारी विश्वकल्याणार्थ} कर्मफल का {सदाकाल} त्यागी है,
स त्यागी इत्यभिधीयते	वह {गीता 5-25 का 'सर्व भूतहिते रताः' ही यथार्थ में} त्यागी है- ऐसे कहा जाता है।

अनिष्टं इष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलं। भवति अत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्।। 18/12

अत्यागिनां कर्मणोऽनिष्टं	{कर्म का फल पाने की इच्छा का} त्याग न करने वालों को कर्म का {बिगड़ा हुआ} अप्रिय

इष्टश्च मिश्रं त्रिविधं फलं प्रेत्य	{अनचाहा,} प्रिय व मिश्रित 3 प्रकार का फल {इस दुनिया में देह से} मरकर {आगे जन्म में}
भवति तु संन्यासिनां क्वचिन्न	{अवश्य} प्राप्त होता है; किन्तु {मोक्षभावी} संन्यासियों को कभी भी {प्राप्त} नहीं होता।

[13-18 कर्मों के होने में सांख्यसिद्धान्त]

पञ्च एतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे। साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणां।। 18/13

महाबाहो सर्वकर्मणां सिद्धये	हे सहयोगियों रूपी दीर्घबाहु! {अच्छे-बुरे माने गए} सारे कर्मों की {सम्पूर्ण} सिद्धि के लिए
कृतान्ते मे सांख्ये एतानि	कृत कर्मों के अंतकर्ता मेरे {आत्मभाव वाले} संपूर्ण व्याख्या सहित सांख्ययोग में इन
पंच प्रोक्तानि कारणानि निबोध	पाँच कहे गए कारणों को {इस पु. संगम में विस्तार पूर्वक अवश्य} समझ ले।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधं। विविधाश्च पृथक् चेष्टाः दैवं चैव अत्र पञ्चमं।। 18/14

अत्र अधिष्ठानं तथा कर्ता	यहाँ {मानसी शूटिंगकाल में कर्म का} आधाररूप {विनाशी देह}, उसी तरह कर्ता
च पृथग्विधं करणं च विविधाः	{स्वयं} और विविध प्रकार की {ज्ञान और कर्म-} इन्द्रियाँ और {इन्द्रियों की} विविध
पृथक् चेष्टाः च पंचमं दैवं एव	{सुख और दुःखदाई} अलग-2 चेष्टाएँ और पाँचवाँ {अदृष्ट} भाग्य ही {मुख्य कारण हैं।}

शरीरवाङ्मनोभिः यत् कर्म प्रारभते नरः। न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्च एते तस्य हेतवः।। 18/15

शरीरवाङ्मनोभिः न्याय्यं वा	शरीर, वाणी और मन द्वारा {सच्ची गीता के} न्याय से अथवा {नरनिर्मित मनमाने}
विपरीतं यत् कर्म नरः प्रारभते	अन्यायपूर्वक जो {अच्छे-बुरे} कर्म {स्वर्ग+नरक की चतुर्युगी में भी} मनुष्य करता है,
तस्य ते पंच हेतवः	उसके ये सभी पाँचों कारण {कपिलमुनि की सम्पूर्ण व्याख्या साङ्ख्य में कहे} हैं।

तत्र एवं सति कर्तारं आत्मानं केवलं तु यः। पश्यति अकृतबुद्धित्वात् न स पश्यति दुर्मतिः।। 18/16

तत्रैवं सति योऽकृत-	वहाँ {पुरुषोत्तमी शूटिंग में} ऐसे {पांचो ही कारण} होने पर {भी} जो अधकचरी
बुद्धित्वात् केवलं आत्मानं कर्तारं	बुद्धि के कारण {विदेशियों के नीच संग से प्रभावित} केवल अपने को करने वाला
पश्यति स दुर्मतिः न पश्यति	देखता है, वह दुष्टबुद्धि {ठीक} नहीं देखता। {संग के रंग की बलिहारी है।}

यस्य न अहङ्कृतो भावो बुद्धिः यस्य न लिप्यते। हत्वा अपि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।। 18/17

यस्याहंकृतः भावः न यस्य बुद्धिः	जिसका अहंकार भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि {1 प्रभु सिवा कहीं भी संसार में}
लिप्यते न स इमाँन् लोकान्	लिप्त नहीं होती, वह इन {देहासक्त नास्तिक} लोगों को {कल्पान्त कालीन महा}
हत्वाऽपि न हन्ति न निबध्यते	{विनाश में} मारकर• भी नहीं मारता {और} न बंधायमान होता है। {जैसे- महादेव शंकर}

•{बाप (शिव) तो विनाश उस (शंकर) से कराते हैं जिस पर कोई पाप न लगे। (मु. ता.11.5.90 पृ.1 मध्य) (अकर्म का अर्थ जाना ना!)

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना। करणं कर्म कर्ता इति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।। 18/18

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा	{थोड़ा या सारा} ज्ञान, जानने योग्य {अच्छी या बुरी} बात, अच्छा समझदार-{ये} 3 प्रकार के
कर्मचोदना करणं कर्म कर्ता	कर्म-प्रेरक हैं। {इन्द्रियादि} साधन,कर्म {तथा अच्छा-बुरा कर्म-} कर्ता {ज्योतिबिंदु आत्मा}
इति त्रिविधः कर्मसंग्रहः	- ऐसे 3 प्रकार का {पु. संगमी शूटिंगकाल में अपना ही किया हुआ} कर्मों का संग्रह है।

[19-40 तीनों गुणों के अनुसार ज्ञान,कर्म,कर्ता,बुद्धि,धृति और सुख के पृथक्-2 भेद।]

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधा एव गुणभेदतः। प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावत् शृणु तानि अपि।। 18/19

गुणसंख्याने ज्ञानञ्च कर्म च कर्ता गुणभेदतः	गुणों के ज्ञान में ज्ञान कर्म तथा करने वाला, गुणों के भेद से {सात्विक, राजसी}
त्रिधैव प्रोच्यते तान्यपि यथावत् शृणु	{या तामसी} 3 प्रकार के ही कहे जाते हैं। उन्हें भी यथार्थ रीति {मेरे से} सुन।

सर्वभूतेषु येन एकं भावं अव्ययं ईक्षते। अविभक्तं विभक्तेषु तत् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकं।। 18/20

येन विभक्तेषु सर्वभूतेषु	जिस {स्वर्गीय शूटिंग के अद्वैतवादी ज्ञान} द्वारा {आकृति से} अलग-2 हुए सब प्राणियों में
अविभक्तमव्ययमेकं भावं	अखण्ड-अविनाशी एक {परमात्मा की पु.संगम में संग्रहित योगऊर्जा रूप} आत्मभाव को
ईक्षते तत् सात्त्विकं ज्ञानं विद्धि	देखता है, उसे {साक्षात् ईश्वरीय} सात्विक ज्ञान {का अविनाशी सार ही} जान;

पृथक्त्वेन तु यत् ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्। वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तत् ज्ञानं विद्धि राजसं।। 18/21

तु यत् ज्ञानं सर्वेषु भूतेषु	किंतु जो {द्वैतवादी द्वापुर-कलियुगी} ज्ञान सब प्राणियों में {भौतिक 23 तत्वों की दैहिक}
पृथक्त्वेन नानाभावान् पृथक्	भिन्नता द्वारा {नर-निर्मित जाति-धर्म-भाषादि के} नाना भावों में अलगाववादी
विधान् वेत्ति तत् ज्ञानं राजसं विद्धि	{पराई} विधि से जाने, उस {द्वैतवादी दैत्यों के हिंसक} ज्ञान को रजोगुणी जान;

यत् तु कृत्स्नवत् एकस्मिन् कार्ये सक्तं अहैतुकं। अतत्त्वार्थवत् अल्पं च तत् तामसं उदाहृतं।। 18/22

तु यत् एकस्मिन् कार्ये अहैतुकं	किंतु जो एक ही {बेहद रंगमंचीय वसुधैव कुटुंब के} कार्य में बिना कारण {जड़ देहाकृति में}
सक्तं कृत्स्नवत् अतत्त्वार्थवत्	{यों ही} आसक्त हुआ 'सब-कुछ यही {हमारा संप्रदाय} है'- {ऐसी संकुचित} तत्वहीन समान
अल्पं तत्तामसं उदाहृतं	अल्प {बाल} बुद्धि है, वह {पापी कलियुग का फूट डालने वाला} तामसी ज्ञान कहा गया है।

{जैसे कि आज एक शिवज्योति परमपिता+हीरो पार्टधारी परमात्मा जगत्पिता के बच्चे आत्मा-2 भाई-2 के भ्रातृभाव को सर्वथा भूलकर, अपने-2 धर्म-मठ-पंथ-सम्प्रदाय को ही अपनी-2 खण्ड-2 बनी हुई संकुचित अल्पबुद्धि से सम्पूर्ण मान बैठे हैं।}

नियतं सङ्गरहितं अरागद्वेषतः कृतं। अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत् सात्त्विकं उच्यते।। 18/23

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः	नित्य-नियमपूर्वक, आसक्तिहीन, {कोई और कैसे भी संप्रदाय से} रागद्वेष के बिना {और}
अफलप्रेप्सुना यत्कर्म	{उससे पाने की} फलेच्छा रहित व्यक्ति से जो {रुद्रज्ञान यज्ञ-सेवार्थ• गीता शास्त्रोक्त} कर्म
कृतं तत् सात्त्विकं उच्यते	किया गया, वह {सदाकाल स्वर्ग-समान सुखदायी} सात्विक कहा जाता है; {गीता•-3/9}

यत् तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः। क्रियते बहुलायासं तत् राजसं उदाहृतं।। 18/24

तु कामेप्सुना साहंकारेण	किंतु {स्वार्थ में दैहिक फल की} कामना वाले व्यक्ति द्वारा {अपने ही विनाशी} देह-अहंकार पूर्वक
वा बहुलायासं यत्कर्म पुनः	अथवा बड़े परिश्रमपूर्वक {किसी लगाव के कारण} जो कार्य बार-2 {अत्यंत कठिनाई से}
क्रियते तत् राजसमुदाहृतं	किया जाता है, वह {द्वैतवादी कर्मघमंडी विदेशी• या विधर्मियों का} राजसी{कर्म} कहा है।

•{ये खास कर्मेन्द्रियों से हिंसक, द्वैतवादी द्वापुर में अवतरित विदेशी-विधर्मी दैत्य-आत्माएँ ही नरनिर्मित नरक के मानवकृत इतिहास में 2500 वर्ष से ही इस दुनियाँ में आकर भ्रष्ट कर्मेन्द्रियों की दैहिक हिंसा से नरक बनाते हुए खुद भी गिरती रहती हैं।}

अनुबन्धं क्षयं हिंसां अनवेक्ष्य च पौरुषं। मोहात् आरभ्यते कर्म यत् तत् तामसं उच्यते।। 18/25

अनुबंधं हिंसां क्षयं च पौरुषं	{ऐटमिक महाविनाश जैसे कर्म से होने वाले} परिणाम, हिंसा, हानि और {अपने} सामर्थ्य को
अनवेक्ष्य मोहात् यदारभ्यते	न देखकर मूर्खता से/मोहपूर्वक जो {भी अदूर दृष्टि से सांसारिक} कर्म आरम्भ किया जाता है,
तत्तामसं कर्म उच्यते	वह {कल्पान्त कालीन कलियुगान्त का सबका असहनीय दुखदायी} तामसी कर्म कहा जाता है।

मुक्तसङ्गः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः। सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।। 18/26

मुक्तसंगः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः	{सभी से} आसक्तिहीन, देहभाव से निरहंकारी, धैर्य और उत्साह से भरपूर,
सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः सात्त्विकः कर्ता उच्यते	सिद्धि-असिद्धि में निर्विकारी, सात्विक कर्ता कहा जाता है।

रागी कर्मफलप्रेप्सुः लुब्धः हिंसात्मकः अशुचिः। हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।। 18/27

रागी अशुचिः कर्मफल-	{सांसारिक विषय-भोग में} आसक्त, अपवित्र {मूत-पलीती, इस जन्म में ही सांसारिक} कर्मफल का
प्रेप्सुः हिंसात्मकः लुब्धः हर्षशोक-	इच्छुक, {तन-धनादि-बल से} हिंसात्मक, {मुस्लिमों जैसा} लोभी, हर्ष {और} शोक से

अन्वितः राजसः कर्ता परिकीर्तितः	भरपूर, {द्वैतवादी द्वापुर-कलियुगी,रजोधर्मप्रिय} राजसी कार्यकर्ता कहा जाता है।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकः अलसः। विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।। 18/28

प्राकृतः अयुक्तः शठः स्तब्धः नैष्कृतिकः अलसः	{गाँवडी जैसा} असभ्य, अयोगी, धोखेबाज, हठी, नीच {चेतनाहीन जैसा} आलसी,
विषादी च दीर्घसूत्री तामस कर्ता उच्यते	दुःखीभाव का & {काम को टालने वाला} दीर्घसूत्री, तामसी कर्ता कहा जाता है।

बुद्धेः भेदं धृतेश्चैव गुणतः त्रिविधं शृणु। प्रोच्यमानं अशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय।। 18/29

धनंजय गुणतः धृतेः च बुद्धेः	हे ज्ञान-धनजेता! {अपने-2 स्वाभाविक} गुणानुसार धारणा एवं {हर व्यक्ति की} बुद्धि के
त्रिविधं भेदमेव शृणु अशेषेण	तीन प्रकार के {प्रकृतिकृत} भेद को भी सुन। {मैं उन्हें} पूरी तरह {सम्पूर्ण व्याख्या सहित}
पृथक्त्वेन प्रोच्यमानं	{सत्त्वादि तीनों गुणों को} अनेक रूपों से {विस्तारपूर्वक अकेले तेरे को ही} अलग-2 बता रहा हूँ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।। 18/30

पार्थ या बुद्धिः प्रवृत्तिं च निवृत्तिं	हे पृथ्वीपति! जो बुद्धि {समाज,देश और काल-अनुसार} कर्मों में लगने और न लगने,
कार्याकार्ये भयाभये च	कृतकार्य वा अकार्य को, भय और निर्भयता को तथा {दैहिक, दैविक और भौतिक दुखों के}
बंधञ्च मोक्षं वेत्ति सा सात्त्विकी	बंधन वा मुक्ति को {सच्चीगीता एडवांस ज्ञान द्वारा} जानती है- वह सत्वगुणी है।

यया धर्मं अधर्मं च कार्यं च अकार्यं एव च। अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।। 18/31

पार्थ यया धर्मं च अधर्मं च कार्यं	हे पृथ्वीराज! जिससे धर्म और अधर्म को और {समाज,देश और कालक्रम से} कर्तव्य
चाकार्यं एव अयथावत्	अथवा अकर्तव्य को भी {कोई व्यक्ति या पदार्थ की आसक्ति के कारण} गलत ढंग से
प्रजानाति सा राजसी बुद्धिः	{ही} जान पाती है, वह {द्वैतवादी द्वापर से विधर्मी और विदेशी दैत्यों की} राजसी बुद्धि है।

अधर्मं धर्मं इति या मन्यते तमसा आवृता। सर्वार्थान् विपरीतान् च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।। 18/32

पार्थ तमसावृता या अधर्मं	हे पृथ्वीराज! {पापमय कलियुगी} तमोगुण से ढकी हुई जो बुद्धि {विदेशी-विधर्मियों के} अधर्म को
धर्मं च सर्वार्थान् विपरीतान्	{अति देहाहंकार के कारण} धर्म और सारे {विश्व-कल्याणकारी} अर्थों को विपरीत रूप से
मन्यते सा तामसी बुद्धिः	मानती है, वह {सदा अनाचार-व्यभिचार के दोष से भरपूर सबके लिए दुखदाई} तमोगुणी बुद्धि है।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः। योगेन अव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।। 18/33

पार्थ योगेन ययाव्यभिचारिण्या	हे अर्जुन! {परमपिता शिव+हीरोपार्टधारी एकलिंग से} योग द्वारा जिस अव्यभिचारी
धृत्या मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः	धारणाशक्ति से {अचल बने} मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाएँ {नित्य-नियम & अभ्यासपूर्वक}
धारयते सा सात्त्विकी धृतिः	{विनाशी दुनियाँ के वैराग पूर्वक} धारण की जाती है, वह {दिवात्मा की} सात्विकी धारणा शक्ति है;

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयते अर्जुन। प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।। 18/34

तु अर्जुन यया धृत्या	{किंतु हे धनी} अर्जुन! जिस धारणा शक्ति से {नरनिर्मित इस नरक के हिंसक विधर्मियों के}
धर्मकामार्थान् प्रसंगेन फलाकांक्षी	धर्म, धन और कामनाओं को तीव्र आसक्तिपूर्वक {भ्रष्टेइन्द्रिय-सुख पाने का} फलाकांक्षी
धारयते पार्थ सा राजसी धृतिः	{मन से} धारण करता है, हे पृथ्वीराज! वह {द्वैतवादियों की द्वापुर से} राजसी धारणा है।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदं एव च। न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।। 18/35

पार्थ दुर्मेधाः यया स्वप्नं भयं	हे पार्थ! दुष्टबुद्धि व्यक्ति जिस {विदेशी और विधर्मी धर्मानुकूल} धारणा से स्वप्न, भय,
शोकं विषादं च मदमेव	शोक, विषाद को और {देहभान के कारण} घमण्ड को भी {हठपूर्वक धारण करते हुए}
न विमुंचति सा तामसी धृतिः	बिल्कुल नहीं छोड़ता, वह {महापापी कलहयुग के राक्षसी कर्म वाली} तामसी धारणाशक्ति है;

सुखं तु इदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ। अभ्यासात् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।। 18/36

तु भरतर्षभ इदानीं त्रिविधं	किंतु हे भरतश्रेष्ठ! इस {पु. संगमयुग की चतुर्युगी शूटिंग में नं. वार} 3 प्रकार के
सुखं मे शृणु यत्र अभ्यासात्	सुख को मेरे से सुन, जिसमें {वैराग सहित निरंतर} योगाभ्यास से {परमसुख को}
रमते च दुःखान्तं निगच्छति	रमण करता है और दुःखों के अंत को {इसी पु.संगम के जन्म में भली-भाँति} पाता है।

यत् तत् अग्रे विषं इव परिणामे अमृतोपमं। तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजं।। 18/37

यत्तदग्रे विषमिव परिणामे	जो वह {सुख} शुरू में विष-जैसा {असहनीय, कड़ुआ और दुखदाई लगे; किंतु} परिणाम में
अमृतोपमं तत् आत्मबुद्धि-	{सदा} अमृत के समान {महासुखदायी होता} है, वह आत्मिक {रूप में मन सहित} बुद्धि की
प्रसादजं सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं	खुशी से पैदा सुख {2500 वर्ष के स्वर्ग और नरक में भी} सात्विक कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगात् यत् तत् अग्रे अमृतोपमं। परिणामे विषं इव तत् सुखं राजसं स्मृतं।। 18/38

यत्तदग्रे विषयेन्द्रियसंयोगात्	जो {मायावी सुख} शुरू में विषयेन्द्रियों के संयोग से {क्षणभंगुर होते भी ऐसे भासे कि}
अमृतोपमं परिणामे विषमिव	अमृत के समान {लगे; किंतु} परिणाम में विष की {सीमाहीन मृत्युदुःख} जैसा
तत् सुखं राजसं स्मृतं	{अनुभव} हो, उस सुख को {द्वापुरादि से कलियुग-मध्य तक} राजसी माना गया है।

यत् अग्रे च अनुबन्धे च सुखं मोहनं आत्मनः। निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत् तामसं उदाहृतं।। 18/39

यदग्रे चानुबंधे आत्मनः	जो {नारकीय सुख} शुरू में व परिणाम में {भी} मन-बुद्धि {युक्त आत्मबिंदु} के लिए
मोहनं च निद्रालस्यप्रमादोत्थं	{बहुत} मोहित करने वाला तथा {परिणाम में} निद्रा, आलस्य एवं प्रमाद/लापरवाही से पैदा हो,
तत् सुखं तामसं उदाहृतं	वह {दिखावटी} सुख {अत्याचारी कलियुग में} तामसी, {राक्षसी वृत्ति का महादुखदाई} कहा गया है।

न तत् अस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्त्वं प्रकृतिजैः मुक्तं यत् एभिः स्यात् त्रिभिः गुणैः।। 18/40

प्रकृतिजैरेभिः त्रिभिर्गुणैर्मुक्तं	{इस अपरा} प्रकृति से उत्पन्न हुए इन तीनों गुणों से मुक्त {भूत, भविष्य और वर्तमान में}
यत्स्यात्तत् सत्त्वं पृथिव्यां	जो हो, वह प्राणी {या} पदार्थ {द्वापुर से विस्तृत 7 महाद्वीपी समूची} पृथ्वी में
वा दिवि वा देवेषु नास्ति	अथवा वैकुण्ठ धाम वा देवलोक में {भी} नहीं है। {वहाँ भी सत्त्व या सत्वप्रधान तो है ही।}

[41-48 फलसहित वर्णधर्म का विषय]

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैः गुणैः।। 18/41

परंतप ब्राह्मणक्षत्रियविशां च शूद्राणां	हे कामादिक शत्रुतापक! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- {वर्णों} के
कर्माणि स्वभावप्रभवैः गुणैः प्रविभक्तानि	कर्म {•शूटिंग में} आत्मभाव से पैदा हुए गुणों से प्रकृष्टतया बँटे हुए हैं।

•{'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः';(गीता 4-13)} लेकिन यह कब की बात है? (पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग की।)

शमो दमः तपः शौचं क्षान्तिः आर्जवं एव च। ज्ञानं विज्ञानं आस्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजं।। 18/42

शमः दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवं	{चुप्पी रूप} मूकत्व, इन्द्रियदमन, {आत्मस्मृति का} तप, शुद्धता, शान्ति, सरलता,
ज्ञानं च विज्ञानं एवास्तिक्यं	{पंचानन ब्रह्मा से समझा} ज्ञान और योग, ऐसे ही आस्तिकता-{ये सभी सत्वगुणी}
स्वभावजं ब्रह्मकर्म	आत्मभाव से उत्पन्न {ऊर्ध्वमुखी} ब्रह्मा के कर्म हैं। {कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि 3/15}

शौर्यं तेजो धृतिः दाक्ष्यं युद्धे च अपि अपलायनं। दानं ईश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजं।। 18/43

शौर्यं तेजः धृतिर्दाक्ष्यं च युद्धे अपि	शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता और {भीषण} युद्ध में भी {विधर्मी कायरों-जैसा}
अपलायनं दानं च ईश्वरभावः	न भागना, दान और {गीता के राजयोग से प्राप्त} ईश्वरीय/शासकीय/राजाई-भाव-
क्षात्र कर्म स्वभावजं	{ये संगमयुगी शूटिंग के पुरुषार्थी} क्षत्रियों वाले स्वभाव से उत्पन्न {गुण} कर्म हैं।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजं। परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्य अपि स्वभावजं।। 18/44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं स्वभावजं	खेती, गौरक्षा, व्यापार {आदि संगम में मानसी शूटिंग के विषियस} स्वभाव से उत्पन्न
वैश्यकर्म परिचर्यात्मकं	वैश्य-कर्म हैं। {चारों वर्णों की} चौतरफा नौकरी-चाकरी {सेवा-सुसूर्षा} करना
शुद्रस्यापि स्वभावजं कर्म	{चतुर्थ वर्णीय} शूद्रों के स्वभाव से पैदा हुए कर्म हैं। {जो पूर्वजन्मों से भी कल्प-कल्पान्तर जुड़े हुए हैं।}

स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तत् शृणु।। 18/45

स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः नरः	{तो भी} अपने-2 कर्मों से {पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग में} सदा लगा हुआ मनुष्य
संसिद्धिं लभते स्वकर्मनिरतः	सम्पूर्णसिद्धि {रूप वैकुंठ} पाता है। स्वकर्म में लगा हुआ {कोई भी वर्ण का पुरुषार्थी}
यथा सिद्धिं विन्दति तत् शृणु	जैसे {विष्णुलोकीय कलातीत अतीन्द्रिय सुख की} सिद्धि पाता है, उसे सुन।

यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन सर्वं इदं ततं। स्वकर्मणा तं अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। 18/46

यतः भूतानां प्रवृत्तिः	जहाँ {पुरुषोत्तम संगम से} प्राणियों की {उत्पत्ति-चेष्टादि} क्रिया {की शूटिंग} होती है {और}
येन इदं सर्वं	जिस {यज्ञपिता} से यह सारा {मानवीय सृष्टिवृक्ष, सदा शिव ज्योतिसमान लिंग/बीज से}
ततं तं स्वकर्मणाभ्यर्च्य	विस्तृत हुआ है, उसकी अपने कर्म से अच्छे से अर्चना-{उपासना} कर {आज्ञाकारी बनते हुए}
मानवः सिद्धिं विन्दति	मनुष्य {संसार में जीवित रहते हुए भी जीवन्मुक्ति रूप विष्णुलोकीय वैकुण्ठ की} सिद्धि को पाता है।

श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषं।। 18/47

परधर्मात् विगुणः स्वधर्मः स्वनुष्ठितात्	जड़ प्रकृति के {देहभान वाले} विरुद्ध गुण से आत्मधर्म सुख से पालने कारण
श्रेयान् स्वभावनियतं	श्रेष्ठ है। {कल्प-2 की 5000 वर्षीय चतुर्युगी की हूबहू शूटिंग में अपने} स्वभाव से नियत किए हुए
कर्म कुर्वन् किल्बिषं नाप्नोति	{किसी वर्ण के} कर्म करता हुआ {आत्मस्थिति में स्थिर रहने के कारण} पाप का भागी नहीं बनता।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषं अपि न त्यजेत्। सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेन अग्निः इव आवृताः।। 18/48

कौन्तेय सहजं कर्म सदोषमपि	हे कुन्ती-पुत्र! {जन्म-2 के संस्कारों में अभ्यासी होने से} सहज कर्म दोषयुक्त हो तो भी
न त्यजेत् हि धूमेन अग्निः इव	न त्यागना चहिए; क्योंकि धुएँ से अग्नि की तरह {इस नारकीय संसार के तो ब्राह्मण
सर्वारम्भा दोषेण आवृताः	आदि वर्णों के} सभी •कर्म दोष से ढके हुए हैं। {यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः (गी.3-9)}

•{"सब धंधों में है नुकसान, बिगर अविनाशी ज्ञान-रत्नों के धंधे के।" (मु.ता.2.12.68 पृ.1 अंत)}{रुद्रयज्ञ का धंधा ही सर्वश्रेष्ठ है।}{इस दुनिया के सारे धंधों का कारण है ही मूतपलीती कामविकार।}{यस्य सर्वे समारम्भा कामसंकल्पवर्जिताः। (गी. 4-19)}

[49-55 ज्ञाननिष्ठा का विषय।]

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः। नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेन अधिगच्छति।। 18/49

सर्वत्र जितात्मासक्तबुद्धिः	{इस नारकीय संसार की} सब परिस्थितियों में आत्मजयी, आसक्तिरहित बुद्धि वाला {व्यक्ति}
विगतस्पृहः संन्यासेन परमां	{जो मिले, जैसी 'यदृच्छालाभसंतुष्टो' (गी. 4-22) जैसा} कामनाहीन, समुचित त्याग से परमश्रेष्ठ
नैष्कर्म्यसिद्धिं अधिगच्छति	{जैसा} कर्मरहित {अतीन्द्रिय सुख से भरे कलातीत वैकुण्ठ की} सिद्धि को प्राप्त करता है।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथा आप्नोति निबोध मे। समासेन एव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।। 18/50

कौन्तेय सिद्धिं प्राप्तः यथा	हे {देहभान नाशिनी} कुन्ती-पुत्र! {स्वर्गीय} सिद्धि प्राप्त व्यक्ति जैसे {पहले-2 सर्व सामान्यात्माओं}
ब्रह्माप्नोति तथा ज्ञानस्य या	{के आत्मलोक} ब्रह्मलोक को पाता है, वैसे ही ज्ञान की जो {पु. संगमयुग में पुरुषार्थ से प्राप्त}
परानिष्ठा मे समासेनैव निबोध	पराकाष्ठारूप सर्वोच्च स्थिति {साक्षात् परंब्रह्म में होती} है, {वह} मेरे से संक्षेप में ही सुन।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्या आत्मानं नियम्य च। शब्दादीन् विषयान् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।। 18/51

विशुद्धया बुद्ध्या युक्तः	{सच्चीगीता एडवांसज्ञान से} विशेष शुद्ध बुद्धि से {परमपिता+परमात्मा की} याद में मग्न व्यक्ति
धृत्या आत्मानं नियम्य शब्दादीन्	धैर्यपूर्वक {बार-2 याद के अभ्यास से} अपने मन को वश में करके शब्द {-स्पर्श} आदि {पाँचों}
विषयान् त्यक्त्वा च रागद्वेषौ व्युदस्य	विषयों को त्यागकर और {आत्मस्मृति से देहभान-निर्मित} राग-द्वेष को छोड़कर,

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः। ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।। 18/52

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः	{मन से भी} एकान्तप्रिय, अल्पाहारी, {श्रीमत से} मन-वचन-कर्म में मर्यादित,
नित्यं ध्यानयोगपरः	नित्य विचार-सागर-मंथन और परमात्म-योगयुक्त हुआ, {ढेरों बने पड़े बंबों से भस्मसात् होने वाली,
वैराग्यं समुपाश्रितः	यादवों से निर्मित मूसलों/मिसाइलों की पुरानी कलियुगी दुनियाँ से} वैराग्य का सम्पूर्ण आश्रय लेने वाला है।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं। विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 18/53

अहंकारं बलं दर्पं कामं-क्रोधं	{विनाशी देह का} अहंभाव, {बाहु-} बल, घमंड, कामविकार, क्रोध {और लोभादि दूसरे रूप},
परिग्रहं विमुच्य निर्मम :	{भस्मसात् भविष्य-निर्वाह के मोह से बनी} संग्रह-वृत्ति को विशेषतः छोड़कर, ममताहीन,
शान्तः ब्रह्मभूयाय कल्पते	शांतचित्त हुआ {मेरे सर्वोत्तम हीरोपार्टधारी के} परमब्रह्मभाव के लिए समर्थ है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां।। 18/54

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति	{पु. संगम में ही संपन्न बने} परमब्रह्मभाव को प्राप्त प्रसन्नचित्त विप्र न शोक करता है, {और}
न काङ्क्षति सर्वेषु भूतेषु समः	न आकांक्षा करता है। {देहभान छोड़ आत्मस्टार-दृष्टि द्वारा} सब प्राणियों में समान भाव वाला
परां मद्भक्तिं लभते	मेरे परमश्रेष्ठ {सदा अव्यभिचारी बने चेतन ज्ञान-सागर की} श्रद्धा-भक्तिभाव का {संगम में भी} लाभ लेता है।

भक्त्या मां अभिजानाति यावान् यः च अस्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरं।। 18/55

ततः भक्त्या यः च	उस श्रद्धा भक्ति-भावना से {मैं} जो {सदाशिव ज्योति समान रथी विश्व-नवनिर्माणकर्ता हूँ} और
यावान् अस्मि मां तत्त्वतः	जैसा हूँ, {वैसा ही अनुभव से} मुझे तत्त्वपूर्वक {एडवांस सच्ची गीता 13-1 से 18 के अनुसार}
अभिजानाति मां तत्त्वतः	भली-भाँति जान जाता है {और} मुझ {शिव+बाबा} को {इसी कम्बाइंड रूप से} तत्त्वतः
ज्ञात्वा तदनन्तरं विशते	जानकर, तत्पश्चात् {सविशेष बीजरूप बनी रुद्रमाला के परंब्रह्मलोक में} प्रवेश पाता है।

[56-66 भक्तिसहित कर्मयोग का विषय]

सर्वकर्माणि अपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतं पदं अव्ययं।। 18/56

सदा मद्व्यपाश्रयः सर्वकर्माणि	सदा मेरा ही विशेष आश्रय/आधार लेने वाला, {दसों इन्द्रियों के} सब प्रकार के कर्मों को
कुर्वाणोऽपि मत्प्रसादाच्छाश्वतं	करता हुआ भी, मेरी {साकारी सो निराकारी लिंगमूर्ति की} प्रसन्नता से चिरकालीन
अव्ययं पदं अवाप्नोति	अविनाशी {प्यूरिटी से यूनिटी की यादगार क्षीरशायी वैकुण्ठ के विष्णुरूप} परमपद को पाता है।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः। बुद्धियोगं उपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।। 18/57

सर्वकर्माणि चेतसा मयि संन्यस्य	सब {ज्ञान-कर्मेन्द्रियों के} कर्मों को मन-बुद्धिपूर्वक मुझ {लिंगमूर्ति} में समर्पण कर,
मत्परः बुद्धियोगं सततं	{एकमात्र} मेरे परायण {आधीन} हुआ {वैराग सहित} बुद्धियोग का निरन्तर {अभ्यासपूर्वक},
उपाश्रित्य मच्चित्तः भव	मेरे नज़दीक आश्रय लेकर {साकारी सो निराकारी महादेव स्वरूप} मेरे चित्तमग्न हो जा।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि। अथ चेत् त्वं अहङ्कारात् न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।। 18/58

मत्प्रसादात् सर्वदुर्गाणि तरिष्यसि	मेरी प्रसन्नता से {तन, मन, धनादि के} सब विघ्न रूप दुर्गों/रुकावटों को पार करेगा

अथ चेत् मच्चित्तः त्वं अहंकारात्	और यदि मेरे {बिंदु रूप} में {हठपूर्वक/जबरियन} चित्तमग्न हुआ तू अहंकार के कारण
न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि	{मेरी श्रेष्ठ मत भरी बातें} नहीं सुनेगा {तो तेरा विश्वनाथ का ऊँचा पद} सर्वथा नष्ट हो जाएगा।

यत् अहङ्कारं आश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे। मिथ्या एषः व्यवसायः ते प्रकृतिः त्वां नियोक्ष्यति।। 18/59

यत् अहंकारं आश्रित्य न योत्स्य	जो {वीरता के} अहंकार का आश्रय लेकर {मायावी अहिंसक} 'युद्ध नहीं करूँगा'-
इति मन्यसे ते एषः व्यवसायः मिथ्या	ऐसा {ही} मानेगा, {तो} तेरा यह सोचना {गीता 3-27;18-43 अनुसार} व्यर्थ है;
प्रकृतिः त्वां नियोक्ष्यति	{क्योंकि तेरी आत्मगत क्षत्रिय} प्रकृति तुझको {युद्ध में} अवश्य ही लगा देगी।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा। कर्तुं न इच्छसि यत् मोहात् करिष्यसि अवशः अपि तत्।। 18/60

कौन्तेय स्वभावजेन स्वेन कर्मणा	हे {दृढ़भान-नाशिनी} कुन्ती-पुत्र! {पुरुषोत्तम संगम की शूटिंग में} स्वभाव से पैदा अपने कर्म से
निबद्धः यन्मोहात् कर्तुं नेच्छसि	बँधा हुआ यदि {मोह की} मूर्खता से {मायावी अहिंसक युद्ध} करने का इच्छुक नहीं,
तदपि अवशः करिष्यसि	तो भी {'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं' (गी. 4-13) इस आत्म-रिकॉर्ड के} बरबस हुआ {अवश्य} करेगा।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। 18/61

अर्जुन सर्वभूतानां हृद्देशे ईश्वरः	हे अर्जुन! सब प्राणियों के {नं. वार} हृदय में ईश्वर {के •समान बना विश्वनाथ}
तिष्ठति यंत्रारूढानि	{योग-•ऊर्जा से स्वयं ही शासक बना} बैठा है। {सृष्टिचक्र के} चाक पर चढ़ाए हुए {पात्ररूप मूर्ति-जैसे}
सर्वभूतानि मायया भ्रामयन्	{ऊँचे-नीचे} सब प्राणियों को {योग-} माया {मंदिर-} द्वारा {कल्प-2} भ्रमित किया जा रहा है।

तं एव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत् प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतं।। 18/62

भारत तमेव सर्वभावेन	हे विष्णु/भरत-पुत्र! उस {जगत्पिता} को ही {जानकर} पूर्णभाव से {उस लिंगमूर्ति}

शरणं गच्छ तत्प्रसादात्परां	{की} शरण में चला जा। उसकी प्रसन्नता से {सत्य सनातन धर्म की अविनाशी} परम {श्रेष्ठ}
शान्तिं शाश्वतं स्थानं प्राप्स्यसि	शान्ति{&} चिरकालीन {विष्णु के कलातीत वैकुण्ठ रूप} परमपद को प्राप्त करेगा।

इति ते ज्ञानं आख्यातं गुह्यात् गुह्यतरं मया। विमृश्य एतत् अशेषेण यथा इच्छसि तथा कुरु।। 18/63

इति गुह्यात् गुह्यतरं ज्ञानं	ऐसे {ब्रह्मा के} गुप्त {बेसिक ज्ञान} से भी गुप्ततर {परंब्रह्मा का एडवांस} गीताज्ञान
मया ते आख्यातं एतत् अशेषेण	मैंने तुझे कहा है। इस पर पूरी तरह {गी. 4-34 के 'परिप्रश्नेन सेवया' अध्ययनरत हुआ}
विमृश्य यथा इच्छसि तथा कुरु	विचार कर, जैसा {दिल में} चाहे वैसा कर। {आत्मा अपना बंधु वा शत्रु स्वयं है।} (गी.6-5)

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टः असि मे दृढं इति ततो वक्ष्यामि ते हितं।। 18/64

भूयः सर्वगुह्यतमं परमं मे	पुनः सबसे अधिक रहस्यमय, {सभी धर्म-शास्त्रों से भी} परमश्रेष्ठ {इस गीता में} मेरे
वचः शृणु मे दृढमिष्टोऽसि	{सर्वोत्तम} वचनों को सुन; {क्योंकि} तू मेरा अत्यन्त प्रिय {एवरेस्ट चोटी जैसा ब्राह्मण} है;
इति ते हितं वक्ष्यामि	अतः तेरी भलाई की बात बताता हूँ; {क्योंकि राजयोग से विश्वविजयी तुझे होना है।}

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मां एव एष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियः असि मे।। 18/65

मन्मना भव मद्भक्तः मद्याजी	{हे अर्जुन! तू} मेरे में मन लगा। मेरा भक्त है। मेरे प्रति {अविनाशी रुद्र-} यज्ञसेवा कर।
मां नमस्कुरु मामेवैष्यसि ते सत्यं	मुझे नमन कर। {इससे तू पुरुषों में उत्तम आत्मा बन} मुझे अवश्य पाएगा। {मैं} तेरे से सत्य
प्रतिजाने मे प्रियः असि	प्रतिज्ञा करता हूँ {कि तू सच्चे मित्रवत} मुझे प्रिय है; {क्योंकि तू आदम/अर्जुन ही सृष्टिबीज है।}

सर्वधर्मान् परित्यज्य मां एकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। 18/66

सर्वधर्मान् परित्यज्य मां	सब {हिन्दू-मुस्लिमादि} धर्मों को पूरा ही त्यागकर, मुझ {अल्लाह अव्वलदीन माने गए}

एकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्व	एक {शिवबाबा} की शरण में {आ} जा। मैं तुझे {धर्मरक्षार्थ हिंसा के पूर्वकृत} सब
पापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः	पापों से मुक्त कर दूँगा। {तू} शोक मत कर {कि धर्मी-विधर्मी-अधर्मी सब बेमौत मरेंगे।}

[67-78 श्रीगीताजी का माहात्म्य]

इदं ते न अतपस्काय न अभक्ताय कदाचन। न च अशुश्रूषवे वाच्यं न च मां यः अभ्यसूयति।। 18/67

अतपस्काय अभक्ताय	जिस व्यक्ति में {अणुरूप ज्योतिबिंदु आत्म-स्मृति का} तप न हो, जो {नार+द जैसा} अंधश्रद्धालु भक्त हो,
अशुश्रूषवे च यः मां	{अविनाशी अश्वमेध रुद्रयज्ञ का} सेवाभावी न हो और जो मुझ {परमपिता शिव समान बने जगत्पिता} से
अभ्यसूयति इदं ते कदाचन न वाच्यं	{नास्तिकों-जैसा} ईर्ष्यालु हो, {उसे} यह {गीता-ज्ञान} तू कभी भी मत बताना।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु अभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मां एव एष्यति असंशयः।। 18/68

यः इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु	जो इस परम रहस्यमय {ज्ञान को} मेरे {भावभरे श्रद्धायुक्त} भक्तों में
अभिधास्यति मयि परां भक्तिं	सुनाएगा, {वह} मेरी परमश्रेष्ठ {द्वापुरादि वाले सोमनाथ महादेव की अव्यभिचारी} भक्ति
कृत्वा असंशयः मामेवैष्यति	करके बिना संशय के मुझ {1 शिव+बाबा विश्वनाथ} को ही प्राप्त होगा। {गीता 7-23}

न च तस्मात् मनुष्येषु कश्चित् मे प्रियकृत्तमः। भविता न च मे तस्मात् अन्यः प्रियतरो भुवि।। 18/69

मनुष्येषु कश्चिन्मे तस्मात्	मानवों में कोई {भी} मेरा उस {साकार रथी सो निराकार शिवज्योति समान}
प्रियकृत्तमः न च भुवि मे	प्रिय कर्मकर्ता नहीं है और विश्व में {जो 1 जगत्पिता महादेव की मूर्ति है}, मुझे
तस्मादन्यः प्रियतरः न भविता	उस {आदम} के अलावा {कभी} कोई दूसरा {व्यक्ति} अधिक प्रिय न {हुआ} है, न होगा।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादं आवयोः। ज्ञानयज्ञेन तेन अहं इष्टः स्यां इति मे मतिः।। 18/70

य आवयोः इमं धर्म्यं संवादं	जो {कोई} हम दोनों {शिव+अर्जुन/आदम} के इस धारणायोग्य वार्तालाप {एडवांस ज्ञान} का
अध्येष्यते तेन ज्ञानयज्ञेन	{लगन से} अध्ययन करेगा, उस {महारुद्र} के ज्ञानयज्ञ {की श्रेष्ठतम मनसा+वाचा सेवा} द्वारा
अहं इष्टः स्यां इति मे मतिः	मैं {उस नं. वार बनी शिव की अष्टमूर्ति-संघ का} प्रिय बनूँगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

श्रद्धावान् अनसूयश्च शृणुयात् अपि यो नरः। सः अपि मुक्तः शुभान् लोकान् प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणां।। 18/71

यः श्रद्धावाननसूयः च नरोऽपि	जो श्रद्धावान व ईर्ष्यारहित मनुष्य {समूचे वार्तालाप सहित एडवांस गीता ज्ञान को} केवल
शृणुयात्सोऽपि मुक्तः पुण्यकर्मणां	सुन• लेता है, वह भी {दुःखों से} मुक्त हुआ {श्रेष्ठतम स्वर्ग का} पुण्यकर्मी
शुभान् लोकान् प्राप्नुयात्	{नौ नाथ/रुद्राक्ष-बीजरूप बापों के} शुभ {क्षीरसागरीय विष्णु-} लोकों को पा लेता है।

{•मेरे (पंचम ऊर्ध्वमुखी ब्रह्मा-) मुख से दो अक्षर भी सुना तो वह भी स्वर्ग में जरुर आवेंगे। (मु.ता.2.3.68 पृ.3 आदि)}

कच्चित् एतत् श्रुतं पार्थ त्वया एकाग्रेण चेतसा। कच्चित् अज्ञानसम्मोहः प्रनष्टः ते धनञ्जय।। 18/72

पार्थ कच्चित्त्वया एकाग्रेण चेतसा	हे पृथ्वीपति! {नर अर्जुन/आदम/एडम!} क्या तूने एकाग्र चित्त से {नित्य नियम से}
एतत् श्रुतं धनंजय कच्चित्ते	यह {एडवांस सच्चीगीता का ज्ञान} सुना? हे ज्ञानधनजेता! क्या तेरा {2500 वर्षों से}
अज्ञानसंमोहः प्रनष्टः	{अंधश्रद्धायुक्त धर्मशास्त्रों की सुनी-सुनाई} बेसमझी से हुआ सारा मोह पूर्णतः नष्ट हुआ?

अर्जुन उवाचः-नष्टो मोहः स्मृतिः लब्धा त्वत्प्रसादात् मया अच्युत। स्थितः अस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। 18/73

अच्युत त्वत्प्रसादान्मोहः नष्टः	हे अच्युत! {अमोघवीर्य, पुरुषोत्तम युग के मूर्धन्य} आपकी प्रसन्नता से मोह नष्ट हुआ,
स्मृतिः लब्धा गतसंदेहः स्थितः	{मेरे में प्रविष्ट (11-54) हुए आपकी} स्मृति प्राप्त हुई। संदेहरहित होकर {मन से} स्थिर हुआ

अस्मि तव वचनं करिष्ये	हूँ। {ऊर्ध्वमुखी परंब्रह्म से निकली} आपकी आज्ञा का {भरपूर तरीके से} पालन करूँगा।

संजय उवाचः-इति अहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः। संवादं इमं अश्रौषं अद्भुतं रोमहर्षणं।। 18/74

इत्यहं वासुदेवस्य च पार्थस्य महात्मनः	ऐसे मैंने वासुदेव के और {ज्ञानभंडारी शिवपुत्र} भूपति महात्मा अर्जुन के
अद्भुतं रोमहर्षणं इमं संवादं अश्रौषं	अद्भुत, रोमांचित करने वाले इस संवाद को {सूक्ष्म शरीर से} सुना है।

व्यासप्रसादात् श्रुतवान् एतत् गुह्यं अहं परं। योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयं।। 18/75

व्यासप्रसादादेतत् गुह्यं परं	व्यास {जो द्वापुर से इसी काम से विशेष बैठा था} की प्रसन्नता से यह रहस्यमय सर्वोत्तम
योगं अहं स्वयं साक्षात् कृष्णात्	{सहजराज} योग मैंने स्वयं साक्षात् {ज्ञान-योग की उत्कृष्ट, अव्यक्त} आकर्षणमूर्त से,
योगेश्वरात्कथयतः श्रुतवान्	योगियों के ईश्वर {सनत्कुमार} द्वारा कहते हुए {अपने सूक्ष्मशरीर के कानों से} सुना है।

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादं इमं अद्भुतं। केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।। 18/76

राजन् केशवार्जुनयोरिमं	हे {पूंजीवादी} राजा! ब्रह्मा के स्वामी {शिवबाबा} व अर्जुन के ऐसे इस
अद्भुतं च पुण्यं संवादं	{सृष्टि में सर्वप्रथम सुने-सुनाए गए} आश्चर्यजनक और पवित्र संवाद को
संस्मृत्य-2 मुहुर्मुहुः हृष्यामि	बार-2 याद करके {मैं अभी पु.संगम की अभूल यादों में} पुनः पुनः हर्षित हो रहा हूँ।

तत् च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपं अत्यद्भुतं हरेः। विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः।। 18/77

च राजन् हरेः तत्	और हे {नोटों से वोटों के} राजा धृत+राष्ट्र! विष्णुरूप उस {अश्वत्थ बड़वृक्ष के}
अत्यद्भुतं रूपं संस्मृत्य-2	अति आश्चर्यजनक {विराट} रूप {अर्धनारीश्वर} को {सच्चीगीता के ज्ञान द्वारा} बार-2 याद करके
मे महान् विस्मयश्च पुनः-2 हृष्यामि	मुझको {ये अजूबा देख} महान विस्मय होता है और {मैं} बार-2 हर्षित हो रहा हूँ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीः विजयो भूतिः ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। 18/78

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र	जहाँ योगियों के ईश्वर आकर्षणमूर्त {शिवबाबा} हों, जहाँ {साकारी मानव-सृष्टि-बीज/बाप}
धनुर्धरः पार्थो	{रामायण में "शंकर चाप जहाज, जेहि चढ़ि उतरहिं पार नर" वाले} धनुर्धर राजा {विश्वनाथ} हों,
तत्र श्रीः विजयः भूतिः	वहाँ श्रेष्ठतम विश्व-विजय रूप विभूति, {जो किसी विधर्मी-विदेशी ने नहीं पाई,}
ध्रुवा नीतिर्मम मतिः	{वही सदाविजयी आदि ना. की} अटल राजनीति है, {ऐसी} मेरी मान्यता है।